

५३०५  
अ १



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तकालय



230.00

वैदिक

359

विषय संख्या

पुस्तक संख्या

आगत पंजिका संख्या

2023 2022

पुस्तक पर किसी नमूने का निशान लगाना  
वर्जित है। कृपया १५ दिनों से अधिक समय  
तक पुस्तक अपने पास न रखें।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय  
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान यदि  
न लगायें।



**पुस्तकालय**

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या .....

आगत संख्या **2022H**

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

स्वातंत्र्य संग्रह 1947-48



2022

~~2023~~

संस्कृत भाषा विभाग



००००

कुल

खर

ख्य

जि

तक

।

तक

०००

कुपरा







००००  
ल  
ख्या  
ख्या  
जि  
क  
।  
क  
००००













CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri



0000  
न व  
या  
या  
न व  
क  
क  
0000

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
पुस्तक नं  
प्राप्त नं  
दिनांक  
१८८५  
११३८ अथवा ११३९

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
पुस्तक नं  
प्राप्त नं  
दिनांक  
१८८५  
११३८ अथवा ११३९





विषय सूची  
०-०-०-०-०

- १- त्वचा रोगों में विरसप
- २- विरसप के विशिष्ट लक्षण
- ३- विरसप निवृत्ति
- ४- परिरसप की निवृत्ति
- ५- विरसप के दोषा दुष्य
- ६- विरसप की कष्ट साध्यता
- ७- विरसप की असाध्यता
- ८- विरसप में त्वचा का घनिष्ट सम्बन्ध
- ९- त्वचा विवेचन
- १०- त्वचा गत प्रभाव आदि का वर्णन
- ११- चरक मतानुसार त्वचा के स्तर
- १२- सुश्रुत मत का आधुनिक मतानुसार सम्बन्ध करते हुए  
सात त्वचा स्तरों का वर्णन ।
- १- अभासिनी
- २- लोहिता
- ३- श्वेता
- ४- ताम्रा
- ५- वैदनी
- ६- रौहिणी
- ७- मांसधरा
- १३- त्वचा के प्राचीन और अर्वाचीन स्तरों का तुलनात्मक कोष्ठ



विषय सूची

प्रस्तावना	- 1
प्रथम अध्याय	- 2
द्वितीय अध्याय	- 3
तृतीय अध्याय	- 4
चतुर्थ अध्याय	- 5
पञ्चम अध्याय	- 6
षष्ठ अध्याय	- 7
सप्तम अध्याय	- 8
अष्टम अध्याय	- 9
नवम अध्याय	- 10
दशम अध्याय	- 11
एकादश अध्याय	- 12
द्वादश अध्याय	- 13
त्रयोदश अध्याय	- 14
चतुर्दश अध्याय	- 15
पञ्चदश अध्याय	- 16
षष्ठदश अध्याय	- 17
सप्तदश अध्याय	- 18
अष्टादश अध्याय	- 19
उत्तराध्याय	- 20
समाप्ति	- 21



(क)

१- शाकिणी स्तर

२- स्कन्ध स्तर

३- कण्ठमय स्तर

४- वर्णमय स्तर

५- अंकुरमय स्तर

६- जालीमय स्तर

७- जालमय स्तर

१४- त्वक्का के उपविभाग

१ - नख

२- रोम

३- केश रचना

४- केश विभाग

५- मैदोग्रन्थियाँ का विवेचन

६- मैदः सार पुरुषा के लक्षण

७- त्रिषुण ग्रन्थियाँ का विवेचन

८- स्वेद ग्रन्थियाँ

९- स्वेद ग्रन्थियाँ के मैद

१०- स्वेद ग्रन्थियाँ के कार्य

११- स्वेद की मात्रा तथा उस के घटक द्रव्य आदि

१५- त्वक्का द्वारा शरीरोष्मा का नियमन

१६- स्वेद की अति वृद्धि के लक्षण



पञ्च विमर्श - १

पञ्च विमर्श - २

पञ्च विमर्श - ३

पञ्च विमर्श - ४

पञ्च विमर्श - ५

पञ्च विमर्श - ६

पञ्च विमर्श - ७

पञ्च विमर्श के विमर्श - ४१

पञ्च - १

पञ्च - २

पञ्च - ३

पञ्च - ४

पञ्च - ५

पञ्च - ६

पञ्च - ७

पञ्च - ८

पञ्च - ९

पञ्च - १०

पञ्च - ११

पञ्च - १२

पञ्च - १३



(ग)

- १७- स्वेद एवं मेदमय स्त्राव के लक्षण
- १८- स्पर्शिकुरि का
- १९- त्वना के कार्य
- २०- ताप नियन्त्रण
- १- ताप उत्पत्ति
- २- ताप क्षय की क्रियाएं
- ३- १- चालन
- २- वाहन
- ३- विकास
- क- वायु की आर्द्रता
- ख- व्यक्ति का आहार
- ग- वस्त्र
- ४- वाष्पी भवन तथा इस के द्वारा ताप क्षय के कारण
- क- व्यक्ति का आकार
- ख- वायु की आर्द्रता
- २१- स्वेद का महत्व एवं विशेषतायें
- २२- त्वक रोग परिचाण, ~~अथवा~~
- त्वक परिचाण उपकरण
- त्वक रोग परिचाण विधि
- २३- (१) विस्फोट का आकार
- हृण स्थान का नाप
- हृण स्थान का स्पर्श
- दाग



F3TP - 5



(घ)

उभार

मुहासा

काला

परत

सुरण्ड

दरार

२४- त्वक्का के वर्ग में परिवर्तन

१- कृष्ण विसर्प

२- चम्बल

३- श्वेत कुष्ठ

४- काहेंयाँ

५- कैशिका शिरा प्रसारण

६- वैगनी रंग उद्भेद

७- नीलग्न निशान

८- पिण्ड

२५- (२) विस्फोट की दृढ़ता

२६- (३) विस्फोट का प्रसार तथा स्थिति

२७- चर्म रोग के सामान्य कारण

१- गौण कारण

क- भ्रूक कारण

ख- व्यवसाय कारण

२- उद्दीपक कारण

३- आपसर्गिक कारण



16

— 3



२८-

सुन्दरता का प्रतीक त्वचा

१- सुन्दरता का पुजारी शुद्ध मनुष्य

२- त्वचा के सौंदर्य नाशक कारण

३- त्वचा रोगों के नाश निमित्त अभ्यंग का उपयोग

४- अभ्यंग से दैत्य दानवी का स्वास्थ्य रहना

५- घृत और तैल के अभ्यंग का वर्णन आदि

६- अभ्यंग की दिन चर्या और रात्रियर्चा में उपयोगिता आदि

७- अभ्यंग में शिरोवस्ति आदि विधियाँ का समावेश

८- शिरो रोग हर शिरो वस्ति प्रयोग आदि का वर्णन

९- अभ्यंग की अन्य रोगावरोधक शक्ति का महत्व

१०- अभ्यंग का शरीरोपयोगी महत्व

२९- त्वचा रक्षा के मुख्य साधन स्नान एवं अभ्यंग

३०- स्नान आदि का न करना त्वचा के लिए घातक

३१- स्नान के १० गुण

१- चरक मत

२- सुश्रुत मत

३- विदुर नीति आदि

३२- शीत स्नान के गुण

३३- उष्ण स्नान के गुण

३४- पाश्चात्य मतानुसार भिन्न स्थानों के लिये जल की

उष्मा आदि का विवेचन ।

१- स्नान के लिए वर्जित रोगी



तत्त्व दर्शन १७ तत्त्व

- ३५

तत्त्व दर्शन १८ तत्त्व - ३६

तत्त्व दर्शन १९ तत्त्व - ३७

तत्त्व दर्शन २० तत्त्व - ३८

तत्त्व दर्शन २१ तत्त्व - ३९

तत्त्व दर्शन २२ तत्त्व - ४०

तत्त्व दर्शन २३ तत्त्व - ४१

तत्त्व दर्शन २४ तत्त्व - ४२

तत्त्व दर्शन २५ तत्त्व - ४३

तत्त्व दर्शन २६ तत्त्व - ४४

तत्त्व दर्शन २७ तत्त्व - ४५

तत्त्व दर्शन २८ तत्त्व - ४६

तत्त्व दर्शन २९ तत्त्व - ४७

तत्त्व दर्शन ३० तत्त्व - ४८

तत्त्व दर्शन - ४९

तत्त्व दर्शन - ५०

तत्त्व दर्शन - ५१

तत्त्व दर्शन - ५२

तत्त्व दर्शन - ५३

तत्त्व दर्शन - ५४

तत्त्व दर्शन - ५५

तत्त्व दर्शन - ५६



(च)

- २- अति तीव्र वायु में स्नान का निषेध
- ३- उष्ण स्नान आदि का वर्णन
- ४- उष्ण टव स्नान विधि और उस के लाभ
- ५- रोग शान्ति के लिए कुछ मिश्रिणी का जल में प्रयोग
- ६- परिवारक के लिए आवश्यक स्नाना आदि
- ३५- अभ्यंग की परिभाषा
- ३६- अभ्यंग का शरीर पर प्रभाव
- ३७- त्वना गत प्रभाव
  - १- पैसगी गत प्रभाव
  - २- रक्त गत प्रभाव
  - ३- रक्त संचार गत प्रभाव
  - ४- वात संस्थान गत प्रभाव
- ३८- हस्ताभ्यंग एवं उस के भेद
  - १- मुक्की लगाना
  - २- मलना
  - ३- घर्षण
  - ४- ठैपन
  - ५- आवेप
- ३९- यंत्रिक अभ्यंग
- ४०- भिन्न रोगों में अभ्यंग का हितकर प्रयोग
  - १- रक्तहीनता
  - २- गौण रक्त हीनता
  - ३- हृदय जन्य रोग







३- पावन संस्थान के रोग

४- श्वास संस्थान के रोग

५- वात संस्थान के रोग

६- सन्निधौघ

७- शल्यगत रोग

४१- अन्य कुछ रोगों में भी अवस्थानुसार हितकारी प्रयोग

भिन्न २ रोगों में इन का निषेध

४२- त्वक्ता की सुन्दरता के लिए उपयोगी कुछ योगों

कुंकमादि तैल एवं उस की निर्मा विधि ।

४३- समन्वयात्मक दृष्टि कोण से विसर्प का निदान

क- विसर्प के मुख्य कारण

ख- विसर्प के सहायक कारण

ग- चरक संहिताक्त कारण

घ- वाग्भट मतानुसार कारण

ङ- वाग्भट मतानुसार बाह्य विसर्प वर्णन

च- भाव प्रकाश का मत

छ- चरक मतानुसार विसर्प के भेद

ज- सुश्रुत का मत

४४- इन मतों का आधुनिक दृष्टि कोण से समन्वय

१- पाश्चात्यमतानुसार भेद

२- भ्रमण शील विसर्प

३- कर्दम विसर्प

४- परिवर्ति विसर्प



天  
下  
之  
事  
無  
不  
有  
其  
理

क

A

क

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A

A



(ज)

घ- नव जात विसर्प

ङ- कारणानुसार विसर्प

१- स्वयं जात

२- अमिधातज विसर्प

३- विसर्प के आवश्यक भेद

१- सामान्य

२- कटिन

३- व्यापक

४- परिणामानुसार भेद

५- शीघ्र भाव

६- त्वक् पराङ्गता

७- पूर्यमेयता

४५- विसर्प का मुख्य क्षेत्र

१- पाश्चात्य मत

२- अष्टांग हृदयकार मत

४६- विसर्प का सामान्य परिचय

४७- विसर्प का समन्वयात्मक सामान्य परिचय

४८- प्राचीन तथा अर्वाचीन मतानुसार विसर्प रथादि

४९- विसर्प में डा० आफटसन का मत

५०- डा० वल्कमेन का मत

५१- विसर्प के उपद्रवी आदि का वर्णन

५२- विसर्प की भिन्न २ श्रेणियों पर प्रभाव

५३- विसर्प मिस्टर वारेनल्ट्स का मत आदि



पुस्तक संख्या - १

पुस्तक संख्या - २

पुस्तक संख्या - ३

पुस्तक संख्या - ४

पुस्तक संख्या - ५

पुस्तक संख्या - ६

पुस्तक संख्या - ७

पुस्तक संख्या - ८

पुस्तक संख्या - ९

पुस्तक संख्या - १०

पुस्तक संख्या - ११

पुस्तक संख्या - १२

पुस्तक संख्या - १३ - ४४

पुस्तक संख्या - १४

पुस्तक संख्या - १५

पुस्तक संख्या - १६ - ४५

पुस्तक संख्या - १७ - ४६

पुस्तक संख्या - १८ - ४७

पुस्तक संख्या - १९ - ४८

पुस्तक संख्या - २० - ४९

पुस्तक संख्या - २१ - ५०

पुस्तक संख्या - २२ - ५१

पुस्तक संख्या - २३ - ५२



(फ)

- ५४- विसर्प का सापेक्षितक निदान
- ५५- विसर्प की मुख्य परिचायिका
- ५६- विसर्प के भिन्न २ रोग जन्य अरिष्ट लक्षण
- ५७- सुश्रुत मत  
चरक मत  
भोज मत का निर्देश
- ५८- संहितोक्त समन्यात्मक विवेचन से लाभ
- ५९- विसर्प पर अग्निवेश के प्रशान
- ६०- विसर्प पर आश्रय द्वारा कथित उच्चर
- ६१- विसर्प की निरुक्ति
- ६२- आश्रय मतानुसार विसर्प के ७ भेदों का समन्यात्मक विवेचन
- ६३- (क) वातिक विसर्प की हेतुकी एवं विकृति  
वातिक विसर्प के लक्षण  
सुश्रुत मत  
अष्टांग हृदयकार मत  
भाव प्रकाश मत
- (ख) पित्तज विसर्प की हेतुकी एवं विकृति  
पित्तज विसर्प के लक्षण  
सुश्रुत मत  
अष्टांग हृदयकार मत  
भाव प्रकाश मत
- (ग)- श्लेष्मिक विसर्प की हेतुकी एवं विकृति  
श्लेष्मिक विसर्प के लक्षण







( ज )

सुक्ष्म मत

अष्टांग हृदयकार मत

भाव प्रकाश मत

(घ) वात पित्त ( अग्नि ) विरूप की हेतु की एवं विकृति

अग्नि विरूप के लक्षण

भाव प्रकाश मत

अष्टांगकार मत

माधवाकार मत

(ङ) कफ पित्त ( कर्दम ) विरूप की हेतुकी एवं विकृति

कर्दम विरूप के लक्षण

अष्टांग हृदय मत

भाव प्रकाश मत

माधवाचार्य मत

(च) वात कफ ( ग्रन्थि ) विरूप की हेतुकी एवं विकृति

ग्रन्थि विरूप के लक्षण ( लक्षण )

अष्टांग हृदयकार का मत

भावप्रकाश तथा माधवाचार्य का मत

( ) सन्निपातिक विरूप के लक्षण

सुक्ष्म मत

भाव प्रकाश मत

अष्टांग हृदयकार मत

चरक और सुक्ष्म मत का परस्पर अन्तर्भाव



( ७५ )

॥ १५॥

॥ १६॥

॥ १७॥

॥ १८॥

॥ १९॥

॥ २०॥

॥ २१॥

॥ २२॥

॥ २३॥

॥ २४॥

॥ २५॥

॥ २६॥

॥ २७॥

॥ २८॥

॥ २९॥

॥ ३०॥

॥ ३१॥

॥ ३२॥

॥ ३३॥

॥ ३४॥

॥ ३५॥

॥ ३६॥



- ६४- विरूप भेदी की साधारणध्यता
- सुष्ठु मत
- मीज मत
- अष्टांग हृदयकार मत
- भाव प्रकाश एवं माधवानाथ मत
- ६५- विरूप चिकित्सा विवेचन
- ६६- विरूप एवं स्वका रोगी में सामान्य उपयोगी द्रव्य
- ६७- वर्ण्य द्रव्य
- ६८- स्नेहन एवं मार्दवकर द्रव्य
- ६९- रुक्षाण द्रव्य
- ७०- स्वेदल द्रव्य
- ७१- स्वेदीपण द्रव्य
- ७२- स्वेदापनयन द्रव्य
- ७३- रोम संजनन द्रव्य
- ७४- रोम सात्त्व द्रव्य
- ७५- कण्डूघ्न द्रव्य
- ७६- उदर कीठ प्रशमन द्रव्य
- ७७- कुष्ठघ्न द्रव्य
- ७८- केश्य द्रव्य
- ७९- चरक मतानुसार उपयोगी गणों का वर्णन
- ८०- विरूप रोग नाशक विशेष द्रव्यों का वर्णन
- ८१- वात शामक द्रव्य
- ८२- पित्त शामक द्रव्य







- ८३- कफ शामक द्रव्य
- ८४- वात पित्त कफ शामक द्रव्यों का सुस्तुत मतानुसार गर्वीकरण
- ८५- विरसप में वमन विरचन द्रव्यों का महत्व
- ८६- वामक द्रव्य
- ८७- वमनोपठा द्रव्य
- ८८- मृदु रैचक द्रव्य
- ८९- रसैन द्रव्य
- ९०- रसैन द्रव्य
- ९१- भेदन द्रव्य
- ९२- लोत्र विरचक द्रव्य
- ९३- विरसप में वामक योग
- ९४- मृदुनादि वमन योग
- ९५- पटौलादि वमन योग
- ९६- यष्टयादि वमन योग
- ९७- अन्य पटौलादि योग
- ९८- वामक योग
- ९९- विरसप में विरचक योग आदि का वर्णन
- १००- विरसप चिकित्सोपयोगी सूत्रना आदि का विवेचन
- १०१- चिकित्सा में विशिष्ट नियमों का निर्देश आदि  
विरसप पथ्यापथ्य विवेचन
- १०२- विरसप में प्रयोजमान भिन्न ग्रन्थोक्त योगों का संग्रह
- १०३- पाश्चात्य मतानुसार योगों का संग्रह विरसपार्थ आयुर्वेदीय रंज पाश्-  
चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक विवेचन



संख्या  
संख्या  
संज्ञिक  
तक ०  
है ।  
तक ३  
००००००



- १०४- समन्वयात्मक विवेचन
- १०५- चिरकालीन विरूप चिकित्सा योग
- १०६- १- दूर्वा पृथ  
२- दावा चूर्ण
- १०६- पाश्चात्य मतानुसार प्रदेह आदि का विवेचन
- १०७- स्त्राव की अधिकता के उपयोगी - योग
- १०८- पाश्चात्य मतानुसार सब विरुपा की राध्यता आदि का वर्णन
- १०९- विरुप में सौरम और वैक्सीन का प्रयोग आदि
- ११०- विरुप की दौषानुसार चिकित्सा
- १११- वातिक विरुप चिकित्सा निमित्त योगों के द्रव्यों का वर्णन
- ११२- वातोल्लक्षण विरुप के लिए सूचना
- ११३- वात विकृति प्रधान रक्त दुष्टि में ~~विशेष~~ चिकित्सा  
शिगी आदि का प्रयोग
- ११४- विरुप में हितकारी कषाय
- निरूपण-
- (१) पुरतादि क्वाथ
  - (२) रक्त चन्दनादि क्वाथ
  - (३) सारिवादि क्वाथ
  - (४) किरात तित्क्तादि क्वाथ
  - (५) प्रपीण्डरी काय क्वाथ
  - (६) द्राक्षादि शीत कषाय
  - (७) पटीलादि शीत कषाय
- विरुप नाशक प्रदेह प्रलेप आदि
- १- उदुम्बरादि प्रदेह







- १- कालीयादि प्रदेह
- २- सारिवादि प्रदेह
- ३- साङ्गलादि प्रदेह
- ४- अन्नज प्रदेह
- ५- वलाय लेपन
- ६- यव चण्णादि प्रदेह
- ७- पद्मनी प्रलेप
- ८- प्रपौण्डरी काय प्रलेप
- ९- शवालादि लेप
- १०- न्यग्रीवादि लेप
- ११- मू-निम्बादि क्वाथ
- १२- अन्य रस रसायनादि योगी का यथोक्ति प्रयोग
- पैच्छिक विसर्प चिकित्सा
- विशेषा पित्त शामक योगी का वर्णन
- १- न्यग्रीवादि गण लेप
- २- उत्पलादि गण. प्रलेप
- ३- न्यग्रीव का अन्य प्रलेप
- ४- कमलनी आदि द्रव्यों का प्रलेप
- ५- क्रीत आदि द्रव्यों का प्रलेप
- ६- गीय्यादि धूत
- ७- दुराल मादि कषाय
- ८- दावीदि कषाय
- ९- रस रसायनादि का यथोक्ति प्रयोग



परि १००००० - १

परि १००००० - २

परि १००००० - ३

परि १००००० - ४

परि १००००० - ५ - ६

परि १००००० - ७

परि १००००० - ८

परि १००००० - ९

परि १००००० - १०

परि १००००० - ११

परि १००००० - १२

परि १००००० - १३ - १४

परि १००००० - १५

परि १००००० - १६

परि १००००० - १७

परि १००००० - १८

परि १००००० - १९

परि १००००० - २०

परि १००००० - २१

परि १००००० - २२

परि १००००० - २३

परि १००००० - २४

परि १००००० - २५



११५-

रोग चिकित्सा

कफज रोग के लिए विशिष्ट योगों का वर्णन

- १- त्रिफलादि प्रलेप
- २- सविराज प्रलेप
- ३- अमलतास पत्र आदि योगों का वर्णन
- ४- बागमटीक के अनुसार प्रलेप योगों का वर्णन

सुश्रुत मतानुसार कृष्णादि गण का प्रयोग

एवं कुछ अन्य हितकारी योगों का वर्णन

- १- दशांग लेप

इस रसायन आदि योगों का यथावस्था प्रयोग

११६-

वात पित्तोत्पत्ति ( अग्नि विसर्पचिकित्सा

- १- प्रवाल पिष्टी आदि योग
- २- शत घृत घृतादि लेपों का वर्णन
- ३- पंच जीरी आदि दृक्षा के योगों का वर्णन एवं अन्य
- उपयोगी प्रलेप अवतंण आदि
- ४- पटौलादि गण का विशेष प्रयोग

११७-

कफ पित्त ( कर्दम ) विसर्प चिकित्सा उपयोगी प्रलेप प्रदेह  
क्वाथादि का निर्देश

११८-

वात पित्त जन्य ( ग्रन्थि ) विसर्प चिकित्सा

- १- ग्रन्थि विसर्प के लिए विशेष सूचना आदि
- २- विशिष्ट उपनाह तेल आदि के योग
- ३- दशमल तेल
- ४- कुष्ठ तेल



000  
न व  
य्या  
य्या  
जिक  
क ०  
।  
क ३  
000

( ११ )

तत्त्वज्ञानी की

-४९९

नीति का निर्माण करने की नीति का

परिणाम -१

परिणाम -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

तत्त्वज्ञानी की ( ११ ) तत्त्वज्ञानी का

-४९९

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत ( ११ ) नीति का

-४९९

नीति का निर्माण करने का मत

तत्त्वज्ञानी की ( ११ ) नीति का

-४९९

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का निर्माण करने का मत -१

नीति का -१

नीति का -१



(त)

५- गौमुत्र प्रयोग

६- अष्टवगंधा प्रलेप

### ७- शुष्क मृत्ती आदि का प्रयोग

८- वलाध प्रलप

६ - दन्तादि लोप

१०- मंली कुलथी आदि का प्रयोग

११- वाष्पणी में सधु और विजौर का प्रयोग आदि

१२- त्रिफला शिलाजीत स्वर्णपिप्पली आदि द्रव्यों के

## प्रयोग आदि का निर्देश

१३- ग्रन्थि समनार्थ लोह आदि धातुओं के सेक आदि का

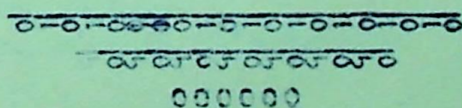
वर्णि ।

१४- ग्रन्थि की परिपक्वापर्या में शस्त्र कर्म

१५- शस्त्र कर्म के पश्चात्, कंपिलादि तैल का प्रयोग

१६ - इस रसायन का निरूपण

११६ - सन्निपात विसर्प की असाध्यता भी साध्यता में परिणत









( थ )-

कुष्ठ विवेचन  
०-०-०-०-०-०-०-०

कुष्ठ रोग (LEPROSY)

सप्त महा कुष्ठ  
-----

- १- कपाल
- २- त्रौदुम्बर
- ३- मण्डल
- ४- शृङ्ग्याजिह्वा
- ५- पुण्डरील
- ६- ध्वि
- ७- काकणक

एकादश चतुर् कुष्ठ

- १- एक कुष्ठ
- २- चर्म कुष्ठ
- ३- कटिम
- ४- वैपाक्षिक
- ५- अलसक
- ६- ददु मण्डल
- ७- चर्मदल
- ८- पामा
- ९- कच्छू
- १०- विस्फीट
- ११- शतारू
- १२- क्विचिका



संस्कृत भाषा  
उपनिषद्-उपनिषद्

( १२०९९३१ ) संस्कृत

उपनिषद् भाषा

संस्कृत	-१
संस्कृत	-२
संस्कृत	-३
संस्कृत	-४
संस्कृत	-५
संस्कृत	-६
संस्कृत	-७

उपनिषद् भाषा

उपनिषद्	-१
उपनिषद्	-२
संस्कृत	-३
संस्कृत	-४
संस्कृत	-५
संस्कृत	-६
संस्कृत	-७
संस्कृत	-८
संस्कृत	-९
संस्कृत	-१०
संस्कृत	-११
संस्कृत	-१२



कुष्ठ कारण

कुष्ठ सम्प्राप्ति

प्रसारानुसार ३ भेद

१- ग्रन्थित कुष्ठ

२- वातिक कुष्ठ

३- मिश्रित कुष्ठ

रोग प्रभाव काल अवधि

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१- आम्यंग प्रयोग

२- बाल प्रयोग

पथ्य

अपथ्य

२-

शीत पित्त विवेचन Urticaria

शीत पित्त भेद

१- तीव्र  
Acute

२- जीर्ण  
Chronic

जीर्ण भेद

i) Ghint Urticaria जाईंट शीत पित्त

ii) Serum Urticaria सीरय शीत पित्त

3. Papular Urticaria पपुलर शीत पित्त



गणित भाग

गणित भाग

गणित भाग

गणित भाग - १

गणित भाग - २

गणित भाग - ३

गणित भाग भाग

गणित भाग

गणित भाग भाग

गणित भाग भाग

गणित भाग - १

गणित भाग - २

गणित

गणित

गणित भाग भाग

गणित भाग भाग

गणित भाग - १

गणित

गणित भाग - २

गणित

गणित भाग

गणित भाग भाग ( १ )

गणित भाग भाग ( १ )

गणित भाग भाग ( १ )



(घ)

## चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

(१) बाह्य प्रयोग

(२) आन्तरिक प्रयोग

### ३- स्कजीमा (Eczema) ) विवेचन

#### अवस्थाएं ( Stages)

- |    |              |           |
|----|--------------|-----------|
| १- | प्रथमावस्था  | Ist Stage |
| २- | द्वितीयवस्था | 2nd Stage |
| ३- | तृतीयावस्था  | 3rd Stage |
| ४- | चतुर्थावस्था | 4th stage |

#### स्कजीमा भेद ( Varieties of Eczema)

- |    |                       |                |
|----|-----------------------|----------------|
| १- | स्थानिक स्कजीमा       | Local Eczema   |
| २- | शैशव स्कजीमा          | Infancy Eczema |
| ३- | शुष्क स्कजीमा         | Dry Eczema     |
| ४- | स्त्राव युक्त स्कजीमा | Weeping Eczema |
| ५- | चीर युक्त स्कजीमा     |                |
| ६- | खुजली युक्त स्कजीमा   | Prurigo Eczema |

#### चिकित्सा

१- पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

१- स्थानीय

२- आन्तरिक

आयुर्वेदीय चिकित्सा



प्राचीन

प्राचीन कविता

प्राचीन कविता

प्राचीन कविता (१)

प्राचीन कविता (१)

प्राचीन (१) प्राचीन - १  
१-१-१-१-१-१

प्राचीन (१) प्राचीन

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन (१) प्राचीन

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन

प्राचीन प्राचीन प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन - १

प्राचीन प्राचीन प्राचीन



१- बाह्य

३- आभ्यन्तरीय

४- फोड़े फुंसियां विवेचन ( Boils and Frunculosis )

पैचीक चिकित्सा  
-----

१- आधुनिक चिकित्सा

१- बाह्य प्रयोग

२- आभ्यन्तरीय प्रयोग

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१- बाह्य प्रयोग

२- आभ्यन्तरीय प्रयोग

५- जूं विवेचन ( Bedsores )

चिकित्सा  
-----

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

६ शय्यात्रण- विवेचन ( Bed Sores )

चिकित्सा  
-----

१- आधुनिक चिकित्सा

२- आयुर्वेदीय चिकित्सा

७- अट्टन विवेचन ( Corns )

चिकित्सा  
-----

पाश्चात्यामतानुसार चिकित्सा



प्रश्न - १

प्रश्न - २

प्रश्न - ३

प्रश्न - ४

प्रश्न - ५

प्रश्न - ६

प्रश्न - ७

प्रश्न - ८

प्रश्न - ९

प्रश्न - १०

प्रश्न - ११

प्रश्न - १२

प्रश्न - १३

प्रश्न - १४

प्रश्न - १५

प्रश्न - १६

प्रश्न - १७

प्रश्न - १८

प्रश्न - १९

प्रश्न - २०



(प)

आयुर्वेदीय चिकित्सा

८ - लुपस एरिथिमेटोसस विवेचन

( Lupus Erythematosus )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

१- बाह्य प्रयोग

२- अन्तः प्रयोग

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१- अन्तः प्रयोग

२- स्थानीय प्रयोग

९- लुपस वलोरिस विवेचन (Lupus Bulgaris)

चिकित्सा

पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

१- स्थानीय चिकित्सा

२- आन्तरिक चिकित्सा

१०- सोरायसिस विवेचन (Psoriasis )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा



तत्त्वज्ञान प्रमाण

तत्त्वज्ञान प्रमाण - २

(संस्कृत-प्रमाण)

तत्त्वज्ञान

तत्त्वज्ञान प्रमाण

तत्त्वज्ञान प्रमाण - १

तत्त्वज्ञान प्रमाण - २

तत्त्वज्ञान प्रमाण

तत्त्वज्ञान प्रमाण - ३

तत्त्वज्ञान प्रमाण - ४

(संस्कृत-प्रमाण) तत्त्वज्ञान प्रमाण - ३

तत्त्वज्ञान

तत्त्वज्ञान प्रमाण प्रमाण

तत्त्वज्ञान प्रमाण - १

तत्त्वज्ञान प्रमाण - २

(संस्कृत-प्रमाण) तत्त्वज्ञान प्रमाण - ३

तत्त्वज्ञान

तत्त्वज्ञान प्रमाण

तत्त्वज्ञान प्रमाण



(फ)

११- पेम्पिगस विवेचन ( Pemphigus )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१२- अमहोरिया विवेचन ( Prickly Heat )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१३- हर्पिस जोस्टर विवेचन ( Herpes Zoster )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

१- स्थानिक चिकित्सा

२- आन्तरिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१४- हर्पिस सिम्प्लेक्स विवेचन ( Herpes Simplex )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

१५- पेल्लेग्रा विवेचन ( Pellagra )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा



(संस्कृत) (संस्कृत) (संस्कृत) - ११

संस्कृत

संस्कृत की भाषा

संस्कृत की भाषा

(संस्कृत) (संस्कृत) (संस्कृत) - १२

संस्कृत

संस्कृत की भाषा

संस्कृत की भाषा

(संस्कृत) (संस्कृत) (संस्कृत) - १३

संस्कृत

संस्कृत की भाषा

संस्कृत की भाषा - १

संस्कृत की भाषा - २

संस्कृत की भाषा

(संस्कृत) (संस्कृत) (संस्कृत) - १४

संस्कृत

संस्कृत की भाषा

(संस्कृत) (संस्कृत) (संस्कृत) - १५

संस्कृत

संस्कृत की भाषा



(ब)

१- पाश्चात्यामता अनुसार चिकित्सा

२- आयुर्वेदीय चिकित्सा

२०- शतपौनक विवेचन ( Carbuncle )

चिकित्सा

पाश्चात्यामतानुसार चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

२१- पानीवात विवेचन ( Impetigo Contagiosa )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

२२- रोजिशिया विवेचन ( Rosacea )

चिकित्सा

प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा

२३- देहली पिढिका विवेचन ( Delhi Boil Oriental  
- Sore )

चिकित्सा

आधुनिक एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा

२४- मदुरा पैर विवेचन ( Madura Foot Mycetozoa )

चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा



१- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - १

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - १

२- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - २

वास्तविकता

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - २

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - २

३- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ३

वास्तविकता

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ३

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ३

४- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ४

वास्तविकता

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ४

५- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ५

(Sore)

वास्तविकता

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ५

६- वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ६

वास्तविकता

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ६

वास्तविकता का अर्थ (Reality) - ६



आयुर्वेदीय चिकित्सा

१६- टीनिया सिरसीनेटा विवेक ( Tinea Circinata )

चिकित्सा

-----

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१७- स्फोलेटिव डर्मेटाईटिस विवेक

( Exfoliative Dermatitis )

कारण

चिकित्सा

-----

आधुनिक चिकित्सा

(१) बाह्य प्रयोग

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१- (१) बाह्य प्रयोग

(२) आन्तरिक प्रयोग

१८- डर्मेटाईटिस हर्पेटिक फॉर्मिस विवेक

( Dermatitis Herpetiformis )

चिकित्सा

-----

पश्चात्कालीनानुसार चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

१९- डर्मेटाईटिस सेबोरेटिक विवेक

( Dermatitis Seborrhoeic )

चिकित्सा

-----







(म)

२५- चर्मकील और मणक विवेचन ( Warts )  
-----

प्रका र

Varruca Vulgaris

Seborrhoeic Wart

Juveinile Flat Wart.

Verruca Necrogenica

चिकित्सा

आधुनिक एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा

२६- तिलकालक ( Moles ) विवेचन  
-----

चिकित्सा  
-----

प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा

२७- कुन्त और चिप्प विवेचन ( Whit Low )  
-----

चिकित्सा  
-----

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

२८- प्लुष्ट और दग्ध विवेचन ( scalds and Burns )  
-----

चिकित्सा  
-----

आधुनिक मतानुसार

आयुर्वेदीय चिकित्सा



५५- वर्तमान की स्थिति (१९५५)

पृष्ठ १

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

५६- वर्तमान की स्थिति (१९५६)

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

५७- वर्तमान की स्थिति (१९५७)

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

५८- वर्तमान की स्थिति (१९५८)

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति

वर्तमान की स्थिति



(य)

२ - खुजली ( Pruritis ) विवेचन  
-----

कारण

चिकित्सा  
-----

पाश्चात्या मतानुसार चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

३० - शिवत्र विवेचन ( Leucoderma a )  
-----

चिकित्सा  
-----

पाश्चात्या मतानुसार चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

३१ - दुह्र विवेचन ( Ring Worm )  
-----

प्रकार

चिकित्सा  
-----

आधुनिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सा

३२ - पामा विवेचन ( Scabies )  
-----

चिकित्सा  
-----

पाश्चात्यामतानुसार चिकित्सा

१- बाह्य प्रयोग

२- आन्तरिक प्रयोग

आयुर्वेदीय चिकित्सा



संस्कृत ( ) भाषा - ५  
-----

पुष्प

संस्कृत

संस्कृत भाषा का प्रयोग

संस्कृत लिखिए

( ) भाषा - ५  
-----

संस्कृत

संस्कृत भाषा का प्रयोग

संस्कृत लिखिए

( ) भाषा - ५  
-----

पुष्प

संस्कृत

संस्कृत भाषा का प्रयोग

संस्कृत लिखिए

( ) भाषा - ५  
-----

संस्कृत

संस्कृत भाषा का प्रयोग

संस्कृत लिखिए - १

संस्कृत लिखिए - २

संस्कृत लिखिए



बाह्य प्रयोग

## आन्तरिक प्रयोग

३३- युवान पिडिका ( Acne Vulgaris )

चिकित्सा

ब्राधुनिक चिकित्सा

बाह्य प्रयोग

## २- आन्तरिक प्रयोग

## आयुर्वेदीय चिकित्सा

## बाह्य प्रयोग

## अन्ता प्रयोग

३४- हृन्द् लुप्त ( Alopecia ) विवेचन

पिचीव चिकित्सा

# आधुनिक चिकित्सा

## १- बाह्य प्रयोग

## २- अन्तः प्रयोग

# आयुर्वेदीय चिकित्सा

## बाल्य प्रयोग

## अन्ता प्रयोग

त्वक् रोगों पर शम्पाकू मूल का अनुसन्धान पूर्ण मेल्याकिन



गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

( गिरि मन्त्र ) गिरि मन्त्र - ११

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र - १

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र ( गिरि मन्त्र ) गिरि मन्त्र - ११

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र - १

गिरि मन्त्र - १

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र गिरि मन्त्र

गिरि मन्त्र











- १६ - सचित्र आयुर्वेदग्रंथक
- २० - कायचिकित्सा
- २१ - रसतन्त्रसार
- २२ - राजकीय औषधि योग संग्रह
- २३ - मेधाज्य रत्नावली
- २४ - रसन्द्रसार संग्रह
- 25- धन्वन्तरि जंक
26. Diseases of skin by Sequeira
27. Occupational disease of skin by SCHWARTZ. TUTIPAN
28. DERMATOLOGY by Wolf and Witten
29. Disease of skin by ORMSBY. Montgomoly.
30. Recent advances in Dermatology by Hellier.
31. Disease of skin Morshall
32. Chanical Dermatology
33. Dewis practical Dermatology
34. Disease of skin by Andrew.
35. Skin Therapeutics by M.K. Polwe
36. Wright (Physiology)
37. B.D.S.     .. ..
38. Boyd (Pathology)
39. Pathology by Stengel & Fox.
40. Prices of medicines
- Physilogy by Starling
41. Indian medicinal plants.
- 42.
43. Indian Materia Medica



35-	At a glance
36-	At a glance
37-	At a glance
38-	At a glance
39-	At a glance
40-	At a glance
41-	At a glance
42-	At a glance
43-	At a glance
44-	At a glance
45-	At a glance
46-	At a glance
47-	At a glance
48-	At a glance
49-	At a glance
50-	At a glance
51-	At a glance
52-	At a glance
53-	At a glance
54-	At a glance
55-	At a glance
56-	At a glance
57-	At a glance
58-	At a glance
59-	At a glance
60-	At a glance
61-	At a glance
62-	At a glance
63-	At a glance
64-	At a glance
65-	At a glance
66-	At a glance
67-	At a glance
68-	At a glance
69-	At a glance
70-	At a glance
71-	At a glance
72-	At a glance
73-	At a glance
74-	At a glance
75-	At a glance
76-	At a glance
77-	At a glance
78-	At a glance
79-	At a glance
80-	At a glance
81-	At a glance
82-	At a glance
83-	At a glance
84-	At a glance
85-	At a glance
86-	At a glance
87-	At a glance
88-	At a glance
89-	At a glance
90-	At a glance
91-	At a glance
92-	At a glance
93-	At a glance
94-	At a glance
95-	At a glance
96-	At a glance
97-	At a glance
98-	At a glance
99-	At a glance
100-	At a glance











विसर्प रोग त्वचा रोगों में से एक रोग है। यह रोग जब अपना प्रभाव रोगी के वाह्य स्वं भीतरी अवयवों पर करता है, तब रोगी संकटकालीन परिस्थिति में अपने आपको पड़ा हुआ देख कर व्याकुल स्वं अवयवस्थित-चित्त हो जाता है। इस रोग की तीव्र वेदना रोगी को कष्ट देती हुई कई अवस्थाओं में शारीरिक हानि भी पहुंचाती है।

इस रोग की पहचान करने में कई बार चिकित्सक को अन्य रोगों का भ्रम हो जाता है। इस भ्रम के दुरीकरण निमित्त इस रोग की भिन्न भिन्न अवस्थाओं पर विस्तृत व्याख्या पूर्णतया की जा रही है। साथ ही इस रोग की सफल चिकित्सा के लिये अनुभव सिद्ध स्वं अनुसन्धान पूर्ण योगों का भी विस्तृत वर्णन किया जा रहा है जिससे कि वैद्य या डाक्टर इस रोग की चिकित्सा में सफल होकर यश का भागी बने।

इसके साथ साथ अन्य उपयोगी त्वचागत रोगों के निदान स्वं चिकित्सा आदि का भी अनुभव सिद्ध वर्णन आवश्यक होने के कारण संक्षिप्त रूप में किया जायेगा।

यद्यपि त्वचागत <sup>रोग</sup> ( SKIN DISEASES ) बहुत हैं और उनका अस्तित्व भी पृथक् पृथक् रूपेण चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। परन्तु यहां पर विशेष रूपेण विसर्प का ही वर्णन तदनुषंगी मुख्य मुख्य रोग स्वं त्वचा की रचना आदि पर भी यथावश्यक प्रकाश डालते हुए किया जा रहा है, जिससे कि चिकित्सक इस रोग को चिकित्सा में प्रवीण होने के साथ साथ अन्य त्वचागत रोगों की चिकित्सा में भी सफल स्वं सिद्ध हो सके।

त्वचागत रोग बहुत होने के नाते दिन प्रतिदिन वृद्धिशील हैं। जनता को पर्याप्त मात्रा में हानि भी पहुंचा रहे हैं। त्वचा रोगों की विशेष







महत्ता चिकित्सा क्षेत्र में है। इसीलिये इन रोगों की चिकित्सा निमित्त विशेषज्ञ ( ) वैद्य, डाक्टर भी दिन प्रतिदिन अपने ज्ञान की वृद्धि में लग रहे हैं। परन्तु त्वचागत जिद्दी रोग फिर भी जनता को व्यथित कर यमपथ-गामी बनाते ही जा रहे हैं। इन रोगों के निवारणार्थ प्रत्येक चिकित्सक को कटिवद्ध होना चाहिये और रोगी के शरीर की स्वास्थ्य रक्षा निमित्त इन रोगों का विशेष ज्ञान अवश्य करना चाहिये, जिससे कि अन्य रोगों की चिकित्सा में भी सफलता प्राप्त हो सके, क्योंकि त्वचा की रक्षा न करना और रक्षा निमित्त कारणों के ज्ञान से वंचित रहना ही मानव के लिये प्रायः सब रोगों का मूल कारण है।

~~~~~  
 विसर्प (ERYSIPELAS)  
 ~~~~~

त्वदमांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः  
 सर्वांगिसारिणमिहास्थितमात्मलिङ्गम्।  
 कुर्वन्ति विस्तृतमनुन्नतमाशु शोफं  
 तं सर्वतो विसरणाच्च विसर्पमाहुः

( सुश्रुत स० नि० अ० १० श्लोक ३ )

त्वचा या त्वचा में स्थित लसीका, रक्त, मांस आदि धातुओं में व्याप्त प्रकृपित्र वात आदि दोष बाहर, भीतर एवं शरीर के चारों ओर सर्वांगों में फैलने वाला, प्रथम पीड़ित स्थान से हट जाने वाला, अपने अपने वात पित्त कफ आदि लक्षणों से युक्त, एक प्रकार का विस्तृत और अनुन्नत शोथ कर देता है। इस रोग को सर्वत्र विसर्पण करने से विसर्प कहते हैं।

चरक ने भी इसे विसर्प और परिसर्प के नामों से पुकारा है, क्योंकि यह विविध प्रकार से फैलता है इसलिये इसे विसर्प और चारों तरफ फैलने से परिसर्प कहा है। यथा:-

विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।







परिसर्पौ थवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक १०)

रक्त, लसीका, त्वचा मांस ये इस रोग के दूष्य हैं और दूषित वात पित्त कफ से इनमें भिन्न २ प्रकार की विकृति पायी जाती है। अर्थात् रक्त लसीका त्वचा मांस तथा तीनों दोष ये विसर्प रोग की उत्पत्ति में विशेष कारण माने गये हैं। इनके अतिरिक्त विसर्प का प्रभाव अन्य धातुओं पर भी अवश्य पड़ता है, जैसे:-

रक्तं लसीका त्वदमांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ।

विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक १४)

यह रोग त्वचा और त्वचा में रहने वाली लसीका वाहिनियों आदि की विकृति से उत्पन्न होता है। इसमें विशेष शोध युक्त और तरुण संग्रामक ज्वर युक्त पीड़ा भी रहती है।

आजकल प्रायः त्वचा के रोगों की संख्या दिन प्रतिदिन अधिक हो रही है। क्योंकि जनता की रोगक्षमता शक्ति मिथ्याहार विहार एवं वायु, जल, देश काल आदि के परिवर्तन से क्षीण हो रही है। रोग क्षमता शक्ति के अभाव से संग्रामक रोग एवं अन्य सब प्रकार के रोग शरीर को आक्रान्त कर लेते हैं। यह विसर्प रोग यदि किसी व्यक्ति को अपना शिकारी बनाता है तो उसे यदि योग्य चिकित्सक, परिचारक एवं उच्चकोटि की औषध नहीं मिलती तो यह रोग अपना प्रभाव मर्म स्थानों तक करके कष्ट-साध्यता एवं असाध्यता को प्राप्त होता है।

यदि साधारण विसर्प की भी चिकित्सा न की जायेगी तो वह भी कृच्छ्र साध्य एवं असाध्य लक्षणों को प्राप्त कर लेगा।







यथोक्तम्:-

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः

सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति।

पैतानिलावपि च दर्शितपूर्वलिङ्गा

सर्वे च मर्मसु भवन्ति हि कृच्छ्रसाध्याः

( सु० सं० नि० अ० १० श्लोक ८ )

वात पित्त कफ के कारण से होने वाले विसर्प चिकित्सा के योग्य होते हैं और उनमें सफलता भी मिलती है। परन्तु सन्निपात और क्षय जन्य विसर्प ठीक नहीं होते।

इसके अतिरिक्त वह पेक्षिक विसर्प जिसमें शरीर अंजन के समान कालिमा लिये हो जाये! असाध्य माना गया है। मर्मस्थानों में होने वाले सभी विसर्प कृच्छ्रसाध्य होते हैं।

यहां इस पद्य में कृच्छ्र शब्द का प्रयोग असाध्यता की ही द्योतकता के निमित्त कहा गया है, अर्थात् मर्मस्थानों के सब विसर्प असाध्य ही होते हैं।

भोज आचार्य ने भी क्षतज, सन्निपातज एवं मर्मस्थानीय विसर्पों को असाध्य समझ कर ही उनसे ग्रसित रोगियों की चिकित्सा करने का निषेध किया है। यथोक्तम्:---

वर्ज्यस्तु क्षतजस्तेषां सन्निपातास्तु यो भवेत्।

मिषजा जानता त्याज्याः सर्वे स्व तु मर्मजाः॥

( भोज संहिता )

इस समय कृच्छ्र साध्य एवं असाध्य विसर्प रोग की चिकित्सा को सुलभ एवं सरल करने के लिये यहां पर अनुसन्धानात्मक तथ्यों का ही विशेष वर्णन आवश्यक है। इसके साथ साथ इस रोग पर पूर्ण रूपेण सर्वाशितः प्रकाश डाला जायेगा, जिससे कि एक चिकित्सक अनुसन्धान पूर्ण तथ्यों से पूर्णतया लाभ



: प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना  
 : प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना  
 : प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना  
 : प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

( ३ अंश ०१ ०२ ०३ ०४ ०५ )

१. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

२. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

३. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

४. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

५. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

६. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

७. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

८. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

९. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

१०. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

—: प्रस्तावना ११. प्रस्तावना

१२. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

१३. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

( १४. प्रस्तावना )

१५. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

१६. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

१७. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना

१८. प्रस्तावना प्रस्तावना प्रस्तावना



उठाकर रोगी को बिरोगी कान्तिवान् एवं आभा युक्त स्वस्थ बनाता हुआ  
यश का पूर्ण भागी बन सके। मनुष्य की सुन्दरता को त्वचा रोग विशेष रूप  
में नष्ट करते हैं।

-0-0-0-0-0-

~~~~~  
विसर्प में त्वचा का धनिष्ठ सम्बन्ध  
~~~~~

विसर्प रोग का त्वचा की विकृति से धनिष्ठ सम्बन्ध है और  
इसमें न केवल त्वचा ही विकृति को प्राप्त होकर रोग का कारण होती  
है बल्कि इस रोग में मांस शोणित आदि भी वातपित्तकफ आदि की दृष्टि  
से विकृत होकर भिन्न २ लक्षणों को प्रकट करते हुए इस रोग के मूल कारण  
हैं। यथा:--

रक्तं लसीका त्वदमांसं दुष्यं दोषास्त्रयो मलाः।

विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त वातवः ॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक १४)

अतः सर्वप्रथम इस रोग में दुष्यों ( त्वचा, लसीका, रक्त? मांस)  
की रचना क्रिया विज्ञान एवं विकृति-विज्ञान आदि का आवश्यकीय विशिष्ट  
ज्ञान एक सुयोग्य चिकित्सक के लिये अत्युपयोगी है, इसलिये यहां पर इन  
सात दुष्यों में से संक्षिप्त एवं उपयोगी विवरण आवश्यक एवं चिकित्सा-  
हितार्थ बहुत श्रेयस्कर सिद्ध होगा। जिसमें कि त्वचा आदि के उचित क्रिया  
कलापों और विकृतियों आदि के विशेष ज्ञान से चिकित्सा के समय औषधों  
के प्रत्येक भाग पर होने वाले कार्य को सम्यक् प्रकार से जांचा जा सकेगा।

0-0-0-0-0







## त्वचा (Skin)

त्वचा सर्व शरीर को आवृत किये रहती है। यह स्पर्शनिन्द्रिय और स्वेद वह और रोम कुपो का विशेष अधिष्ठान है। यह शीत उष्ण आदि स्पर्शों का ज्ञान कराने में समर्थ है। यह त्वचा हितकारी-अहितकारी स्पर्श ज्ञान द्वारा शरीर की रक्षा करती है।

यह त्वचा अपने भीतर स्थित भ्राजक पित्त की सहायता से शरीर गत उष्मा का नियन्त्रण करती है। लेप आदि, व्यों के अंश को ग्रहण करके शरीर में पहुंचाती है।

यथा :-

यत्तु त्वचि पित्तं तस्मिन् भ्राजको ग्निरिति संज्ञा, सो म्यंगपरिषे-  
का-कशाहालेपनादीनां क्रियाद्रव्याणां पयता ह्यायानां च

प्रकाशकः ॥

( सु० सु० २१।१० )

( पित्तं ) त्वक्स्थं भ्राजकं प्राजनात् त्वचः ॥

( अ० हृ० सु० १२।१४ )

यह शरीर की सुन्दरता प्रमा (१) का तत्ति स्व व्यक्तित्व का प्रतीक है। यह स्वेद ग्रन्थियों का आधार होने का कारण उनसे होने वाले कर्मों का स्व मेघो ग्रन्थियां, नख, रोम, केश, तथा स्तन आदि की ग्रन्थियों का भी आश्रय है।

प्रमा (१):-

स्यात् तेजसी प्रमा सर्वा सा तु सप्तविधा स्मृता।

रक्ता पीता सिता श्यावा हरिता पाण्डुरा सिता ॥

तासां याः स्युर्विकासिन्यः स्निग्धाश्च विपुलाश्च यः।

ताः शुभा रुक्तामलिनाः संक्षिप्ताश्चाशुमोदयाः ॥

( अ० हृ० ७।१४।१५ )



•

11: 47:58

-(8) 778



अनुमान द्वारा जानने योग्य सम्पूर्ण इन्द्रियें यद्यपि पांचों महाभूत ( पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ) के विकार का ही समुदाय भूत है और त्वचा के पांच भौतिक होते हुए भी इसमें वायु भूत की प्रधानता है। इसीलिये यह त्वचा वायु भूत के प्रधान गुण स्पर्श का ही ग्रहण करती है।

तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियं विशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति,  
तत्स्वभावाद्भिभुत्वाच्च॥

(च० सू० ८।१४)

सर्व प्रकार की प्रभा तेज तत्त्व प्रधान होती है। रक्त, पीत, श्वेत, श्याव, हरित, पाण्डुर एवं कृष्ण आदि भेदों से यह ७ प्रकार की है। इनमें से जो सर्व ओर विकास ( प्रसार ) करने वाली स्निग्ध एवं विशाल प्रभाएं हैं वे शुभ सूचक होते हैं। रुक्षमलि तथा सङ्क्षिप्त प्रभाएं अशुभ कर अर्थात् अनिष्टकारक हैं। यदि प्रभाएं अस्मक अकस्मात् उत्पन्न हों तो अरिष्ट लक्षणों अर्थात् मरण सूचक लक्षणों को उत्पन्न करती हैं। यदि ये प्रभाएं जन्म से ही मनुष्य में पायी जायें तो उनके लिये अनिष्ट फल सर्वदा देती रहती हैं।

प्रभा और छाया का अन्तर:-

वर्णमात्रामति च्छाया भास्तु वर्णप्रकाशिनी।

आसन्ना लक्ष्यते च्छाया भाः प्रकृष्टा प्रकाशते॥

(च० उ० ७।१६)

छाया और प्रभा में अन्तर यही है, कि छाया वर्ण का ठीक प्रकार से ज्ञान नहीं होने देती और प्रभा वर्ण को प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त यह भी अन्तर है, कि छाया समीप से ही दिखाई देती है। और प्रभा दूर से ही स्पष्ट होती है। जैसे मणि, मुक्ता आदि की प्रभा दूर से प्रकट हो जाती है।



( 8912 OF 07 )

(8310 05 0F)



इन्द्रियेणैन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः।

नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः ॥

( सु० शा० अ० १ श्लोक १६ )

सर्व शरीर के संज्ञा वह सूत्र ( )

मांस धरा कला त्वक् इसी त्वचा स्तर में रहते हैं। मांस धरा कला को सुश्रुत में त्वचा का ही एक भेद मानते हुए सात त्वचाएं वर्णित की हैं। इसलिये प्राचीन मत सम्यक्त त्वचा का स्मैस स्पर्शेन्द्रिय का अधिष्ठान होना।

पंचेन्द्रियाधिष्ठानानि-- तथा त्वक्, जिह्वा, नासिका, अक्षिणी कर्णाणि च इत्यादि भी असंगत न ही है।

शरीर षट् त्वचः, तथा--उदक्धरा त्वग्वाहया,

द्वितीया त्वगसृग्धरा, तृतीया सिध्मकिलाससम्भवाधिष्ठाना,

चतुर्थी दद्रुकुष्ठसम्भवाधिष्ठाना, पंचम्यलजी विद्रधीसम्भवा-

धिष्ठाना, षष्ठी तु यस्यां क्षिन्नायां ताम्यत्यन्ध इव च तमः

प्रविशति यां चाप्यधिष्ठायां षि जायन्ते पर्वसु कृष्णरक्तानि

स्थूलमूलानि दुश्चिकित्स्यतमानि चेति षट् त्वचः, स्काः

षडंगं शरीरमवतत्य तिष्ठन्ति

( च० शा० अ० ७ श्लोक ४ )

अर्थात्:-

प्रथमा:- उदक्धरा ( वाहय त्वक् EPIDERMIS )

द्वितीया: असृग्धरा। (यह रक्त को धारण करती है।)

तृतीया:- सिध्म, और किलास रोगों की उत्पत्ति का अधिष्ठानभूत है।

चतुर्थी:- दद्रु और कुष्ठ रोग की उत्पत्ति का आश्रय है।

पंचमी:- अलजी, विद्रधि रोगों की उत्पत्ति का अधिष्ठानभूत।



I : एतत् प्रमाणम् किं तु प्रमाणं प्रमाणम्

II : प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

( ३९ प्रमाण १ ०६ ०१५ ०८ )

( ) एतत् प्रमाणं किं तु प्रमाणं प्रमाणं

एतत् प्रमाणं किं तु प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं किं तु प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं प्रमाणं

( ४ प्रमाण ० ०६ ०१५ ०८ )

-: प्रमाण

( २१ १४३०१५ ३ प्रमाण प्रमाण ) प्रमाण

-: प्रमाण

( १५ प्रमाण प्रमाण किं तु प्रमाण ) प्रमाण

-: प्रमाण

प्रमाण प्रमाण प्रमाण किं तु प्रमाण प्रमाण

-: प्रमाण

प्रमाण प्रमाण प्रमाण किं तु प्रमाण प्रमाण

-: प्रमाण

प्रमाण प्रमाण प्रमाण किं तु प्रमाण प्रमाण

-: प्रमाण



ब-ष्ठी:- यह त्वचा की वह स्तर है जिसके कट जाने पर मनुष्य अन्यकार से युक्त हो जाता है और अन्धे की भ्रान्ति सारी वस्तुओं को अन्कारमय देखता है। इसी स्तर का अधिष्ठान करके शरीर सन्धियों में काले लाल स्थूल मूल वाले चिकित्सा करने में कठिन फोड़े फुन्सियां उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार ६ त्वचा की स्तरों सारे षडंगीय सम्पूर्ण शरीर को आवृत किये रहती हैं। यह भी शरीर का बहुत महत्व पूर्ण भाग है।

सम्पूर्ण शरीर की त्वचा का भार लगभग ४ किलोग्राम है।

आधुनिक मतानुसार भी त्वचा के दो भाग ही हैं।

(१) बाह्य त्वक् (EPIDERMIS)

(२) अन्तस्त्वक् (DERMIS)

बाह्य त्वक् (EPIDERMIS) चार स्तरों से और अन्तस्त्वक् दो स्तरों से निर्मित है। इसलिये चरक के मतानुसार गणित ६ स्तर भी त्वचा के संगत ही हैं। सुश्रुत आचार्य ने मांस धरा कला को त्वचा का ही मे-त्र भेद समझा है। इसी से त्वचा स्तरों की संख्या सुश्रुत में ७ मानी गयी है। इस मत में पहले पांचों स्तर (वेदनी) तक मिला कर बाह्य त्वक् और अन्य दो अन्तस्त्वक् कहलाते हैं। जैसा सुश्रुत में लिखा भी है:-

तस्य खल्वेवं प्रवृत्तस्य शुक्रशोणितस्या-~~न~~ निषच्यमानस्य क्षीरस्येव

सन्तानिकाः सप्त त्वचो-भवन्ति। तासां प्रथमा वभासिनी नाम,

या सर्वां वर्णान्वभासयति पंचविधां च क्वायां प्रकाशयति। सा

ब्रीहैरष्टादशभागप्रमाणा, सिध्मपद्मकण्टकाधिष्ठाना।

द्वितीया लोहिता नाम ब्रीहिषोडशभागप्रमाणा,

तिलकालकन्यच्छव्याधिष्ठाना।

तृतीया श्वेता नाम ब्रीहिद्वादशभागप्रमाणा,

चर्मदलाजगत्लीमशकाधिष्ठाना।



(2015-234193) 505 PGP (3)

(5) 2011-12 (D.F.R. 112)

FILE # 1575 JTR ( 21M830195 ) 007 P07P



चतुर्थी ताम्रा नाम त्रीहेरष्टभागप्रमाणा, विधिकिलासकुष्ठा विष्ठाना।

पंचमी वेदिनी नाम त्रीहिपंचभागप्रमाणा, कुष्ठविसर्पाविष्ठाना।

षष्ठी रोहिणी नाम त्रीहिप्रमाणा, ग्रन्थयच्यर्बुदश्ली-  
पदगलगण्डा विष्ठाना।

सप्तमी मासंधरा नाम त्रीहिद्वयप्रमाणा, मग्नदरविद्रध्यशो वि-  
ष्ठाना।

यदेतत् प्रमाणं निर्दिष्टं तन्मासलेष्ववकाशेषु,

न तलाटे सूक्ष्मांगुल्यादिषु च,

( सु० शा० अ० ४ श्लोक ४ )

अर्थात् इस प्रकार भूतात्माधिष्ठित शीत उष्ण आदि से <sup>प्रच्यमान</sup> ~~भवमान~~ शुक्र और शोणित संयोग रूप गर्म की सात त्वचाएं होती हैं। जैसे दूध के पकने पर मलाई आदि की स्तरे।

उनमें से प्रथमा:- अवभासिनी नामक त्वचा स्तर है। इस त्वचा से शरीर के सब वर्ण प्रकाशित होते हैं। इसी द्वारा पंच प्रकार की <sup>(१)</sup> छाया भी प्रकाशित होती है। यह स्तर त्रीहि धान्य के अठारवें भाग प्रमाण है। इसमें सिध्म पद्मकण्टक नामक रोग होते हैं।

छाया  
(१)

संस्थानभाकृतिज्ञेया सुषमा विषमा च या।

मध्यमत्वं महच्चोक्तं प्रमाणं त्रिविधं नृणाम् ॥

प्रतिप्रमाणसंस्थाना जलादशतिपादिषु।

छाया या सा प्रतिच्छाया छाया वर्णप्रमाश्रया ॥

( च० ह० अ० ७।७।८ )

ह्रस्व-य-स-प्रति

संस्थान अवयवों की रचना स्थिति आदि को आकृति समझना चाहिये। यह दो प्रकार की होती है। सुषम और विषम भेद है। सुषम शरीर की सुघटित स्थिति को कहते हैं और विषम शब्द शरीर की अव्यव-



( 21010 015 07 01 )

1880 1881 1882 1883 1884 1885 1886 1887 1888 1889 1890 1891 1892 1893 1894 1895 1896 1897 1898 1899 1900



दूसरी लोहिता नामक त्वचा है। यह त्वचा स्तर ग्रीहि के १६ वें भाग प्रमाण है। यह तिलकालकन्यच्छ, व्यंग आदि रोगों का अधिष्ठान है।

तृतीया श्वेता नामक त्वचा है। यह ~~कृत्स्न~~ स्तर ग्रीहि (जोधान्य) के बारहवें भाग प्रमाण है। यह चर्मदल अजगल्लिका, तथा मषक रोगों का अधिष्ठान है।

चतुर्थी ताम्रा नामक त्वचा है। यह स्तर ग्रीहि (धान्यके) आठवें भाग प्रमाण होती है। यह विविध के किलास और कुष्ठ का अधिष्ठान है।

स्थित स्थिति के लिये प्रयुक्त है।

मनुष्य लम्बाई चौड़ाई आदि प्रमाण से तीन प्रकार के होते हैं। लघुकाय, मध्यकाय, एवं विशालकाय।

जल दर्पण आदि में प्रमाण और आकृति (संस्थान) के सदृश जो छाया अर्थात् प्रतिबिम्ब पड़ता है उसे प्रतिछाया कहते हैं। जो छाया वर्ण और प्रमा के आश्रित रहती है वह छाया कहलाती है। आकाश आदि पंचभूतों के अनुसार छाया के पांच भेद हैं।

खादीनां पंच पंचानां छाया विविधलक्षणाः।

नाभसी निर्मला नीला सस्नेहा सप्रमेव च ॥

रुक्ता श्यावा रुग्णा या तु वायवी सा हतप्रभा।

विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्ताभा दर्शनप्रिया ॥

शुद्धवैदूर्यविमला सुस्निग्धा चाम्भसी मता।

स्थिरा स्निग्धा घना श्लक्ष्णा श्यामा श्वेता च पार्थिवी ॥

वायवी गर्हिता त्वासां चतस्रः स्युः शुभोदयाः।

वायवी तु विनाशाय क्लेशाय महते पि वा ॥

(च० ह० अ० ७।१०।१३)







पंचमी वेदनी नामक त्वचा है। यह स्तर ग्रीहि धान्य के पंचम भाग प्रमाण है। इसमें कुष्ठ विसर्प रोग अपना अधिष्ठान बनाते हैं।

षष्ठी रोहिणी नामक त्वचा है। यह त्वचा स्तर ग्रीहि धान्य प्रमाण है। यही स्तर ग्रन्थि, अपबी, अर्बुद, श्लीपद-- गलाण्ड रोग की उत्पत्ति का अधिष्ठान है।

सप्तमी मांस धरा नामक त्वचा है। यह त्वचा का स्तर दो ग्रीहिधान्य ( जो ) के प्रमाण है। इसी स्तर में भगन्दर विद्रधि तथा अर्श रोग होता है।

यह जो त्वचा स्तरों का प्रमाण बतलाया गया है। वह केवल मांसल प्रदेशों के लिये ही है, न कि ललाट ( मस्तिष्क ) एवं सुक्ष्मांगुलि आदि की त्वचा स्तरों का है।

सुश्रुत मत का आधुनिक मतानुसार इस प्रकार समन्वय हो सकता है क्योंकि शरीर क्रिया शास्त्रवेत्ताओं ने भी अणुवीक्षण यन्त्र (

१ द्वारा त्वचा की ७ स्तरों का स्पष्टीकरण कर दिया है

जैसे:-

न०	आधुनिक मतानुसार नाम	आकृति अनुसार नाम	सुश्रुतानुसार नाम
१	STRATUM CORNEUM	शागिणी या कठिनस्तर	अवमासिनी
२	STRATUM LUCIDUM	स्वच्छ स्तर	लोहिता
३	STRATUM GRANULOSUM	कण्मय स्तर	श्वेता
४	STRATUM MALPIGHI	वर्णमय स्तर	ताम्रा
५	STRATUM GERMINATIVUM		वेदनी

इन पांच स्तरों के मिलाप से बाह्य त्वचा ( ~~EP~~ Epidermis ) बनती है। यह बाहर से भीतर की ओर रहती है। यह बाह्य त्वचा अत्यन्त



•

STATIONARY

PAKISTAN PAKISTAN

387KA-LNW GRAVITO201

STRA-TOE BATHING



पतली सिरा और धमनी (VEINS and ARTERY) आदि के रहित होती है। यह बाह्य त्वक् (EPIDERMIS) हाथ और पैर के तलों में मोटी होती है। उसमें स्वेद वृक्षों की अधिकता होती है। इसके स्तरों का पोषण सूक्ष्म लसीकावाही श्रोतों द्वारा होता है।

अन्तस्त्वक् (DERMIS) में सूक्ष्म अक्षुर होते हैं। वह त्वक् इन्हीं सूक्ष्म अक्षुरों (PAPILLA) द्वारा आवृत रहती है। हाथ और पैरों के तलों पर ये अक्षुर बड़े और रेखाओं में होते हैं। इन की इस रचना के कारण ही वह त्वक् (EPIDERMIS) का आवरण भी सम और विषम रूपेण देखा जाता है और इसी से सामुद्रिक शास्त्र में प्रसिद्ध रेखाएं तथा शंख चक्र आदि चिन्ह बन जाते हैं। इन अक्षुरों और रोमों (HAIR FOLLICLES) के मूल के चारों ओर संज्ञा नाड़ियों (SENSORY NERVES) के प्रतान होते हैं।

### १- अवभासिनी (STRATUM CORNEUM):-

यह पहला स्तर आवरण तन्तु (HORNY EPITHELIUM) कोणों से बना हुआ होता है। हाथ पैरों के तन्तुओं पर यह स्तर अधिक मोटा होता है। इस स्तर में सिध्म (TINEA PITYRIASIS, VERSICOLOR) तथा पक्कष्टक (PIGMENTED NEVI) नामक रोग होते हैं। इसी स्तर को (STRATUM CORNEUM) अवभासिनी नामक स्तर से पुकारा जाता है।

66 - Tinea or Pityriasis versicolor is a desquamative condition due to the presence of microstomum fungus in the Horny Epithelium (Stratum Corneum) - There are yellowish, Reddish or Brownish.



प्राप्त है तथा (PAPER 1) का नाम है

द्वितीय है (PAPER 2) का नाम है

तृतीय है (PAPER 3) का नाम है

चतुर्थ है (PAPER 4) का नाम है

पंचम है (PAPER 5) का नाम है

षष्ठ है (PAPER 6) का नाम है

सप्तम है (PAPER 7) का नाम है

अष्टम है (PAPER 8) का नाम है

नवम है (PAPER 9) का नाम है

दशम है (PAPER 10) का नाम है

एकादश है (PAPER 11) का नाम है

द्वितीय है

प्राप्त है (PAPER 12) का नाम है

तृतीय है (PAPER 13) का नाम है

चतुर्थ है (PAPER 14) का नाम है

पंचम है (PAPER 15) का नाम है

षष्ठ है (PAPER 16) का नाम है

सप्तम है (PAPER 17) का नाम है

अष्टम है (PAPER 18) का नाम है

नवम है (PAPER 19) का नाम है

दशम है (PAPER 20) का नाम है

एकादश है (PAPER 21) का नाम है

द्वितीय है (PAPER 22) का नाम है



Spots covered by scales."

(PATHOLOGY BY STRENGEL AND FOX)

## २- लोहिता (STRATUM LUCIDUM)

इस की मोटाई अधिक नहीं होती। इस स्तर त्वक में

तिलकालक (PIGMENTED NEVI) च्यच्छ (CHELUSMA CHACHELICORUM) और च्यंग (CHLEASMA CALORICUM)

नामक रोग इस स्तर में होते हैं। इस स्तर को लोहिता (STRATUM LUCIDUM) कहते हैं।

Pigmented nevi consist of Angiomatous, Fibrous and Epithelial Hyperplasia carrying pigment both in epithelial and cuticular layers.

(PATHOLOGY BY STENGEL AND FOX)

## ३- श्वेता (STRATUM GRANULOSUM):-

यह स्तर कई तहों से युक्त एवं दानेदार होता है। इसमें

चर्मदल (MOLLUSCUM CONTAGIOSUM) बजाल्लिका (DEVIER'S DISEASE) और मशक (MOLES) नामक रोग होता

है। इस स्तर को श्वेता (STRATUM GRANULOSUM) कहते हैं।



2672. Covered by scales.

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

- 2672 (STRATUM GRANULOSUM)

It is not clear if this is the same as the one in the next slide.

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

It is not clear if this is the same as the one in the next slide.

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

Pigmented area consisting of fibrous and epithelial hyperplasia carrying pigment cells in epithelial and cuticular layers.

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

- 2673 (STRATUM GRANULOSUM)

It is not clear if this is the same as the one in the next slide.

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

(PHOTOGRAPH BY STEINER AND FOX)

It is not clear if this is the same as the one in the next slide.



The most striking feature in a section is the presence of between the Malpighian and horny layer of large cells containing large transparent oval bodies. These are known as "Psorosperms" and at one time were thought to be coccidial bodies but are now considered to be the degenerations of cell protoplasm.

The lesions consist of small lentil to Peasized bodies of a white or pinkish colour with a smooth glistening surface. They are dome shaped and appear as wheals on the skin. They are dome shaped and appear as wheals on the skin. (Price's Medicine)

४- ताम्रा (STRATUM MALPIGHI OR RET. MUCOSUM).

इस स्तर की रचना कई तहों से बनी हुई होती है। वर्ण

की अधिक मात्रा इसी स्तर में रहती है। उपरोक्त तीनों स्तरों में यह

उत्तरोत्तर कम होती जाती है। इस स्तर में विविध किलास (BLASTOMYCOSIS

) और कुष्ठ (LEPROSY) होते हैं। इस स्तर को

ताम्रा (STRATUM MALPIGHI OR RET. MUCOSUM) कहते हैं।

Blastomycosis is a specific inflammation of both the Epidermal and dermal layers. The affection presents a diffuse thickening of the skin warty and ulcerative eruptions similar to epithelioma and tuberculosis. Papules or pustules may form. The lesions in the epiderm are infiltration of Polynuclears between the deep epithelial layers. The cells of which are swollen and separated and hyperplasia with an irregular prolongations into the corium.

(PATHOLOGY BY STENGEL AND FOX)



The most striking feature in a section is the presence of between the epithelium and horny layer of large cells containing large transparent oval bodies. These are known as psorosperms and at one time were thought to be accidental bodies but are now considered to be the degenerative of cells of the epithelium. The lesions consist of small lentils to flattened bodies of a white or pinkish colour with a smooth distinct surface. They are dome shaped and open on the surface and are located in the (epithelial tissue) (epithelium).

It is a disease of the skin.

It is a disease of the skin.

It is a disease of the skin.

It is a disease of the skin.

It is a disease of the skin.

Blastomycosis is a specific inflammation of both the epithelium and dermal layers. The affection presents a diffuse thickening of the skin with and extensive eruptions similar to epithelioma and tuberculosis. Papules or pustules may form. The lesions in the epithelium are infiltration of polymorphous cells between the deep epithelial layers. The cells of which are swollen and separated and hyperplasia with a tendency to proliferate into the corium.

(PATHOLOGY BY STEWART AND FOX)



### ५- वेदनी ( STRATUM GERMINATIVUM ) :-

यह स्तर ताम्रा नामक त्वचा स्तर के नीचे होता है। यह पांचों स्तर मिलकर बाह्य त्वक् ( EPIDERMIS ) कहलाते हैं। इनका पोषण लसीका द्वारा होता है। इनमें रक्त वाहिनियां नहीं होतीं। इस स्तर में नाड़ीय सूत्र ( NERVE FIBRES ) विशेष पाये जाते हैं। यह वेदना का अनुभव अधिक करती है। इसी लिये इसे वेदनी (STRATUM-GERMINATIVUM)

) कहते हैं। यदि अग्नि आदि से दग्ध होने का प्रमाण इस स्तर तक पहुंच जाता है। तो वेदना अधिक होती है। इस स्तर में कुष्ठ ( LEPROSY ) और विसर्प ( ERYSIPELAS ) आदि रोग होते हैं।

इस प्रकार यह बाह्य त्वक् अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर पांच स्तरों के रूप में एवं आन्ध्यान्तरीय त्वक् निम्न दो स्तरों के रूप में ही दिखाई देती है।

न० आधुनिक नाम	आकृति अनुसार नाम	सुश्रुतानुसार नाम
१- PAPILLARY LAYER	अक्षुरमयस्तर	रोहिणी
२- RETICULAR LAYER	जालक स्तर	मांसवरा

यह आन्ध्यान्तरीयत्वक् ( DERMIS ) मोटे स्तरों से बनी हुई है। और स्पर्शेन्द्रिय का मुख्य अविष्टान है। इसके द्वारा शरीर के ताप की रक्षा तथा स्नेह इत्यादि का शोषण होता के रहता है। इसमें केशिका जाल तथा स्पर्शकुंरिकारं होती हैं। इसके साथ इसमें स्थिति स्थापक सूत्र और भेदस तन्तु भी पाये जाते हैं। शरीर के कुछ भागों जैसे चूचक ( NIPPLE ) शिश्न ( PENIS ) और वृष्ण ( TESTICLES ) में स्वतन्त्र पेशी सूत्र भी पाये जाते हैं, कुछ पेशी सूत्र रोमकूपों ( HAIR FOLLICLES ) तथा स्वेद ग्रन्थियों ( SWEAT GLANDS ) में भी पाये जाते हैं। अन्तस्त्वक्



STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)

STATIONER'S COPY (201430193)



में रक्त वहनोत्, रसायनियां, मेदमरु-मेदमरु-मेद मेदधारी एवं अमेदधारी नाड़ी सूत्र भी सम्बद्ध रहते हैं।

इस आभ्यन्तरीय और बाह्य त्वक् के मध्यस्त कोषों में

मैलेनिन ( *MELANIN* ) नामक रंजक ( *PIGMENT* ) द्रव्य

होता है। इसके भिन्न वर्णों के कारण भिन्न भिन्न जातियों में मनुष्यों के

श्याम, पीत, शुभ्र एवं श्वेत आदि भिन्न वर्ण पाये जाते हैं। मैलेनिन के अभाव

अभाव में त्वचा का स्वाभाविक वर्ण लाल ही होता है। यह लाल वर्ण भी

आभ्यन्तरीय त्वक् में स्थित केशिकाओं के कारण होता है। यूरोपीयनों

में रंजक न्यूनतम तथा हवशियों में अधिकतम होता है।

१- रोहिणी ( *PAPILLARY LAYER* ):-

यह आभ्यन्तरीय त्वक् का बाहरी स्तर है। इस स्तर में

रक्तवाहीनियां ( *BLOOD VESSELS* ) लसीका वाहीनियां ( *LYMPH-*

*VESSELS* ) वात नाड़ी सूत्र और सोम घातु आदि होते हैं। इसमें छोटे छोटे

अंकुर बने होते हैं। इन्हीं के कारण उंगलियों में सामुद्रिक सम्पत चक्र आदि

चिन्ह बने होते हैं। वहि त्वक् का चतुर्थ और पंचम स्तर इसी के उपर होता

है। इसी स्तर में श्लीपद, ग्रन्थि ( *CYST* ) अपची ( *TUBERCULOUS* )

अर्बुद ( *TUMOUR* ) श्लीपद ( *ELEPHANTIASIS* ) गलाण्ड

( *SEROFULA* ) आदि रोग होते हैं।

Elephantiasis is a chronic thickening of the corium and deeper tissues of unknown origin in some cases while others are due to filaria in the lymph vessels, to passive congestion chronic dermatitis like Eczema and to mechanical lymph and blood stasis."



REPORT ( 2121TA9313 ) PP. 100 ( 8 NOV 67 )



## २-मांसपरा (RETICULAR LAYER):-

इस की रचना भी उपरोक्त स्तर की मान्ति ही होती है। यह स्तर जाल के समान फैला हुआ आन्तरिक त्वक् का भीक्षरी स्तर है। यह त्वक् शय्या के उपर रहता है। इसमें स्थित सौंक्रिक तन्तु और स्नेह कौषाण्डा रहते हैं। सिरा धमनी और रसायनी की सूक्ष्म शाखायें तथा नाड़ियें भी फैली रहती हैं। इसके अतिरिक्त रोमों के मूल काण्ड भाग, वसा ग्रन्थियां, स्वेद ग्रन्थियों के ग्रोत तथा रोमों से बन्ने हुए सूक्ष्म मांसतन्तु आदि होते हैं।

सब स्तरों की मोटाई मिलाकर उपरोक्त प्रमाण से---

$1/18$      $1/16$      $1/12$      $1/8$      $1/5$      $1/2$

लगभग साढ़े तीन सन्तान यव के समान होती है। यह प्रमाण साधारण मोटाई से सम्बन्धित है, कहीं कहीं पर यह प्रमाण अधिक और कम भी होती है।

जैसे प्राचीन आचार्यों की त्वचा स्तर गणना में भिन्नता पाई जाती है, उसी प्रकार आधुनिक मतानुसार भी त्वचा के स्तरों की गणना में भिन्नता पाई जाती है।

चरक आचार्य और वाग्भट्ट आदि त्वचा की स्तरों को ६ भागों में विभक्त करते हैं, जब कि सुश्रुत आचार्य ने सात भागों में विभक्त कर दिया है। सुश्रुत आचार्य ने जो मांसपरा नामक स्तर वर्णन किया है, वह चरक और वाग्भट्ट में नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार कई आधुनिक वैज्ञानिक भी त्वचा को ६ भागों में और सात भागों में विभक्त करते हैं। जो लोग त्वचा को ६ भागों में विभक्त करते हैं, उन स्तरों का वर्णन पूर्व में ही चुका है।



संस्कृत-शब्दकोश-प्रकाशक-संस्थान-वाराणसी

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति

यदि अत्र न भवति तदा अत्र न भवति



अब इन स्तरों की आकृति के नामों के अनुसार व्याख्या

निम्न प्रकार से है:-

त्वचा के प्राचीन और अर्वाचीन स्तरों का तुलनात्मक रूप त्वक् कोष्ठ

- |                 |                           |
|-----------------|---------------------------|
| १- शार्ङ्गिणी   | (STRATUM CORNEUM          |
| २- स्वच्छ स्तर  | (STRATUM LUCIDUM          |
| ३- कण्मय स्तर   | (STRATUM GRANULOSUM       |
| ४- वर्णमय स्तर  | (STRATUM MALPIGHIAN       |
| ५- अंकुरमय स्तर | (PAPILLARY LAYER          |
| ६- जालीमय स्तर  | (RETICULAR LAYER          |
| ७- आत्मय स्तर   | (SUB-CUTANEOUS AND MUSCLE |

१- शार्ङ्गिणी स्तर या कठिन स्तर :- (STRATUM CORNEUM) :-

समर्पित-समर्पिणी-स्तर-या-कठिन-स्तर-(-

शार्ङ्गिणी या कठिन स्तर इसका आकृति के अनुसार नाम है।

क्योंकि इसकी सैलें सबसे बाहर होने से पीड़न और दबाव के कारण कठिन या सिंग के समान होती है। इस स्तर को (HEAVY LAYER) के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु आयुर्वेदज्ञों ने इस त्वचा स्तर का नाम उसके कर्मानुसार रक्खा है। क्योंकि यह स्तर वर्ण को प्रकाशित करता है।

अवभासियती-प्रकायति वर्णमिति अवभासिनी ।

अर्थात् यह स्तर सब प्रतीत वर्णों को स्व पांचों प्रकार की छाया को प्रकट करते हैं।

२- स्वच्छ स्तर (STRATUM LUCIDUM) :-

इसकी आकृति के अनुसार स्वच्छ के नाम से पुकारा जा सकता

है। क्योंकि इसमें स्वच्छ कीटाणु होते हैं, ये अधिक मोटे नहीं होते। आयुर्वेदज्ञों



NOTICE: THE FOLLOWING INFORMATION IS UNCLASSIFIED

97411 17011693

[illegible]

-(mubidun) mubidun) mubidun -



ने भी इसे लोहिता रंगा उसकी आकृति के कारण से ही दी है। क्योंकि कुछ लालीला की छलक लिये होती है।



### ३- कण्मय स्तर (STRATUM GRANULOSUM)

इसका नाम आकृति के अनुसार कण्मय स्तर है। क्योंकि इसमें कणयुक्त कोषाणु (CELLS) की दो तीन तहें होती हैं। यह तहें चपटी और कठिन स्तर तथा वर्णमय (MALPIGHIAN LAYER) स्तर के कोषाणुओं के बीच की (TRANSITIONAL) होती है। आयुर्वेद के अनुसार इसका नाम भी श्वेता आकृति भेद से ही रखा है। क्योंकि यह श्वेत वर्ण लिये होती है।

### ४- वर्णमय स्तर (STRATUM MALPIGHIAN):-

यह नाम इसका आकृति के अनुसार पुकारा जाता है, क्योंकि यह स्तर नाना प्रकार के कोषाणुओं की तहों से बनता है। ऊपर के स्तर भी इसी स्तर के कोषाणु से बनते हैं। जब सबसे ऊपर के स्तर की कोषाणुओं का नाश हो तो नीचे के स्तर उन कोषाणु के स्थान पर चले जाते हैं। पहली चार स्तर मिलकर ही वाह्य स्तर बनाती हैं। जो लोग काले, पीले और सांवले दिखाई देते हैं उसका मुख्य कारण त्वचा में स्थित रंजक द्रव्य (PIGMENT) ही है। इस रंजक द्रव्य का अधिक भाग वर्णमय (MALPIGHIAN) स्तर में होता है और उत्तरोत्तर वह कम होता जाता है, परन्तु सबसे बाहर के कठिन स्तर में भी रंजक द्रव्य होता है। उसमें रंजक द्रव्य की न्युनाधिकता के कारण ही मनुष्य का रंग और वर्ण स्थिर एवं कृष्ण वर्ण का दिखाई देता है। यह वर्ण द्रव्य चोथे स्तर की कोषाणुओं से ही होता है, और वहां से यह कोषाणु वर्ण द्रव्यों के साथ ऊपर के स्तर में चले जाते हैं।







(M) (28000-67000)



इस प्रकार दूसरे स्थान में पहुँचने से उनमें कुछ परिवर्तन भी होता है। जिससे यह कठिन हो जाते हैं, और उनमें स्थित वर्ण द्रव्य की अधिकता भी कम हो जाती है। चतुर्थ स्तर में, वर्ण द्रव्य के अधिक होने से त्वचा का वर्ण अधिक गहरा होगा, और कम होने से त्वचा का वर्ण फीका रहेगा, परन्तु वर्ण का ज्ञान सबसे बाहर के स्तर द्वारा ही होता है। इसलिये इसे अवभासिनी का नाम दिया है। वाह्य त्वक् के चारों स्तरों में रक्तवाहीनियाँ ( BLOOD VESSELS ) नहीं होती। इनका पोषण लसीका का द्वारा ही होता है। नाड़ियों के अग्रभाग ( NERVOUS FIBRE ) वर्णमय स्तर के कोषाणु के मध्य में फैले हुए रहते हैं। आयुर्वेद मतानुसार इसे ताम्रा इसी लिये कहते हैं, इसके स्तर में वर्ण द्रव्य की उत्पत्ति के कोषाणु अधिक होते हैं, और यह वर्ण द्रव्य लाल, श्याम, पीत एवं अन्य जोक वर्णों के होते हैं। इसलिये इसे आकृति के कारण ताम्रा कहते हैं।

५- अंकुरमय स्तर ( PAPULARY LAYER ):-

430.05  
~~430.05~~  
 439.05

इस आकृति के अनुसार अंकुरमय स्तर भी कह सकते हैं।

क्योंकि इस स्तर में नन्हें २ अंकुर होते हैं। अंकुर सूत्र एवं रक्तवाहीनियाँ स्पर्श पिण्ड नाड़ियों के अग्रभाग से बनते हैं। हथेली एवं तलुओं में यह अंकुर मोटे अधिक संख्या में एक लाइन में होते हैं, एन्ही के कारण समान्तर रूप मुण्डरे बन जाती हैं। उंगली में शंख चक्र आदि चिन्ह सामुद्रीशास्त्र के अनुसार उत्पन्न होते हैं। जो कि मनुष्य की पहचान में सहायक हैं। क्योंकि अंगूठे आदि के चिन्हों के द्वारा ही आजकल भी बहुत सारे अपराधियों का ज्ञान किया जाता है। आयुर्वेद मतानुसार वेदनी इसीलिये कहते हैं:-

वेदिनी-वेदयाति-स्पर्श स्पर्शज्ञानम् इतिवेदिनी केन्द्रकम्

अर्थात् इस त्वचा स्तर में ही स्पर्श ज्ञान होता है।





— 1950 年 1 月 1 日 (1950 年 1 月 1 日) 1950 年 1 月 1 日





कण्टकारि जब चारों त्वचाओं को पार कर जाता है, तब इसी त्वचा द्वारा ज्ञान होता है, और यही त्वचा स्तर शरीर में शीत और उष्णादि का ज्ञान कराने में समर्थ है। इसका नाम आयुर्वेदज्ञों ने कर्म के अनुसार ही रक्खा है।

#### ६- जालीमय स्तर (RETICULAR LAYER):-

इसका नाम जालीमय आकृति के अनुसार कह सकते हैं, क्योंकि इस स्तर में जाली के समान सूत्र फैले रहते हैं। इसमें रोमकूप (HAIR FOLLICLE) और इनके अतिरिक्त कुछ मांस तन्तु (MUSCULAR TISSUE) आदि भी होते हैं। ये मांस तन्तु रोमकूपों से सम्बन्धित होते हैं। इनके अतिरिक्त वृषण (TESTICLES) शिश्न (PENIS) स्तनों (NIPPLE) की त्वचा में भी मांसतन्तु (MUSCULAR TISSUE) पाये जाते हैं, और इन स्तर के नीचे उपत्वचा होती है। उसमें मेद (FAT) रक्तवाहीनियां (BLOOD VESSELS) लसीका वाहिनियां (LYMPH VESSELS) अवस्थित होकर ऊपर के स्तरों की पुष्टि करती हैं, यही अंकुरमय और जालीमय मिल कर अन्तस्तक (DERMIS) बनाते हैं। इसकी मोटाई ऊपर के बाह्य त्वक के चारों स्तरों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। आयुर्वेदज्ञों ने कर्म के अनुसार इसका नाम रोहिणी रक्खा है:-

‘रोहाः सन्ति अस्यां मिति रोहिणी’

अर्थात् इसमें रक्त की अधिकता के कारण तथा त्वचा झिलने पर या जलने से रोपण क्रिया होती है।

#### ७- जालमय उपत्वचा (Sub-cutaneous and muscle)

इस स्तर का नाम जालमय उपत्वचा (Subcutaneous and muscle) आकृति के अनुसार कह सकते हैं। क्योंकि इसकी रचना भी इसके

ऊपर के भाग की रचना जालमय होती है, और यह मांस से सम्बन्धित



गंगा नदी किनारे, जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

—: (93791 9A 1001739) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

(101109 91A 1001739) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

(102211 91A 1002000) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

21

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

( 211139 ) नदी ( 23111231 ) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

( 312201 91A 1002000 ) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

( 1A 1 ) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

( 1A 1 ) नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर ( 233223V )

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर ( 233223V )

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर

जहाँ नदी का जल किनारे पर गिरता है, वहाँ पर



खं चिपटी हुई होती हैं। सुक्षुत ने इसकी अलग गणना की है, जबकि अन्य आचार्यों ने इसे अन्य त्वचाओं के भीतर ही समाविष्ट कर रक्खा है।

0-0-0-0-0-0

### त्वचा के उपविभाग






इसके अतिरिक्त त्वचा के साथ सम्बन्ध रखने वाले नख, रोम, मेदोग्रन्थियां, पित्तुष ग्रन्थियां, स्वेदोग्रन्थियां और स्नायुंरिक्तारं भी हैं। यह प्रायः बाह्य त्वक् के चतुर्थ स्तर के मोटा होने पर ही बनती हैं।

### नख ( NAILS ) :-

कई स्थानों में कठिन स्तर (STRATUM CORNEUM) विशेष रूप से मोटा हो जाता है। और वह अपना रूप बदल कर नख क्षेत्र (BUD AND TWE)<sup>NAIL</sup> में परिवर्तित हो जाता है। इसमें अनेक प्रकार के नाड़ी सूत्र पाये जाते हैं। नख क्षेत्र के पश्चिम भाग में नख परिखा (

) होती है यहीं से नख आगे की ओर बढ़ता है। हाथ पैर की प्रत्येक अंगुली के अन्तिम भाग में एक एक नख रहता है। यह अपने निचले चर्म भाग से सम्बन्धित रहता है और इसके पिछले किनारे इधर उधर त्वचा की गहराई में घुसे रहते हैं। नख का अधिक भाग स्वच्छ होता है और उसमें से ही चर्म के रक्त का रंग लाल प्रतीत होता है और इसका पिछला भाग अस्वच्छ एवं श्वेत होता है जब किसी कारण से शरीर में रक्त की कमी हो जाती है तो नखों का रंग पीलापन लिये या श्वेतता लिये दिसाई देने लगता है। भिन्न भिन्न रोगों में इनका रंग भिन्न भिन्न प्रकार का पाया जाता है। प्रायः हृदय या फुफुस रोगों में रंग नीला हो जाता है। नखों में चर्म की अन्तस्त्वक् ( EPIDERMIS ) की तरह रक्त केशिकारं नहीं होतीं। और उसका पोषण अत्यन्तारिक्त त्वचा के लोहिका द्वारा ही होता है।





नख वास्तव में बाह्य त्वक् ही हैं जिसके कोषाणु अधिक कठोर होते हैं।

### रोम ( HAIR ) :-

यह दो भागों में विभक्त होते हैं मूल और काण्ड। रोम बाह्य त्वचा के परिणाम भूत हैं। इन की रचना वर्णमय सौंक्रि तन्तुओं से होती है जिसके बाहर की ओर कठिन स्तर रोमावर्ण होता है। यह सूत्र त्वचा के भीतर स्थित रोम कूप (HAIR FOLLICLES) में मिले हुए होते हैं। और इनके मूल भाग ( HAIR VULBS ) अन्तस्त्वक् के रोहिणी स्तर (RETICULAR LAYER) या त्वक् शय्या में लगे होते हैं। मूल अंगुरों में शिरा धमनी रसायनी और नाड़ी की सूक्ष्म शाखाएँ होती हैं। रोमों के पार्श्व भाग में रोमाचनी (ARRECTO PILA) नामक पेशियाँ लगी रहती हैं जिनके संकोच से रोमाच होता है क्योंकि शीत भय या अधिवृक्क ग्रन्थियों के द्वारा आर्द्रलीन (ADRENALIN) से पेशियों के सूत्र संकुचित हो जाते हैं। मांस पेशियों के संकोच से जो रोम कूप पहले मुड़े हुए होते हैं, इससे खड़े हो जाते हैं इस अवस्था को रोमाच शब्द से पुकारा जाता है। सूत्रों का संकोच नाड़ी संस्थान के ही अधीन है। रोम और केशों का मूल भाग प्रायः स्थूल होता है और इनमें छोटे छोटे गर्त होते हैं। बाल उखाड़ने के समय यह भाग भी बाहर की ओर आ जाता है। रोम और केशों का वर्ण काला या श्वेत होता उसमें स्थित रंजक द्रव्य ( PIGMENT ) के ऊपर ही निर्भर करता है। जब वह द्रव्य वृद्ध अवस्था में नहीं पाया जाता तो बाल सफेद हो जाते हैं। चिन्ता भय शोक और निर्बलता आदि से भी बालों का रंग सफेद हो जाता है।

रोम और केश त्वचा से ही निकलते हैं। यह प्रायः शरीर के तीन स्थानों हथेलियाँ, पैरों की तलियाँ और इन्द्रिय के प्रर्व भाग की







त्वचा को छोड़ कर शरीर के प्रत्येक स्थान में पाये जाते हैं। इनकी लम्बाई मोटाई एवं वर्ण सब जातियों में एक जैसा नहीं पाया जाता है। एक ही मनुष्य में ये भिन्न भिन्न प्रकार के मोटे और लम्बे पाये जाते हैं। किसी स्थान में पतले और छोटे जैसे पलकों के बाल बहुत छोटे होते हैं। शिर के केश बहुत लम्बे होते हैं। पलकों के किनारों के, विटप प्रदेश, मुँह और दाढ़ी के बाल बहुत मोटे होते हैं।

केश की रचना--- केश के दो विभाग होते हैं।

(१) मध्यस्थ भाग  
~~~~~

(२) बाह्यस्थ भाग  
~~~~~

मध्यस्थ भाग:-  
~~~~~

यह भाग केश के बीच का भाग है।

बाह्यस्थ भाग:-  
~~~~~

यह भाग केश के बीच के भाग चारों ओर रहता है। इसमें लम्बे २ सूत्राकार कोष (CELL) पाये जाते हैं। इन कोषों में एक रंग रहता है जो कि श्वेत बालों में नहीं होता।

रोम कूपों से पेशियां लगी रहती हैं जिन्हें (ARRECTILIS) कहते हैं। इन पेशियों के साथ मेदोग्रन्थियां भी रहती हैं।

मेदो ग्रन्थियां (SEBACIOUS GLANDS)  
~~~~~

यह ग्रन्थियां रोम कूपों (HAIR FOLLICLE) के मूल में रहती हैं। इनका आकार नाशपाती (PEAR SHAPE) के समान होता है, इनसे एक प्रकार का तेल के समान द्रव्य निकलता है जिसे रोम स्नेह कहते हैं। यह SEBUM त्वचा की रक्तवाहीनियों में परिवर्तन आने के कारण बनता है और यह त्वचा पर बाहरी आवरण उसको स्निग्ध बनाए रखता है। यहां पर नाड़ी सम्बन्धी कोई नियन्त्रण







नहीं होता। जहाँ केश अधिक होते हैं वहाँ यह ग्रन्थियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं जैसे कि शिर में रोम के पार्श्व भाग में रोमांचनी नामक मेसिनियम--- पेशियाँ (Erector pili) होती हैं। जिनके संकोच से यह घ्राव (SEBUM) बाहर निकलता है। इन पेशियों का संकोच शीत उत्तेजक पदार्थ तथा (Adrenalin) आदि के कारण होता है इस मेदोः घ्राव में (Fatty acid) सेहाम्ल तथा (Cholesterol) की अधिक मात्रा होती है। इसी (Cholesterol) के दो लाभ हैं पहलें यह १०० प्रतिशत जल की मात्रा को शोषित करता है। दूसरे इनके कारण किसी भी आकार का जीवाणु आक्रमण नहीं कर सकता, और इसी कारण दुर्गन्ध पैदा नहीं हो सकती। इन ग्रन्थियों में से घ्राव जो निकलता है, उसकी विशेष प्रकार की गन्ध होती है। जब किसी व्यक्ति के अतिस्वेद तथा स्नान करने की अवस्थाएं इन्हीं ग्रन्थियों के कारण शरीर में से दुर्गन्ध आने लगती है। मेदघ्राव की वाहिनियों के छिद्रों के अवरुद्ध हो जाने पर वहाँ पर सँ- मेद संचित हो जाता है। इसके संचित होने के कारण यह ग्रन्थियाँ फूल जाती हैं, जिससे त्वचा पर छोटी छोटी पिडिकारें प्रकट होती हैं। मुख पर इनकी अधिकता के कारण पिडिकारें भी अधिक निकलती हैं। जिन्हें मुख दुषिका या युवान पिडिका कहते हैं। ये युवान पिडिकारें (Acne - Vulgaris or acne) शुक्र के मल के कारण उत्पन्न होती हैं। कई आचार्य ऐसा मानते हैं

अब मेदःसार पुरुषों के लक्षण भी प्रसंगवश वर्णित किये जाते हैं।

मेदःसार पुरुषों के लक्षण

वर्षे स्वरनेत्रकेशलोमसदन्तोष्मूत्रपुरीषेषु विशेष-







अतः स्नेहो मेदःसाराणां, सा सारता वितेश्वर्यसुखो-  
पभोगप्रदानान्याजैव सुकुमारोपचारता चाचष्टे ॥

( च० वि० अ० ८।११६ )

अर्थात् ये- मेदःसार पुरुषों के लक्षण--मेदःसार पुरुषों  
के वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख, दांत, होठ, मूत्र तथा पुरीष में  
विशेषतः स्नेह होता है। मेदःसार होना-धन ऐश्वर्य सुख उपभोग दान सरलता  
तथा मृदु उपचार के योग्य होना, इनकी प्रतीति कराता है।

पिण्डुष ग्रन्थियां (CERUMINOUS GLANDS)

ये ग्रन्थियां (SEBACIOUS GLANDS)

तरह हैं किन्तु उनसे कुछ आकार में बड़ी होती हैं। यह ग्रन्थियां कान में  
अधिक पाई जाती हैं। कान में (Ext. EAR) में अधिक होती हैं।  
इनसे स्राव निकलता रहता है। जो कि मुख को हिलाने से कुछ खाने से इन  
ग्रन्थियों से स्राव निकलता रहता है। परन्तु यदि कान का अच्छी प्रकार से  
साफ न किया जाए तो कान के बाह्य तथा अन्तः भाग में यह स्राव जम  
जाता है। इसे ही कर्णसूथ (WAX) कहते हैं।

स्वेद ग्रन्थियां

स्वेद मेदो धातु का मूल है। स्वेद वह स्रोतों का मूल  
भाग इनका दूसरा भाग रोम कुप या त्वचा का उपरि प्रदेश है।

यथोक्तम्:-

स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूलं लोमकुपाश्च ॥

( च० वि० अ० ५।८ )

यह ग्रन्थियां सारे शरीर पर पाई जाती हैं यदि सूक्ष्म



विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

॥ अथ तत्र तत्र विचारणीयं

( १९१३ ०९ ०९ )

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र

( २४ ०९ ०९ )

विशेषतः तत्र तत्र, विचारणीयं किं तत्र



दृष्टि से देखें तो सारी त्वचा पर छोटे छोटे छिद्र से दिखाई पड़ते हैं, परन्तु कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ कि ये ग्रन्थियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं वे स्थान करतल, पादतल, ललाट एवं कक्षा आदि हैं उनपर ये अधिक पाई जाती हैं। इसीलिये इन्हीं स्थानों पर स्वेद अधिक जाता है। जैसे सारे शरीर पर २ से ५ लाख स्वेद ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। इन ग्रन्थियों के चारों ओर केशिकाओं का जाल बिछा रहता है, और यह ग्रन्थियाँ इन केशिकाओं के रक्त से जल तथा अन्य मल पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर की शुद्धि करती हैं, यही स्वेद होता है, इन से त्वचा का भी शोथन होता रहता है। यदि किसी कारण यह छिद्र बन्द हो जायें तो रक्त गत मल बाहर अनेक प्रकार के फोड़े फुन्सियाँ आदि रोग हो जाते हैं। इन छिद्रों को (openings of sudoriferous ducts) स्वेद छूप् कहते हैं। जिस भाग पर स्वेद निकलता है वह भाग एक नली (TUBE) की भांति होता है तथा

) का बना होता है। परन्तु इसमें पेशीगत कोई

स्तर नहीं पाया जाता है। यह दो भागों में विभक्त होते हैं।  
 1. ECCERINE GLANDS  
 2. APOCRINE GLANDS.

यदि स्वेद की ठीक मात्रा न निकले तो मलायतनों के दुषित होने से त्वचागत अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। त्वचा से दुर्गन्ध आने लगती है, यथोक्तम्:-

त्वग्दोषाः संगो तिप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वा मलायतनदोषाः ॥

( सु० सु० अ० २४ श्लोक १७ )

स्वेद का कार्य (FUNCTION OF SWEAT):-

स्वेद का कार्य शरीर को मुलायम तथा स्निग्ध करके रूक्षाता







से बचा रखता है और सुकुमार बनाता है। यथोक्तम्:-

स्वेदः क्लेशदत्तकृत्सुमायकृत् ॥

( सु० सु० अ० १५ श्लोक ८ )

इसके अतिरिक्त स्वेद के अन्य भी कुछ कार्य हैं।

- १- ताप नियन्त्रण
- २- जल सन्तुलन
- ३- लवणों की सन्तुलनता
- ४- ACID AND BASE REGULATION
- ५- मलोत्सर्जन

स्वेद की मात्रा तथा घटकद्रव्य

स्वेद की मात्रा लगभग एक लिटर प्रति दिन होती है। गर्म

देशों में ३ से १० लिटर भी हो जाती है। इसकी अधिकतम मात्रा १-२ लिटर लिटर प्रतिघण्टा हो सकती है।

स्वेद ( ACERINE GLANDS ) का स्राव होता है

और इसमें Sebun तथा Epithelial cells भी पाये जाते हैं

और यह स्वेद रंग रहित द्रव्य रूप में होता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। परन्तु कभी कभी SODIUM PHOSPHATE आदि के कारण

अम्लीय भी हो जाती है। स्वेद में ६६ प्रतिशत जल तथा शेष भाग घना पदार्थ होता है जोकि इस प्रकार है।

सेन्द्रिय पदार्थ:-

- १) यूरिया
- २) लेक्टिक ऐसिड
- ३) शर्करा

निरीन्द्रिय पदार्थ:-







१) क्लोनि, २) सोडियम, ३) पोटेशियम, ४) सल्फेट आदि इस द्राव में सेवक की मात्रा अधिक पाई जाती है। परित्यक्त करने से स्वेद में इस सेवक की मात्रा अधिक पाई जाती है।

स्वेद द्राव का नाडी सम्बन्ध:-

स्वेद ग्रन्थियां सारा वह नाडी सूत्रों से सम्बन्धित होती हैं।

स्वेद केन्द्रों का स्थान सुष्पुम्णा (SPINAL CORD), MEDULLA  
HYPOTHALAMUS

और CEREBRAL CORTEX

आदि में होता है। यद्यपि इनका SYMPATHETIC NERVE से नियन्त्रण होता है। फिर तां ADERENDLINE का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विलोकारपीन PARA SYMPATHETIC NERVE को उत्तेजित करती है जबकि ATROPINE PARASYMPATHETIC सुत्रों को नष्ट करती है और स्वेद का नाश करती है यह निम्न प्रकार है।

१- THERMAL SWEATING:-

वाह्य ताप को अधिक बढ़ने के कारण चाहे वह किसी भी प्रकार की हो जैसे उष्ण जल से स्नान करना या अन्य ELECTRIC सम्बन्धी हो या ज्वर हो तो उससे स्वेद की मात्रा अधिक होती है। इसका सीधा प्रभाव पर पड़े, चाहे अन्य किसी प्रकार से हो जोकि ताप उत्तेजित केन्द्र को और उत्तेजित करके स्वेद को त्वचा से बाहर निकालते हैं।

२ MENTAL SWEATING:-

इस विधि से कम त्वचा में परिधिक रक्त वाहीनियों से रक्त प्रवाह कम हो जाता है। इससे त्वचा पर स्वेद नहीं आता। इस प्रकार शरीर की उष्मा बनी रहती है।



ALL IN 3M (190) JAN 1982

207A ЛАНГОУН

THE GENERAL COURT

4-130930 DITZHTA9mp2 TAP PMP 15 TAP 6 PTP

ADRENALINE AT 100 mg

9093M DITZHAQMP2 ARAA MUMUJIAI 1785 10 1785

2017 31.12.2017 31.12.2017

Thermal Sweating

MENTAL SWEATING



संकोच और प्रसारण प्रक्रियाओं के अनुसार शीतल शरीर की उष्मा को बनाए रखती है और उष्मा शरीर की उष्णता को कम करती है। शीतल जल के प्रयोग करने से शरीर में स्फूर्ति मिलती है।

त्वचा द्वारा उष्मा की वृद्धि हास का नियमन अन्य प्रकार से होता है। नाड़ी संस्थान भी स्वेद ग्रन्थियों पर प्रभाव डालती है। त्वचा और वृक्क मलोत्सर्जन क्रिया सहकार पूर्वक करते हैं। गर्मी की ऋतु में स्वेद अधिक आता है तथा मूत्र कम मात्रा में आता है। शीत ऋतु में इसके विपरीत स्वेद कम तथा मूत्र अधिक मात्रा में आता है। इस प्रकार त्वचा द्वारा शरीर की उष्णता का नियमन होता रहता है।

यदि ये ग्रन्थि अपने ग्रन्थियों किसी ऋतु विकृति के कारण स्वेद कम मात्रा में उत्पन्न करे तो रोम कुपो में अवरोध, त्वचा का शुष्क होना एवं फटना, स्पर्श ज्ञान का अभाव या उचित विधि से ज्ञान न होना स्वेद पादतल, हाथतल और कक्षा से निकलता है। यह भी मस्तिष्क में उच्च केन्द्रों के उत्तेजित होने से होता है।

### ३- MUSCULAR EXERCISE

मेशिमश पेशीगत व्यायाम भी स्वेद का स्राव करवाता है। चाहे यह शारीरिक परिश्रम के कारण हो चाहे यह मानसिक कार्य के कारण। इसका अवरोध शीतल पदार्थों के सेवन (वाह्य या अनुपान रूप) से हो सकता है।

### त्वचा द्वारा शरीरोष्मा का नियमन:-

त्वचा द्वारा शरीर की उष्मा का नियमन होता रहता है।

साधारणतया शरीर की उष्मा ९८ से ९९ तक रहती है। किसी कारण से



MUSCULAR EXERCISE



जबकि धूप, ताप, व्यायाम या श्रम के करने से शरीर की उष्णता की वृद्धि हो जाए तो उस समय त्वचा की केशिकाएं रक्त से परिपूर्ण हो जाती हैं जिसके कारण वाह्य त्वचा लाल हो जाती है। इस रक्ताधिक्य के कारण ग्रन्थियां उत्तेजित होकर स्वेद का स्राव अधिक होता है। वायु के कारण वह वाष्प बन कर ऊड़ जाता है। इस प्रकार शरीर की उष्मा न्यून होती है।

इसके विपरीत शीतकाल में त्वचा की रक्त वाहिनियां जब संकुचित हो जाती हैं और बालों का गिरना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यदि इसी प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जायें तो उनकी अभ्यास और स्वेद आदि से चिकित्सा की जाती है, यथोक्तम् सुश्रुते:-

स्वेदनाये स्तव्यरोमकूपता त्वक्शोषः स्पर्शविगुण्यं

स्वेदनाशश्च। तत्राभ्यासः स्वेदोपयोगश्च॥

( सु० सू० अ० १५ श्लोक १५ )

अष्टांगहृदय कार भी इसमें सहमत हैं, यथोक्तम्:-

स्वेदे रोमच्युतिः स्तव्यरोमता स्फुटनं त्वचः॥

( सु० अ० हृ० सू० अ० ११ श्लोक २२ )

चिकित्सार्थः:-

व्यायामः

व्यायामाभ्यासनस्वेदमथैः स्वेदनायोमद्वयम् ॥

( अ० हृ० सू० अ० ११ श्लोक ३३ )

स्वेद की अति वृद्धि के लक्षण

यह शरीर में किसी कारण से स्वेद बढ़ जाती है तो त्वचा में से दुर्गन्धि हरे आने लगती है तथा साथ ही सारे शरीर में खुजली होने लगती है, यथोक्तम्:-



**Figure 1**



स्वेदः त्वचो दीर्गन्ध्यं कण्डू च ॥

( सु० सु० अ० १५ श्लोक २० )

(इत्यत्रातिवृद्ध विशेषणस्य स्वं आपादयति क्रियायाः

संगतिर्ज्ञेया)

इन स्वेदमय और मेदोमय झावों की न्यूनाधिकता में निम्न-  
लिखित कारणों से जो विशेष २ लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका सार्थक वर्णन  
चरक में निम्न प्रकार से मिलता है।

स्वेदमय स्रोतों में विकार, व्यायाम, अधिक धूप सेवन,  
शीत और उष्ण काल का या द्रव्यों का अनुचित प्रयोग एवं क्रोध शोक आदि  
कारणों से होता है। यथाक्तम्:-

व्यायामादतिसन्तापाच्छीतोष्णाक्रमसेवनात्।

स्वेदवाहीनि दुष्यन्ति क्रोधशोकभयेस्तथा ॥

( च० वि० अ० ५ श्लोक २७ )

उनसे निम्नलिखित विकृति त्वचा में उत्पन्न होती है।

स्वेदावरोध, अतिस्वेद, त्वचा की कठोरता, स्निग्धता,  
अंगों में दाह लोभ हर्ष आदि।

यथाक्तम्:-

प्रदुष्टानां तु सत्त्वेषामिदं विशेषविज्ञानं भवति,

तथ्या-- अनन्नामिलषणमरोचकाविपाको हृदि च

दृष्ट्वा न्वहानि स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥

( च० वि० अ० ५ श्लोक ८ )

स्पर्शकुंरिका (SENSITIVE PAPILLAE)

त्वचा के अन्तः भाग में स्थित अकुंरिकार होती हैं, और इनका



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

( १० अक्षर ५०० ०५ ०५ )

आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव हमारे जीवन में

( अक्षर १०० )

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

( १० अक्षर ५०० ०५ ०५ )

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

( १० अक्षर ५०० ०५ ०५ )

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव

हमारे जीवन में आपकी आज्ञाकारी शक्ति का प्रभाव



कार्य स्पर्श का ज्ञान करना है। यह दो प्रकार की होती है। एक पतली तथा दूसरी मोटी होती है। पतली स्पर्शकुंतिका को तथा मोटी को PACINIAN CORPUSCLES कहते हैं। इन अंगुंतिकाओं के मूल भाग में ये नाड़ियाँ होती हैं। जो कि सजा को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। जब इन अंगुंतिकाओं पर दबाव पड़ता है, तो इनसे सम्बन्धित नाड़ियों उत्तेजित होकर सजा को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं, जिससे कि स्पर्श का ज्ञान होता है। कई विद्वान इन अंगुंतिकाओं को भिन्न भिन्न मानते हैं। जैसे कि शीत, उष्ण स्पर्श तथा पीड़ा आदि के लिये भिन्न भिन्न अंगुंतिकाएँ होती हैं।

त्वचा के कार्य:-  
 ~~~~~

यदि त्वचा की रचना का विशेष रूप से अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि यह शरीर की एक विचित्र रचना है, जो शरीर को आवृत करती हुई शरीरगत अन्य कार्यों को भी करती है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:-

- १- वाह्य घातक कारणों से शरीर की रक्षा करना।
- २- शरीर की अघोवर्ति धातुओं की रक्षा करना।
- ३- ताप का नियमन।
- ४- द्रव्यों का शरीर में शोषण।
- ५- जीवाणुओं से शरीर की रक्षा करना।
- ६- ULTRA VIOLET RAYS से VITAMIN की उत्पत्ति में सहायता करना।

अग्नि, ताप, वायु एवं भूष की फिर जों में धोड़ा ता भी परिवर्तन होने पर शरीर के METABOLISM पर इस त्वचा द्वारा काफी प्रभाव पड़ता है जिसका शरीर पर तथा स्वस्थ पर प्रभाव होना स्वाभाविक है। त्वचा पर







उपरोक्त कारणों का प्रभाव स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल रक्तवाहिनियाँ एवं  
 ENDOCRINE GLANDS द्वारा होता है, और इनका प्रभाव त्वचा स्वेद के ग्राह्य  
 को बढ़ा कर और रोमों में संकोच पैदा करके आवश्यकतानुसार समय समय पर  
 वसा से चिकनाहट उत्पन्न करना भी है। धूप की किरणों में विद्यमान ULTRA  
 VIOLET RAYS त्वचा से शरीर में प्रवेश करके ENDOCRINE क्रिया  
 को पहले बढ़ाती है फिर उसी को परिणामस्वरूप जग्रेस्ट्राल ग्राह्य की  
 उत्पत्ति त्वचा में होती है। जिससे VITAMIN D का शरीर में  
 निर्माण होता है।

शरीर के भीतर एवं बाहर सब प्रकार के वाह्य वातावरण का  
 प्रभाव सबसे पहले त्वचा पर ही होता है और इसी के द्वारा शरीरगत स्थिति  
 का ज्ञान किया जा सकता है, बहुत से रोग ऐसे भी हैं जो शरीर के अन्तर्गत  
 अवयवों पर प्रभाव डालते हैं, और साथ ही त्वचा पर प्रभाव दिखाते हैं।  
 जैसे आमाशय, यकृत, आन्त्र कदाचित् वृक्क, ENDOCRINE GLANDS मनी ,  
 सिरा एवं केशिकाओं में होने वाला रक्त संचार । अनेक प्रकार के वाह्य एवं  
 आभ्यन्तरीय जौमक पदार्थ भी त्वचा गत प्रतिक्रियाएँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों  
 में करते हैं।

#### ताप नियन्त्रण

ताप का नियन्त्रण भी त्वचा द्वारा सम्पादित होता है।  
 साधारण मनुष्यों एवं उष्ण प्रकृति के मनुष्यों का तापक्रम बराबर एवं समान  
 प्राकृत सीमा तक रहता है, जिसके पर वायु मण्डल की शीतता एवं उष्णता  
 का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता।

इसकी पूर्ण जिम्मेवारी त्वचा की ही है। जिसका कारण  
 यह है, कि त्वचा की तापोत्पत्ति (THERMOGENESIS) तथा ताप



सर्वप्रथम यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह दवा  
एडोक्रिन ग्लैंड्स के रोगों के लिए है, जो कि शरीर के अंदर  
होने वाले रसायनों को नियंत्रित करती है।

यदि आप इस दवा को सही ढंग से लेते हैं, तो यह आपके  
रोग को ठीक करने में मदद करेगी। यह दवा आपको  
ज्यादा ऊर्जा देगी और आपको अपने रोजमर्रा के कामों में  
भाग लेने में सक्षम करेगी।

इस दवा को लेते समय आपको ध्यान रखना चाहिए कि  
आप इसे खाने के बाद ले लें। यह दवा आपको  
ज्यादा नींद देगी और आपको अपने रोजमर्रा के कामों में  
भाग लेने में सक्षम करेगी।

आपकी दवा  
आपकी दवा

यदि आप इस दवा को सही ढंग से लेते हैं, तो यह आपके  
रोग को ठीक करने में मदद करेगी। यह दवा आपको  
ज्यादा ऊर्जा देगी और आपको अपने रोजमर्रा के कामों में  
भाग लेने में सक्षम करेगी।



ज्ञाय - THERMOLYSIS की क्रिया पूर्ण रूप से सन्तुलित रहती है। जैसे जब वाह्य वायु मण्डल में उष्णता कम होता है तब शरीर में ताप की उत्पत्ति अधिक तथा ज्ञाय कम होता है। इसी प्रकार जब वायुमण्डल में उष्णता अधिक होती है उस समय शरीर में ताप की उत्पत्ति कम और ज्ञाय अधिक हो जाता है।

सामान्यता मनुष्य का तापक्रम कक्षा में  $37.8^{\circ}\text{C}$  , मुख में  $37.8^{\circ}\text{C}$  , गुदा में प्रकार के व्यक्तियों का तापक्रम  $37.5^{\circ}\text{C}$  से  $38^{\circ}\text{C}$  होता है। शरीर में तापक्रम  $37.5^{\circ}\text{C}$  से  $38^{\circ}\text{C}$  होता है। शरीर में ताप की उत्पत्ति <sup>CARBON</sup> कार्बन और <sup>OXYGEN</sup> उदजन के ओषजनी भवन के नस्स फलस्वरूप तथा भोज्य पदार्थों की भिन्न भिन्न क्रियाओं से होती है। जैसे वसा और STARCH के जलने से। इसी प्रकार के झोटों द्वारा शरीर का ताप ज्ञाय भी होता रहता है। जिसमें  $70.5$  प्रतिशत त्वचा से  $20.7$  प्रतिशत फुफुस से और  $8.8$  प्रतिशत शरीर के जलीयांश स्व मल से होता रहता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा भी ताप ज्ञाय होता रहता है।

### १- चालन ( CONDUCTION ):-

इसके द्वारा शरीर के पृष्ठ भाग से जो ताप निकलता है वह त्वचा के सम्पर्क में आने वाले माध्यम में प्रविष्ट हो जाता है इसमें वायु की आर्द्रता व्यक्ति का आकार एवं वस्त्र का प्रभाव आदि ताप ज्ञाय के लिये विशेष कारण हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति मेदस्वी होता है, तो उसमें ताप ज्ञाय बहुत कम होता है जबकि मेदस्विता रहित पुरुषों में अधिकतया होता है। इसी प्रकार गीले वस्त्र के धारण करने से तापज्ञाय अधिक होता है जबकि शुष्क वस्त्र से नहीं। क्योंकि जल ताप का नासक है और इसी कारण आर्द्र







वास्त्र पहनने से शीतता अधिक होती है।

## २- वाहन (CONNECTION):-

इस क्रिया से गतिशील वायु के द्वारा शरीर के ताप का निर्गमन होता रहता है। जब कम वायु स्थित होती है तो त्वचा के सम्पर्क में आने वाली वायु चालन के द्वारा शरीर ताप का ग्रहण करने के लिये गर्म हो जाती है। वह गर्म वायु हल्की होने के कारण ऊपर को उठती है—बसों और दूसरी शीत वायु उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। क्योंकि वह भारी होती है। तीव्र प्रवाह या पंखे की हवा अधिक शीत और गतिशील होने के कारण त्वचा के सम्पर्क में आकर शरीर के ताप का क्षय अधिक करती है। इसी कारण गर्मी के दिनों साधारण हवा देने वाले यन्त्र, बिजली के पंखे एवं अन्य पंखे आदि की आवश्यकता ताप विनाश के लिये ज़रूरी पड़ती है।

## ३- विकिरण (RADIATION):-

इसके द्वारा शरीर के पृष्ठ भाग और वाह्य शीत माध्यमों के बीच ताप का आदान प्रदान होता रहता है। इस प्रक्रिया से शरीर का लगभग ७३ प्रतिशत ताप नष्ट होता है। जिस पर निम्नलिखित कारणों का विशेष प्रभाव पड़ता है।

### (क) वायु की आर्द्रता:-

शीत और शुष्क वायु में यह प्रक्रिया अधिक होती है, और वायु में आर्द्रता होने पर इस क्रिया के द्वारा ताप क्षय में बाधा पड़ती है।

### (ख) व्यक्ति का आहार:-

कृष और लम्बे व्यक्तियों में उपरोक्त RADIATION क्रिया द्वारा ताप का क्षय अधिक होता है, क्योंकि शरीर का पृष्ठ भाग जितना



:- ( ADDITION ) तालिका :-

TEXTS IN STEP (C)



ही अधिक होगा उतना ही ताप का क्षय अधिक होगा।

(ग) वस्त्र :-

वस्त्र से भी ताप क्षय में बाधा पड़ती है, क्योंकि शरीर का तापमान पूर्व वस्त्र में प्रवेश करता है फिर नसों से वायुमण्डल में पहुँचता है।

४- वाष्पी मवन (EVAPORATION):-

वाष्पी मवन की क्रिया द्वारा लगभग ६०० सी सी स्वेद के पृष्ठ भाग से बाहर जाता है। यदि व्यायाम आदि किया जाये तो इसकी मात्रा और भी अधिक हो जाती है। क्योंकि व्यायाम के समय रक्त वाहिनियों में ला जाता है और वाष्पी मवन क्रिया द्वारा बाहर निकल जाता है। जब बाह्य वायु मण्डल का ताप कम अधिक होने से एवं उपरोक्त विधियों द्वारा उसका क्षय क्षय नहीं होता तब यह वाष्पी मवन विधि विशेष काम में आती है। इस क्रिया द्वारा शरीर से स्वेद उचित मात्रा में निकल कर त्वचा पर जकड़ा होने लगता है और फिर वहाँ से यह इस क्रिया द्वारा उस स्वेद स्वरूप ताप का क्षय हो जाता है।

इस क्रिया द्वारा जो ताप क्षय होता है उसके मुख्य मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:-

(क) व्यक्ति का आकार:-

छोटे एवं स्थूल व्यक्तियों में यह वाष्पीमवन क्रिया अधिक उपयोगी रहती है। क्योंकि छोटे मनुष्यों में पृष्ठ भाग के कम होने से ताप का क्षय कम होता है और स्थूल व्यक्तियों में मेदस्त्रिता के नाते ताप का क्षय कम होता है। क्योंकि मेदस्त्रिता भी ताप क्षय में बाधक है। इसलिये जब अन्य विधियों द्वारा ताप क्षय नहीं हो पाता तो वाष्पीमवन विधि ही ताप क्षय के लिये अधिक



1

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri



उपयोगी रहती है। इसके अतिरिक्त जिन अवस्थाओं में स्वेद का अवरोध होने के कारण यह क्रिया नहीं होती उनमें तापमान अधिक बढ़ जाता है।

### (ख) वायु की आर्द्रता :-

वायुमण्डल के आर्द्र होने पर यह वाष्पीभवन क्रिया भी अवरुद्ध हो जाती है। इसी लिये गर्मी के दिनों में वाह्य तापक्रम के अधिक होने पर व्यक्ति विशेष कष्ट का अनुभव नहीं प्राप्त करता जबकि वसंत ऋतु में तापक्रम होने पर भी वह अधिक कष्ट अनुभव करता है। इससे सिद्ध है, कि वायु की आर्द्रता से वाष्पीभवन क्रिया में अवश्य अवरोध होता है।

इसके अतिरिक्त स्नायु का क्षय फुफ्फुसों द्वारा भी दो प्रकार से होता है।

### १) श्वास मार्गीय जल के वाष्पीभवन द्वारा।

### २) निश्वास की वायु को उष्ण करने द्वारा।

यद्यपि ताप आदि के कारणों का संज्ञाप्त वर्णन ऊपर कर दिया गया है फिर भी त्वचा के रोगों के विशेष जांच के लिये प्रतिदिन मनुष्य में कितना तापक्रम उत्पन्न होता है और कितना तब नष्ट होता है। इसका ज्ञान आवश्यक है इसलिये प्रतिदिन कितना ताप वाह्य वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न होता है उतना नष्ट भी होना चाहिये। नहीं तो शरीर की रक्षा असम्भव है।

साधारण परिश्रम करने वाले व्यक्तियों में लगभग प्रतिदिन ३००० कलोरी ताप उत्पन्न होता है और उतना ही ताप प्रायः निम्नलिखित स्रोतों द्वारा नष्ट भी हो जाता है। जैसे:-

१) चलन, वाहन और विकिरण द्वारा ७० प्रतिशत ताप नष्ट होता है जिसके अनुसार २१०० कलोरी ताप नष्ट हुआ।







२- त्वचा और फुफुस के वाष्पीकरणक मयन द्वारा २७ प्रतिशत ताप नष्ट होता है, जिसके अनुसार ८१० कलौरी ताप नष्ट हुआ।

३- श्वास की वायु को उष्ण करने द्वारा २ प्रतिशत ताप नष्ट होता है। जिसके अनुसार ६० कलौरी ताप नष्ट हुआ।

४- मूत्र और पुरीष द्वारा १ प्रतिशत ताप नष्ट होता है जिसके अनुसार ३० कलौरी ताप नष्ट हुआ।

इस प्रकार प्रतिदिन कुल ताप ३००० कलौरी मोज्य पदार्थ एवं साधारण परिक्रम से उत्पन्न होता है और उतना ही दैनिक शारीरिक क्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाता है।

#### स्वेद का महत्त्व

स्वेद द्वारा शरीर गत सैन्ध्रिय विष बाहर निकलता है जिससे कि शरीर की शुद्धि एवं सफाई होती है और यह स्वेद शरीर के ताप को भी नियन्त्रित रखता है। क्योंकि जब कभी शरीर का तापक्रम बढ़ता है तो स्वेद का श्राव भी अधिक होने लगता है। उस समय त्वचा की रक्तवाहीनियां प्रसारित हो जाती हैं और निष्पन्दन के द्वारा स्वेद निकलने लग जाता है। दोनों क्रियाएं (प्रसारण और निष्पन्दन) स्वतन्त्रता है।

जिसकी सिद्धि निम्नलिखित विशेषताओं से जानी जाती है:-

१- ज्वर में त्वचा को वाहीनियों के प्रसार से त्वचा के रक्त बनी होने पर स्वेद का श्राव नहीं होता।

२- चिन्ता, शोक, मय, उद्वेग एवं चोम आदि मानसिक अवस्थाओं में रक्त वह ओतों का संकोच होने पर भी अत्याधिक स्वेद निकलता।

३- कटे हुए अंग में गृध्रसी नाड़ी की उत्तेजना से स्वेद का श्राव होता है।



अथ चत्वारिंशत्तमः अध्यायः ।

७

इति चत्वारिंशत्तमः अध्यायः समाप्तः ।

अथ पञ्चमः अध्यायः ।

८

इति पञ्चमः अध्यायः समाप्तः ।

अथ षष्ठः अध्यायः ।

९

इति षष्ठः अध्यायः समाप्तः ।

अथ सप्तमः अध्यायः ।

इति सप्तमः अध्यायः समाप्तः ।

इति अष्टमः अध्यायः समाप्तः ।

अथ नवमः अध्यायः ।

इति नवमः अध्यायः समाप्तः ।

अथ दशमः अध्यायः ।

इति दशमः अध्यायः समाप्तः ।

अथ एकादशः अध्यायः ।

इति एकादशः अध्यायः समाप्तः ।

इति द्वादशः अध्यायः समाप्तः ।

अथ त्रयोदशः अध्यायः ।

इति त्रयोदशः अध्यायः समाप्तः ।

अथ चतुर्दशः अध्यायः ।

इति चतुर्दशः अध्यायः समाप्तः ।

अथ पञ्चदशः अध्यायः ।

इति पञ्चदशः अध्यायः समाप्तः ।

इति षोडशः अध्यायः समाप्तः ।



४- गर्भसी नाड़ी की उत्तेजना से स्वेद वह प्रोतो का संकोच एवं स्वेद का अधिक आना।

५- एरोपीन ( ) के द्वारा स्वेद ग्रन्थियों के निष्क्रिय होने से स्वेद का न निकलना परन्तु जिस समय रोगी को ज्वर होता है उस समय स्वेद घ्राव नहीं होता। क्योंकि ज्वर में दोषों के कारण एवं जीवाणु विष के कारण त्वचा की रक्त वाहीनियां संकुचित हो जाती हैं और रक्त भीतरी अवयवों में प्रवेश कर जाता है। धातुओं में द्रव के आकृष्ट होने के कारण रक्त के आयतन में भी घास हो जाता है। इसी कारण ताप ज्ञय नहीं होने पाता बल्कि ताप की वृद्धि ही होती चली जाती है। इस प्रकार ताप का सन्तुलन (HEAT REGULATION) ठीक न होने के कारण शरीर का स्वाभाविक तापक्रम बढ़ जाता है। पेशियों की क्रिया ताप क्रम को अधिक उत्पन्न करती है एवं उसकी वृद्धि में सहायक भी है, क्योंकि ज्वर के प्रारम्भ में त्वचा से रक्त हट जाने के कारण रोगी को शीत का अनुभव होता है और इसी कारण उसका शरीर कांपने लगता है, फिर पेशियों की क्रिया अधिक होने लगती है जिससे कि ताप अधिक हो जाता है। कुछ देर बाद रक्त पुनः त्वचा में आने लगता है और रोगी उष्णता का अनुभव करने लगता है। उष्ण रक्त के द्वारा त्वचा की संज्ञावह नाड़ियां उत्तेजित हो जाती हैं। उस समय के ज्वर की अवस्था में स्वेद का ~~संकोच~~ घ्राव नहीं हो पाता। इसी कारण ज्वर स्वेद घ्राव कराने के लिए आयुर्वेद एवं पाश्चात्य विज्ञान (ALOPATHY) में स्वेदल द्रव्यों का प्रयोग कराया जाता है, जिससे कि उचित मात्रा में स्वेद आकर शरीर का ताप नियन्त्रित हो जाता है।

इसलिए स्वेद आदि भी त्वचागत रोगों के लिये महत्वपूर्ण हैं।







त्वचा रोग परीक्षा

EXAMINATION OF THE SKIN DISEASES

त्वचा रोगी की परीक्षा के निमित्त नाना प्रकार के साधनों की यथोचित आवश्यकता पड़ती है। एक सफल चिकित्सक के लिए उन सब साधनों को अपनाना उपयुक्त है। यद्यपि प्रत्यक्ष अनुमान, आप्तोपदेश आदि से चिकित्सक को चर्म रोगों की परीक्षा के निमित्त सफलता प्राप्त है फिर भी उसे निम्न लिखित उपकरणों ( APPARATUS ) पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

- १- अनुवीक्षण यन्त्र ( सर्व उपकरण सहित )
- २- चिमटी      FORCEPS
- ३- शलाका      PROBE
- ४- कैचिरे      SCISSORS
- ५- ताल आदि      GOOD LENS ETC.

त्वचा रोग परीक्षा विधि:-

त्वचा पर होने वाले किसी प्रकार के उभार ERECTION की परीक्षा करते समय सर्व प्रथम दिन निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिये।

- १- रुग्ण स्थान के आकार को नापना।
- २- उस स्थान को हाथ स्पष्ट करके देना, कि यह ठोस है या मृदु या यह जांचना कि दवाब का उस स्थान पर क्या प्रभाव पड़ता है।
- ३- रुग्ण स्थान के उभार कहाँ तक धातुओं के मीटर गहरे फेल चुके हैं, इसका ज्ञान कराना। इसके अतिरिक्त त्वचा पर कई प्रकार के फफोले स्पष्ट दिखाई देते हैं। जोकि भिन्न भिन्न कारणों से होते हैं। वह कारण निम्न हैं:-



सर्वप्रथम यह ध्यान रखना चाहिये कि  
यह एक नमूना है

EXAMINATION OF THE SKIN DISEASES

पृष्ठ 88

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

( यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है )

2935807 डिप्टी - 5

38089 प्रो. - 6

29352102 डॉ. - 7

29352102 डॉ. - 8

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है

यह नमूना कि रोग का कारण है कि रोग का लक्षण है



### १ दाग ( MUCULA ):-

यह त्वचा पर एक रक्त वर्ण का चिन्ह होता है जब वह शरीर पर अधिक बढ़ जाता है तो वह छोटे छोटे दानों का रूप धारण कर लेता है, तो इस अवस्था को लाल खसरा ( ROSCELA ) कहते हैं। परन्तु जब त्वचा पर रक्त वर्ण का चकता पड़ जाता है तो उसको ERYTHERIMA कहते हैं। शरीर पर एक निशान होता है उसमें से द्राव निकलता रहता है और शोथ होता है तो उस अवस्था को WHEEL कहते हैं जब यही WHEEL और अधिक वृद्धि को प्राप्त होकर चकत्तों के रूप में सम्पूर्ण शरीर पर फैल जाता है तो उसे शीत पित्त नाम दिया जाता है।

### २- मुहासा ( PAPULE ):-

यह गोल नोकीले आकार का त्वचा पर उभार होता है। यह स्पर्श करने पर ठोस प्रतीत होता है।

### ३- छाला ( VESICLE ):-

इस अवस्था में त्वचा के नीचे द्राव एकत्रित होता रहता है, इस द्राव में ताप की उत्पत्ति होने लगती है तो उसको PUSTULE कहा जाता है।

त्वचा पर स्पष्ट फफोलों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विस्फोट हैं जो अन्दर गोण रूप में रहते हैं जोकि इस प्रकार हैं:-

### १- परत ( स्तर SCALES ):-

जब त्वक् शोथ स्वस्थावस्था को प्राप्त हो जाती है, और उसके पश्चात् त्वचा की सूख जाती है तो उस क्लिस्के को कहा जाता है।

### २- छुरण्ड ( CRUST ):-

जब त्वचा का स्तर सूख जाता है और



-(1) 5/23/1971 TET

aridwar, Digitized by eGangotri



रक्त गत सीरम रूप से बनी हुई प्यु शुष्क हो जाती है तो उस भाग को बुरण्ड नाम दिया जाता है।

### दरार ( FISSURE ):-

जिस प्रकार पृथ्वी पर भूचाल के आने से पृथ्वी फट जाती है और दरार युक्त हो जाती है। इसी प्रकार त्वचा पर कई ऐसे चिन्ह पड़ जाते हैं जिनके कारण त्वचा पर दरार पड़ जाते हैं। कभी कभी अन्तस्त्वक् तक पहुँच जाता है।

### त्वचा के वर्ण में परिवर्तन:-

#### १- कृष्ण विसर्प ( MELANODERMA ):-

इस अवस्था में त्वचा में एक प्रकार का PIGMENT पाया जाता है जिसे MELANIN या रंजक द्रव्य कहते हैं। जब यह पदार्थ त्वचा में अन्दर संचित हो जाता है, यह सारे शरीर में एक तार होता है। इसी द्रव्य की अधिकता तथा अल्पता से ही त्वचा का रंग गोरा तथा काला होता है।

#### २- चम्बल ( CHLOASMA ):-

त्वचा पर पीले तथा भूरे रंग के चकचे से मिलते हैं। उस चकचे को चम्बल रोग कहते हैं। इससे भी त्वचा के वर्णों में परिवर्तन आता है।

#### ३- श्वेत कुष्ठ ( LEUCODERMA ):-

जब त्वचा पर किसी विशेष अंग पर या सारे शरीर पर उसके स्वाभाविक रंग में परिवर्तन आकर वहाँ पर श्वेत रंग के धब्बे से पड़ जाते हैं। इन श्वेत धब्बों को श्वेत कुष्ठ कहते हैं।



DATE: 11-10-19 10:10 AM 11-10-19 10:10 AM

-(AMX30003) 34 34



#### ४- क्वाईया ( EPHELIS ):-

सूर्य की किरणों द्वारा चेहरे पर काला दाग की प्रवृत्ति हो जाती है तो उस दाग को क्वाई या EPHELIS कहते हैं।

#### ५- तिल ( NAEVUS ):-

यह जन्म जात त्वचा पर काला निशान होता है।

#### ६- केशिक शिरा प्रसारण ( TELANGIECTASIS ):-

इस अवस्था में त्वचा को परीयिक केशिकाएं प्रसारित हो जाती हैं।

#### बैंगनी रंग का उद्भेद ( PETECHIAS )

सन्निपातिक ज्वर में त्वचागत रक्त ग्राव के कारण त्वचा पर बैंगनी रंग का निशान पड़ जाता है जो दबाव देने पर भी नहीं मिटता।

#### नीलगु निशान:-

इस अवस्था में जब त्वचा पर बाहरी आघात द्वारा स्थानिक रक्त ग्राव होने के कारण काले या नीले रंग के निशान दिखाई देते हैं।

#### पिण्ड ( CAMCDO ):-

यह त्वचा पर वसा ग्रन्थियों की नलिका के अवरुद्ध हो जाने से भेद की प्रणाली-हीन नाड़ियों में एक पिण्डाकार रूप धारण करता है।

#### २- त्वचा गत विस्फोट की दुद्धता:-

जो त्वचा के नीचे घाव होते हैं वह सदा कठोर प्रतीत होते हैं यदि उनको दबाया जाये तो वह दबाव देने से लुप्त नहीं होते।

#### ३- विस्फोट का प्रसार तथा उसकी स्थिति:-

विस्फोट की स्थिति तथा प्रसार की परीक्षा करने से



-( 200-10 ) 551 -1

( 2A 1H 35 T 39 ) 1995 DE 13 1995

4(72 000 MAC) 2001

-: जीमिनी किंग टाउण्डर टाउण्डर टाउण्डर टाउण्डर -:



त्वचा गत रोगों का ज्ञान होता है।

कुछ रोग सर्वदैहिक होते हैं तथा कुछ रोग स्थानिक होते हैं।

जैसे शीत पित्त (URTICARIA) रोग सार्वदैहिक होता है और यह अपनी शीघ्रता से प्रसार करके रोग की उग्रता का कारण बनता है परन्तु दूसरी प्रकार के रोग जो शरीर पर प्रभाव डाल कर प्रसारित रहते हुए भी स्थानिक अधिक होते हैं जैसे विचर्चिका (PSORIASIS) जानु तथा कूर्पर सन्धि पर अधिक होते हैं मुहांसे स्कन्ध प्रदेश तथा मुख पर अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त विस्फोटों के विस्फोट एवं आकार की दृष्टि से उनको नाम दिया जाता है। जैसे जो विस्फोट विन्दी के आकार के होते हैं उन्हें चित्ती कहते हैं। जब वह प्रथक् प्रथक् रहते हैं तो DISCRETE कहा जाता है। जब वह सम्मिलित रहते हैं तो उसे CONFLUENT कहते हैं। किसी का आकार गोल तथा किसी का आकार उष्ण के समान होता है।

इसके अतिरिक्त त्वचा पर विस्फोट की मात्रा तथा आकार SYMMETRICAL देख कर रक्त विकार का ज्ञान होता है। जैसे फिरंग और उपदंश के दाने अंगों पर समानाकार होते हैं। त्वचा गत रोगों को जानने के लिए रोगी के कथित शब्दों को भी अच्छी प्रकार सोचना चाहिये जैसे कण्डू दाह तथा विस्फोट के काल या कई अवधि का पता लगाना चाहिये।

### चर्म रोग के सामान्य कारण

चर्म रोग अनेक कारणों से हो सकते हैं कई कारण तो ऐसे हैं जो शरीर में गुप्त रूप से त्वचा रोग को पैदा करते हैं। कई कारण



18. 1919-20

19. 1920-21

20. 1921-22

21. 1922-23

22. 1923-24

23. 1924-25

24. 1925-26

25. 1926-27

26. 1927-28

27. 1928-29

28. 1929-30

29. 1930-31

30. 1931-32

31.

32. 1932-33

33. 1933-34

34. 1934-35

35. 1935-36

36. 1936-37

37. 1937-38

38. 1938-39

39. 1939-40



जागन्तुक होते हैं, और त्वचा पर वाह्य आक्रमण करके रोग पैदा करते हैं।

इस प्रकार कई कारणों से रोग फैलते हैं, वह कारण इस प्रकार हैं:-

१- गौण कारण PREDISPOSING CAUSES

२- उत्प्रेरक कारण EXCITING CAUSES

३- औपसर्गिक कारण ( जीवाणु जन्य INFECTIOUS CAUSES

१- गौण कारण:- PREDISPOSING CAUSES

कई कारण त्वचागत रोगों को आयु विशेष में अवस्थानुसार पैदा करते हैं। जैसे LUPUS VULGARIS प्रायः शुरु की ही अवस्था अर्थात् छोटी आयु में होता है जबकि LUPUS ERYTHEMATOSUS २५ वर्ष की आयु के बाद होता है। इस प्रकार यह रोग अवस्थानुसार पैदा होते हैं।

(ख) पैतृक कारण:- HEREDITARY CAUSES

कई ऐसे त्वचागत रोग होते हैं जो वंशागत होते हैं और वह बड़े से लेकर अन्त में छोटे तक सारे वंश में होते हैं जैसे खुजली, विचर्चिका ( PSORIASIS ) मुहांसा ( ACNE ) इन्द्रतुप्त ALOPECIA आदि।

(ग) व्यवसाय :- OCCUPATION

कुछ चर्म रोग ऐसे विशेष ऐसे होते हैं जो अपनी कार्य सम्बन्धि होते हैं। जैसे PETROL आदि का कार्य करने वालों की विसर्प आदि त्वचागत अन्य रोग हो जाते हैं।

२- उत्प्रेरक कारण:- EXCITING CAUSES

चर्म रोग वाह्य जागन्तुक कारणों से होते हैं, कई ऐसे

उत्तेजक पदार्थ आहार विहार में आते हैं।



後序

AD3903A ( 343A ) TAT ( 212A19029 )

1975



### ३- आपसर्गिक कारण (जीवाणु जन्य) INFECTIOUS CAUSES

जब पूयजनक कीटाणु जोकि भिन्न २ जाति के भिन्न रोगों को पैदा करने में सहायक हैं। यह कीटाणु STAPHYLOCOCCUS, STREPTOCOCCUS, B. COLI, DIPHTHERIA, T.B.

इत्यादि हैं। जोकि संक्रमण करके रक्त संचार द्वारा त्वचा में पहुंच जाते हैं और त्वचा रोग की उत्पत्ति में सहायक होते हैं।

इसके अतिरिक्त शरीर गत आन्तरीय अवयवों INTERNAL ORGANS के रोगों के कारण त्वचागत रोग पैदा होते हैं। जैसे आमाशयिक विकार से शीत पित्त URTICARIA की उत्पत्ति होती है। प्रान्तीय नाड़ी विकार से हर्पेज (HERPES <sup>ZOSTER</sup>) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अन्य रोगों की उत्पत्ति के विषय में भी कारण जान लेने चाहिये, क्योंकि प्रायः त्वचा रोग अन्य बहुत सी विमारियों के कारण होते हैं और कई त्वचा रोग स्वतन्त्र होकर अन्य रोगों के कारण बनते हैं। अतः रोग की प्रधान एवं अप्रधानता आदि का और रोगी के बलावल का विशेष ध्यान रखकर वेद्य या डाक्टर को चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये।

-0-0-0-0-0-0-  
-0-0-0-  
-0-



23.04.20 11.14 AM (पुनः प्रकाशित) - प्रकाशित

प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर  
प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

प्रकाशक के नाम पर प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक के नाम पर

0-0-0-0-0-0-  
0-0-0-  
0-



## सुन्दरता का प्रतीक त्वचा

यह विसर्प भी त्वचा रोगों में से एक ऐसा रोग है, जिससे कि मनुष्य की सुन्दरता भी नष्ट होती है और मानसिक वेदना का उसे अधिक सामना करना पड़ता है।

मनुष्य प्राचीन काल से ही सुन्दरता का पुजारी रहा है और आजकल तो सुन्दरता को विशेष महत्त्व कृत्रिम विधियों द्वारा भी बहुत दिया जाता है, चाहे वे सुन्दरता की कृत्रिम विधियाँ आगे चल रोगों की विशेष कारण भी बनें। चाहे मनुष्य क्रूर क्रोधी रुद्ध एवं चिड़चिड़े स्वभाव का भी क्यों न हो, परन्तु जब वह परिपुष्ट, सुदृढ़, सुश्लिष्टगात्र के स्वस्थ एवं सुन्दर मनुष्य, स्त्री, बालक, मुसल पशु एवं उनके वज्रों को प्रत्यक्ष या चित्र में देखता है तब वह अपने स्वभाव को कुछ क्षण के लिये छोड़ कर आनन्द से विभोर हो जाता है। इस प्रकार उस मनुष्य का ध्यान उन प्राणियों की ओर आकृष्ट होने में उन प्राणियों का सौन्दर्य ही एकमात्र कारण है और यह सौन्दर्य उन प्राणियों के स्वास्थ्य पर अवलम्बित होता है।

विशेष रूप से त्वचा का स्वास्थ्य ही आकर्षक सौन्दर्य उत्पन्न करता है। मानव समाज में निर्मल, निर्दोष, स्निग्ध एवं गौरवर्ण की स्वस्थ त्वचा प्रधानतया सौन्दर्य का कारण मानी जाती है। इसलिये त्वचा को स्वस्थ रखने वाले उपायों को अलम्बन करके उसके अनुसार ही ठीक वातावरण में रहना और त्वचा रोगों की शान्ति का विशेष कारण है।

प्रायः त्वचा के स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य नाशक कारण निम्न-  
लिखित हैं:-

- १- रुद्धता एवं भुर्रियाँ आदि।
- २- फाई ( व्यंग नीलिका आदि )



•



- ३- मुंहासे ( याँवन पिड़िका मुखदुषिका )
- ४- विसर्प, कुष्ठ, कण्डू, दद्रु, ( दाह ) आदि त्वचा रोग,  
वात रक्त एवं चेचक आदि।
- ५- संक्रामक त्वचा रोग जो कि विकृत जीवाणुओं से उत्पन्न  
होते हैं। ये न केवल मनुष्यों पर बल्कि मनुष्येतर पशु पक्षियों  
को भी रोग से ग्रसित करके उनकी त्वचा को हानि पहुंचाते हैं।
- ६- क्षत अग्निदग्ध आदि।

### (१) रुक्षता एवं फुरिया :-

हमारे शरीर में वायु के विकृत होने से त्वचा में रुक्षता की  
वृत्ति होकर संकोच होने लगता है और शरीर में फुरियां दिखायी देने लगती  
हैं। आयु के अनुसार वृद्धावस्था में वायु का प्रकोप अधिक देखा जाता है

यथावतम्:-

वयो हो रात्रि मुक्तानां ते त्तमध्यादिनाः क्रमात्

( अष्टांग हृदय। <sup>सु०</sup> ४ श्लोक ८ )

इसलिये अन्य आयु की अवस्थाओं की अपेक्षा इस अवस्था में  
फुरियां आदि अधिक देखी जाती हैं, जो व्यक्ति मिथ्याहार विहार आदि  
का सेवन करते हैं उन में ये फुरियां अवस्था से पूर्व ही दिखायी देने लग जाती  
हैं। शरीर रक्षा का ध्यान रखने से ये वृद्धावस्था भी रुक जाती है। इन  
फुरियों को रोकना भी त्वचा की विशेष रक्षा करना है।

इसकी चिकित्सा के लिये अम्यंग ही उत्तम है। अतः इस विषय  
पर प्रकाश डालना यहां युक्ति संगत है।

शरीर की रुक्षता एवं अस्मम- असामयिक फुरियों को नष्ट  
करने के लिये सर्वोत्तम चिकित्सा अम्यंग ( मांतिश ) है। इस क्रिया को स्वास्थ्य







अम्यंगमाचरेदनित्यं च जरा क्रवातहा।

दृष्टि प्रसाद पुष्टयायुः स्वप्न सुत्वक्त्वदादियकृत् ॥

शिरः ऋणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।

दिनचर्या के अनुसार तैलाभ्यंग आदि कारणों से ही प्राचीन आर्य पुरुष भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, देव एवं दैत्यदानव आदि बलवान् परिक्रमी एवं निरोगी तथा रोग निरोधक शक्ति युक्त होते थे। वृद्धावस्था उनपर अपना प्रभाव दिखाने से असमर्थ रहती थी।

यथावत्तः-

तैलप्रयोगादजरा निर्विकारा जितश्रमाः ।

आसन्नतिवला युद्धे दैत्याधिपतयः पुरा।

(अष्टांगसंग्रहसूत्रस्थान अध्याय ६ )

फाई नाशक एवं रुद्धता नाशक तैलों में से निम्नलिखित तेल अधिक हितकारी है। सरसों का तेल, महालाक्षादि तेल, बलादि तेल, प्रसारणी तेल, ब्राह्मी आवंला तेल, चन्दनादि तेल आदि। इन तैलों की मालिश शरीर पर करने से त्वचा पर फुरियां पड़ती नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो फुरियां पड़ जाती हैं और उसके निवारणार्थ निम्नलिखित उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

स्नेहाभ्यंगयथा कुम्भश्चर्म स्नेह विमर्दनात्।

भवत्युपांगं दक्षश्च वृद्धं क्लेश सहो यथा।

तथा शरीरमभ्यंगाद् वृद्धं सुत्वक् प्रजायते।

प्रशान्ते मारुतावायुं क्लेश व्यायाम संसहम्।

(चरक सांहिता सूत्रस्थान अ० ५ )

जैसे तेल आदि की मालिश से घड़ा, चमड़ा स्नेह के मर्दन कर



॥ अथ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( १ )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( २ )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



से एवं पहिये की घूरी तेल आदि के उपांग ( स्नेह का देना ) से दृढ़ तथा क्लेश (रगड़ आदि) को सहने योग्य बन जाती है उसी प्रकार अभ्यंग से मनुष्य का शरीर सुदृढ़ तथा कोमल त्वचा वाला हो जाता है। वातज रोग नहीं होते और शरीर क्लेश एवं श्रम आदि के सहन योग्य बन जाता है। सुश्रुत में भी इस की पुष्टि है, कि:-

स्नेहाभ्यां माद्वक्करः कफ वात निरोधकः ।

धातूनां पुष्टि जननो मृजा वर्णबलप्रदः ॥

सैकः श्रमघ्नो नितद्रुद्ध मग्नसन्धिप्रसाधकः ।

ज्ञाताग्निदग्धासिहताविधृष्टानां रुजापहः ।

जलसिक्तरस्य वर्धन्ते यथामूले द्युरास्तरोः ।

शिरा मुखे रोमदूपै र्धर्मेनीभिश्च तर्पयत् ।

शरीरं क्लमायते युक्तः स्नेहो वगाहने ॥ ( सुश्रुत )

अभ्यंग त्वचा रोगों से शरीर की रक्षा निमित्त परमोत्तम साधन है। अभ्यंग का तात्पर्य है, कि सम्पूर्ण शरीर को स्नेह युक्त करना और इसके प्रत्येक भाग में स्नेह को पहुंचाना। परन्तु शरीर पर ही केवल मात्र तेल मर्दन करने को अभ्यंग सज्ञा आजकल दी जाती है। यहां पर यह अभ्यंग शब्द सञ्ज्ञाप्यार्थोक्त है वास्तव में अभ्यंग से सर्व शरीर स्नेहन अर्थ ही उचित है जैसे-कि-मु- यह सर्व त्वचा के लिये हितकारी है।

स्पर्शो चाधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम् ।

त्वच्यश्च परमो भ्यांस्तस्मात् शीलयन्नरः

( च० सु० अ० ५ श्लोक ८४ )

जिस प्रकार तेल मर्दन को अभ्यंग नाम से पुकारते हैं। वैसे ही घृत आदि स्नेहने स्नेहों का प्रयोग भी अभ्यंग में समाविष्ट होता है।



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ ( गुरुं तव शक्तिं ) गीता ३ शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ ॥  
 तव शक्ति ३ तव शक्ति ३३ त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ ( शीता ३३ )  
 त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३  
 त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३ त्रिपु ति शीता ३३  
 ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

( गुरु ) ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

( ३३ गुरुभ्यो नमः ॥ )

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥



जिन लोगों के लिये तेल उचित नहीं रहता उनके लिये घृत  
अभ्यंग किया जाता है। यद्यपि प्रायः अभ्यंग सर्वत्र तेल द्वारा ही प्रचलित है।  
अभ्यंग में तेल की ही प्रधानता इसलिये दी जाती है, कि वायु के विकारों  
को नष्ट करने के लिये तेल सर्वांगणी है, यथोक्तता :-

वातविकाराणां तैलमग्र्यम्

तेल वायु को नष्ट करने के लिये परमोत्तम है। इसलिये अभ्यंग  
के विषय में लिखा है कि :-

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स ज्वराश्रम वातह ।

अभ्यंग के द्वारा वृद्धावस्था और थकावट नहीं होती है। इसमें  
वायु का नाश ही प्रधान कारण है। शरीर का धारण पोषण जिन घटक-  
में होता है उनमें प्रधान और सर्वोपरि वायु ही है। वायु अर्थात् शरीर की  
सब प्रकार की चेष्टाओं का नियन्त्रण कर्ता होने के कारण शरीर के लिये  
सदैव उपकारक एवं पोषक होता है। आयुर्वेद के सिद्धान्त अनुसार शरीर को  
सदैव स्वास्थ्य रखने के लिये जैसे दिनचर्या रात्रिचर्या ऋतुचर्या आदि के नियमों  
का पालन आवश्यक है। उसी प्रकार सर्व शरीर की रक्षा निमित्त अभ्यंग  
भी परमावश्यक है। विशेष कर इस अभ्यंग से त्वचा में होने वाले रोग तो  
त्वचा को आक्रान्त इसलिये नहीं कर सकते, क्योंकि त्वचा में रोग जामत  
शक्ति की अधिक वृद्धि तेल मर्दन से उत्पन्न हो जाती है। अभ्यंग दिनचर्या  
और रात्रिचर्या का ही अंग है। मनुष्य सदैव स्वस्थ एवं निरोगी रहे। उस  
की अन्तरात्मा और मन प्रसन्न रहे। शरीर की दृढ़ता, कान्ति, प्रभा  
और सौष्टवका विकास हो, दिन भर परिश्रम करने पर भी क्लान्ति या  
थकान का अनुभव हो इन सब उद्देश्यों के लिये अभ्यंग महत्वपूर्ण और  
आवश्यक है। सुश्रुताचार्य के अनुसार भी अभ्यंग शरीर और तद्गत श्रोतों में  
मृदुता निर्माण करता है। रक्त और वात का नाश करता है। रस रक्तादि







समस्त धातुओं की पुष्टि करता है। शरीर में स्वच्छ प्रभा का विकास करके वर्ण को गौर बनाता है और बल प्रदान करता है। यह अम्यंग सर्वशरीर का तर्पण शिरा मुखों, रोम कूपों और घमनियों द्वारा करता हुआ उत्तरोत्तर रस रक्त आदि धातुओं की पुष्टि करता है, इसके अतिरिक्त त्वचा रोगों को नष्ट करने के लिये तो अम्यंग परमश्रेयस्कर है। जैसे इस की जांच के निमित्त पुरातन आचार्यों ने विशेष अनुसन्धान आदि किये थे, इसीलिये इल्लहण ने कहा है कि:-

रोमान्तेष्वनु देहस्य स्थित्वा मात्रा शतत्रयम्।

ततः प्रविशति स्नेह श्वतुर्भिर्गच्छतित्वचम्।

रक्तं गच्छति मात्राणां शतैः पञ्चभिरेव तु।

षड्भि मासं प्रपद्यते मेदः सप्तभिरेव च।

शतैरष्टाभिरस्थीनि मज्जानं नवभिर्व्रजेत्।

तत्रस्थान् शमयेद्द्रोगान् वातपित्तकफात्मकान् ( )

इसका भाव है, कि शरीर के रोमकूपों में अम्यंग करने के

तीन सौ संख्या की गिनती करने में जितना समय लगता है। उतने समय वहां स्नेह रहता है उसके बाद चार सौ संख्या की गणना में रक्त में मज्जा जाता है, छः सौ संख्या की अवधि में मांस में, सात सौ संख्या काल में मेद में, आठ सौ संख्या की कालावधि में अस्थियों में और नौ सौ संख्या की कालावधि में मज्जा में पहुंचता है। इस प्रकार क्रमशः अम्यंग सेल की प्रविष्टावधि प्रतिपादित की गयी है। जिस जिस धातुगत जो जो रोग होता है उसका उतने उतने समय में अम्यंग वात पित्त कफ अन्य व्याधियों का प्रशमन करता है।

अम्यंग शब्द में शिरो मर्दन, शिरोवस्ति, कर्णपूरण स्नेह

सेक, स्नेहावगाहन आदि विधियों की समाविष्ट हैं और इन विधियों का



—: ११ ११

18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 841. 842. 843. 844. 845. 846. 847. 848. 849. 850. 851. 852. 8

12. प्रमाणित : डॉ. विष्णु शंकर मिश्र



ववलम्बन करने से नाना प्रकार के स्थानीय रोगों की शान्ति होती है।

जैसे चरक में लिखा है कि:-

नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते।

न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च॥

बलं शिरःकपालानां विशेषेणाभिवर्धते।

दृढमुलाश्च दीर्घाश्च कृष्णाः केशा भवन्ति च॥

इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चासुलभा।

निद्रालाभः सुखं च स्यान्मूर्ध्नि तैलनिषेवणात्॥

( च० सु० अ० ५ श्लोक ७८-८० )

प्रतिदिन शिर में तैल मर्दन से मनुष्य के शिर में शूल नहीं होता है। इससे न तो गंजापन होता है और न ही बाल श्वेत होते हैं। बालों के मूल स्थान तैल मर्दन से स्निग्धता पूर्ण होने के कारण उस स्थान से बाल भी नहीं गिरते शिर के कपाल भागों में बल की विशेष वृद्धि होती है, केशों के मूल बहुत दृढ़ मूल लम्बे एवं काले हो जाते हैं। शिर पर नित्य तैल मर्दन से सब इन्द्रियें प्रसन्न रहती हैं। त्वचा कोमल एवं निर्मल हो जाती है और सुख पूर्वक नींद भी आ जाती है।

शिरों रोगों के निमित्त शिरोंचीत का प्रयोग शीघ्र एवं लाभकारी है जैसे:-

शिरोंवस्तिश्चर्मणः स्याद्विमुक्तो द्वादशांगुलः।

शिरः श्रमश्च प्रमाणस्तं बध्वा मस्तके माषपिष्टके

सन्धिरोगं विधायाशु स्नेहः कोष्णेः प्रयुरयेत्।

तावद् कार्यस्तु यावत् स्यान्नासा कर्ण मुख श्रुतिः

वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम्॥







स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छिरसा युतम्

रसा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैष निश्चयः

विना भोजनमेवात्र शिरोवस्ति प्रशस्यते

प्रयोज्यस्तु शिरोवस्ति पंच सप्त दिनानि कम वा

विभुष्य शिरसो वस्ति गृहनीयाच्च समन्ततः।

ऊर्ध्वं कायं ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत्।

अनेन दुर्ज्या रोगा वातजा यान्ति संश्रयम्

शिरः कम्पादयस्तेन सर्वं कालेषु युज्यते।

अभ्यंग की कल्पना में शिरा श्रवण पादेषु तं विशेषेण

शीलयेत् (अष्टांग हृदय)

इस विशेष शब्द से ज्ञात होता है कि पूर्ण शरीर के तेल मर्दन

करने से शरीर के त्वचा आदि वाह्य उपांगों का स्नेहन होगा और उन में दृढ़ता एवं कष्ट सहन शक्ति की कामता की वृद्धि होगी किन्तु शरीर के अभ्यन्तरीय भागों के लिये जैसा पोषण क्रम आवश्यक है वैसा नहीं होगा, जोकि आवश्यक एवं अनिवार्य है। शिरः कान, एवं पाद ये तीनों शरीर के अन्तर द्वार हैं इनके द्वारा ही शरीर के अभ्यन्तरीय भागों को स्निग्धता पहुँचाने का कार्य सम्पन्न होता है।

शिर शरीर का मूल स्थान है मूल के सेवन करने से जिस प्रकार पूर्ण वृक्ष का जीवन स्थिर होता है वह परिपुष्ट एवं फलवान् बनता है। उसकी समस्त शाखाएं एवं प्रशाखाएं समृद्ध बनती हैं उसी प्रकार मनुष्य शरीर के मूल शिर के तेल मर्दन रूपी पोषण से सर्व शरीर का ही पोषण होता है। क्योंकि यही अंग बुद्धि मन एवं आत्मा का निवास स्थान भी माना गया है।



सुख मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

: सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

विष्णु केदारविष्णु केदार : सुख

तुम्हारे सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

: सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

विष्णु केदारविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

: सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

( सुखी मन्त्रीविष्णु केदार ) सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख

सुखी मन्त्रीविष्णु केदार : सुख



गया है।

ऊर्ध्वं मूलमधः शासमश्-वक्ष्यं प्राहुस्वययम् ( गीता )

गीता के अनुसार ऊपर मूल और नीचे शास वाला मानव शरीर अश्वत्थ वृक्ष है। इसलिये शिरो स्नेहन न केवल शिरोगत रोगों को ही दूर करने में समर्थ है, बल्कि त्वचागत एवं रक्त मांस आदि गत दोषों को भी दूर करने में विशेष हितकारी है।

इसके लिये स्नेहन से प्रत्येक अंग प्रत्यां आदि स्निग्धता पूर्ण होकर रोग दाम हो जाते हैं और शरीर में धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। इसी प्रकार नित्य कान में तेल डालना कर्ण रोगों को नष्ट करता है और साथ ही तदनुषंगी वातविकार, मन्या स्तम्भ, हनुग्रह ऊर्च्चा सुनना एवं बधिरता ( बहरापन ) आदि रोगों को भी नष्ट करता है।

न कर्ण रोगा वातोत्था न मन्याहनुसग्रहः

नो श्वैः श्रुति र्वाधिर्यं स्यान्नित्यं कषैतर्पणात्

( चरक सु० अ० ५ श्लोक ८२ )

और नित्य पैरों में तेल आदि के मर्दन से भी त्वचा रोगों की शान्ति के साथ अन्य धातु गत बहुत से रोग ठीक होते हैं। जैसे पैरों का खुरदरापन, शुष्कता, रूखापन थकावट और पाद सुप्ति फुन्फुनाहट या शुन्यता जिसमें स्पर्श का ज्ञान ही नहीं होता। तैलाम्यंग से पैरों में मृदुता या सुकुमारता, बल की प्राप्ति तथा स्थिरता उत्पन्न होती है। नेत्र ज्योति खच्छ हो जाती है और वात विकारों की शान्ति हो जाती है। इस पादाम्यंग से गुप्त्रसी (SCIATICA PAIN) आदि वात रोग नहीं होते। पैर फटते नहीं और पाद की शिराओं स्नायुओं का संकोच नहीं होता।







खरत्वं स्तव्यता रोदयन्मः सुप्तिश्च पादयोः।

सद्यस्वोपशाम्यन्ति पादाम्यंगं निषेवणात्

जायते सोऽकुमार्यञ्च कलं स्थैर्यं च पादयोः

दृष्टिः प्रसादं लभते मारुतश्चोपशाम्यति।

न च स्युः गृध्रसी वालाः पादयोः स्फुटं न च

न शिरा--स्नायु-संकोचः पादाम्यगेन पादयोः

( चरक सू० अ० ५ )

स्नेह सेक-- तेल घृत आदि स्नेहों से शरीर को सिंचित

करना स्नेह सेक कहलाता है। स्नेहाबगहन कहते हैं जिसमें कि रोगी आदि

को द्रोणी या टव आदि में स्नेह भर कर बैठाया जाता है ये स्वस्थ व्यव-

स्थार भी विशेष प्रकार के शोथ रक्त, मांस एवं त्वचा रोगों को शान्त कर

शरीर की सुन्दरता की रक्षा के निमित्त विशेष है।

विसर्प रोग का त्वचा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण

ही त्वचा की रक्षा निमित्त स्नान और अभ्यंग पर विशेष प्रकाश डाला गया

है। क्योंकि त्वचा रोगों को पूर्व में ही रोकने के लिये यह स्नान और अभ्यंग

अनमोल उपाय हैं।

~~~~~  
त्वचा रक्षा के मुख्य साधन स्नान एवं अभ्यंग  
 ~~~~~

त्वचा को स्वस्थ रखना त्वचागत रोगों के लिये परमावश्यक

है, यदि त्वचा सदल एवं सक्रिय तथा जीवाणु के आक्रमण से रहित होगी

तो शरीर में त्वचा के अतिरिक्त अन्य रोग भी कम होने लगते हैं। क्योंकि

त्वचा द्वारा वाह्य जीवाणुओं का निवारण होता है। यदि त्वचा का

कोई भी स्तर विकृत या क्षिप्त युक्त होगा तो जीवाणुओं का प्रभाव शीघ्रता



1987-1988-1989-1990-1991-1992-1993-1994-1995-1996-1997-1998-1999-2000-2001-2002-2003-2004-2005-2006-2007-2008-2009-2010-2011-2012-2013-2014-2015-2016-2017-2018-2019-2020-2021-2022-2023-2024-2025-2026-2027-2028-2029-2030-2031-2032-2033-2034-2035-2036-2037-2038-2039-2040-2041-2042-2043-2044-2045-2046-2047-2048-2049-2050-2051-2052-2053-2054-2055-2056-2057-2058-2059-2060-2061-2062-2063-2064-2065-2066-2067-2068-2069-2070-2071-2072-2073-2074-2075-2076-2077-2078-2079-2080-2081-2082-2083-2084-2085-2086-2087-2088-2089-2090-2091-2092-2093-2094-2095-2096-2097-2098-2099-2100-2101-2102-2103-2104-2105-2106-2107-2108-2109-2110-2111-2112-2113-2114-2115-2116-2117-2118-2119-2120-2121-2122-2123-2124-2125-2126-2127-2128-2129-2130-2131-2132-2133-2134-2135-2136-2137-2138-2139-2140-2141-2142-2143-2144-2145-2146-2147-2148-2149-2150-2151-2152-2153-2154-2155-2156-2157-2158-2159-2160-2161-2162-2163-2164-2165-2166-2167-2168-2169-2170-2171-2172-2173-2174-2175-2176-2177-2178-2179-2180-2181-2182-2183-2184-2185-2186-2187-2188-2189-2190-2191-2192-2193-2194-2195-2196-2197-2198-2199-2200-2201-2202-2203-2204-2205-2206-2207-2208-2209-2210-2211-2212-2213-2214-2215-2216-2217-2218-2219-2220-2221-2222-2223-2224-2225-2226-2227-2228-2229-2230-2231-2232-2233-2234-2235-2236-2237-2238-2239-2240-2241-2242-2243-2244-2245-2246-2247-2248-2249-2250-2251-2252-2253-2254-2255-2256-2257-2258-2259-2260-2261-2262-2263-2264-2265-2266-2267-2268-2269-2270-2271-2272-2273-2274-2275-2276-2277-2278-2279-2280-2281-2282-2283-2284-2285-2286-2287-2288-2289-2290-2291-2292-2293-2294-2295-2296-2297-2298-2299-2300-2301-2302-2303-2304-2305-2306-2307-2308-2309-2310-2311-2312-2313-2314-2315-2316-2317-2318-2319-2320-2321-2322-2323-2324-2325-2326-2327-2328-2329-2330-2331-2332-2333-2334-2335-2336-2337-2338-2339-2340-2341-2342-2343-2344-2345-2346-2347-2348-2349-2350-2351-2352-2353-2354-2355-2356-2357-2358-2359-2360-2361-2362-2363-2364-2365-2366-2367-2368-2369-2370-2371-2372-2373-2374-2375-2376-2377-2378-2379-2380-2381-2382-2383-2384-2385-2386-2387-2388-2389-2390-2391-2392-2393-2394-2395-2396-2397-2398-2399-2400-2401-2402-2403-2404-2405-2406-2407-2408-2409-2410-2411-2412-2413-2414-2415-2416-2417-2418-2419-2420-2421-2422-2423-2424-2425-2426-2427-2428-2429-2430-2431-2432-2433-2434-2435-2436-2437-2438-2439-2440-2441-2442-2443-2444-2445-2446-2447-2448-2449-2450-2451-2452-2453-2454-2455-2456-2457-2458-2459-2460-2461-2462-2463-2464-2465-2466-2467-2468-2469-2470-2471-2472-2473-2474-2475-2476-2477-2478-2479-2480-2481-2482-2483-2484-2485-2486-2487-2488-2489-2490-2491-2492-2493-2494-2495-2496-2497-2498-2499-2500-2501-2502-2503-2504-2505-2506-2507-2508-2509-2510-2511-2512-2513-2514-2515-2516-2517-2518-2519-2520-2521-2522-2523-2524-2525-2526-2527-2528-2529-2530-2531-2532-2533-2534-2535-2536-2537-2538-2539-2540-2541-2542-2543-2544-2545-2546-2547-2548-2549-2550-2551-2552-2553-2554-2555-2556-2557-2558-2559-2560-2561-2562-2563-2564-2565-2566-2567-2568-2569-2570-2571-2572-2573-2574-2575-2576-2577-2578-2579-2580-2581-2582-2583-2584-2585-2586-2587-2588-2589-2590-2591-2592-2593-2594-2595-2596-2597-2598-2599-2600-2601-2602-2603-2604-2605-2606-2607-2608-2609-2610-2611-2612-2613-2614-2615-2616-2617-2618-2619-2620-2621-2622-2623-2624-2625-2626-2627-2628-2629-2630-2631-2632-2633-2634-2635-2636-2637-2638-2639-2640-2641-2642-2643-2644-2645-2646-2647-2648-2649-2650-2651-2652-2653-2654-2655-2656-2657-2658-2659-2660-2661-2662-2663-2664-2665-2666-2667-2668-2669-2670-2671-2672-2673-2674-2675-2676-2677-2678-2679-2680-2681-2682-2683-2684-2685-2686-2687-2688-2689-2690-2691-2692-2693-2694-2695-2696-2697-2698-2699-2700-2701-2702-2703-2704-2705-2706-2707-2708-2709-2710-2711-2712-2713-2714-2715-2716-2717-2718-2719-2720-2721-2722-2723-2724-2725-2726-2727-2728-2729-2730-2731-2732-2733-2734-2735-2736-2737-2738-2739-2740-2741-2742-2743-2744-2745-2746-2747-2748-2749-2750-2751-2752-2753-2754-2755-2756-2757-2758-2759-2760-2761-2762-2763-2764-2765-2766-2767-2768-2769-2770-2771-2772-2773-2774-2775-2776-2777-2778-2779-2780-2781-2782-2783-2784-2785-2786-2787-2788-2789-2790-2791-2792-2793-2794-2795-2796-2797-2798-2799-2800-2801-2802-2803-2804-2805











इस के अतिरिक्त चरकाचार्य एवं सुश्रुताचार्य और विदुर नीतिकार महानुभाव भी इस के गुणों की उपयोगिता मनुष्य के लिये परम आवश्यक बतलाते हैं और स्नान परम उपयोगी क्रियाओं में से एक आवश्यक क्रिया है जो कि प्राणी मात्र को अवश्य प्रतिदिन करनी चाहिये। यथा:-

पवित्रं कृत्वा वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।

शरीरबलसंवर्धनं स्नानमोजस्करं परम्॥

( च० सू० अ० ५ श्लोक ६१ )

सुश्रुत:-

निद्रादाह श्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।

हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्॥

तन्द्रापापोंपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम्।

रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥

विदुर नीति:-

गुणाः दश स्नानस्य साधो, रूपन्व तेजश्च बलन्व वीर्यः।

स्पर्शश्चगन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवारश्च नार्यः॥

इस प्रकार स्नान के महत्व का प्रतिपादन शास्त्रकारों ने किया है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को उपरोक्त फलों की इच्छा रखते हुए प्रातः स्नान आदि अवश्य करना चाहिये।

शीतल जल स्नान के गुण:- ठण्डे जल में स्नान करने से गर्मी भीतर जाकर अग्नि को प्रदीप्त करती है, प्राचन शक्ति बलवान है, देह पुष्ट होती है।

उष्ण जल से स्नान करने के गुण:-

ऊष्ण गर्म (निवाये) जल से नित्य स्नान करने से बात और कफ दूर दूर होते हैं। जीर्ण, ज्वर, जुकाम, मासिक धर्म विकृति कफ कास, श्वास और वात- रोग में हितकर है।



प्राचीन हिंदी उर्दू भाषाओं में भाषाएं कही जाती हैं

कहा जाता है कि वे लोग समझते हैं कि वे हिंदी हैं कि हिंदी भाषा  
है उसी भाषा को वे हिंदी भाषा कहते हैं

- भाषा हिंदी में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

( ७३ वीं पृष्ठ पर ७३ वीं पृष्ठ पर )

-: ७३ :

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

-: ७४ :

I: कि वह हिंदी भाषा है कि वह हिंदी भाषा है

II: कि वह हिंदी भाषा है कि वह हिंदी भाषा है

III: कि वह हिंदी भाषा है कि वह हिंदी भाषा है

कि वह हिंदी भाषा है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

-: ७५ :

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है

हिंदी भाषा में ही है कि वह हिंदी भाषा है



सिरका गर्म जल से स्नान करने से बाल, केश और नेत्री को हानि पहुंचती है। इस लिये शीतल जल से शिरःस्नान तथा चक्षुषी के लिये लाभकारी माना गया है, किन्तु कफ प्रकृति वालों को या वात कफ प्रकृति में निवाये जल से मस्तिष्क धोने में विशेष आपत्ति नहीं है। स्नान करने में अत्यन्त शीत न पड़ती हो, ऐसे देश और काल में सूर्यादय से पूर्व का समय विशेष लाभप्रद होता है। शीघ्र टूटी जाकर दतीन और कुल्ला करने के पश्चात् स्नान करने का विधान है। उष्ण ऋतु में स्वास्थ्य मनुष्य को सांयकाल को दूसरे समय भी स्नान करना लाभदायक है। यदि स्वास्थ्य मनुष्य शीतकाल में शीतल जल से जलाशय में स्नान करते रहें तो पूर्णायु तक निरोगी रहते हैं। किन्तु निर्बल शरीर के मनुष्यों को हेमन्त और शिशिर ऋतु में या नित्यप्रति निवाये जल से स्नान करना चाहिये। स्नान के बाद तुरन्त मोटे स्क्वब बपड़े से सारे शरीर को बल पूर्वक अच्छी तरह पीछे देने से त्वचा दोष और रक्त विकार दूर होते हैं, रक्ताभिसरण क्रिया बलवान् बनती है और कान्ति बढ़ती है।

अत्यन्त शीतल जल से शीत ऋतु में स्नान करने से वात और कफ प्रकुपित होते हैं। एवं अति गर्म जल से उष्ण ऋतु में स्नान करते रहने से रक्तपित्त की वृद्धि होती है।

शीतल जल से स्नान COLD BATH ) ३२ से ६०

किञ्चित् शीतल जल से स्नान COOL BATH ) ६० से ७५

शीतरहित सामान्य जल से स्नान TEMPERATURE BATH ) ७५ से ८५

किञ्चित् उष्ण ( निवाया ) RAPID BATH ) ८५ से ९२

उष्ण जल से स्नान WARM BATH ) ९२ से १०४

अधिक उष्ण जल से स्नान HOT BATH ) १०४ से ११२







अधिक शीतल जल से स्नान दाह या ग्रीष्म ऋतु में लाभकारी होता है। किंचित् शीतल निरोगी मनुष्यों को सर्वदा उपयोगी है। निवाया जल निर्वला के लिये, उष्ण जल शीतकाल में निर्वला के लिये तथा अधिक उष्ण और अत्याधिक उष्ण जल रोगाक्रान्त अवस्था में आवश्यकता अनुसार उपयोग में लिया जाता है। क्वचित् उष्ण या अधिक उष्ण जल में स्फंज तैलिया या दूसरा कपड़ा भिगीकर रोगी की देह को पौका लिया जाता है। इस क्रिया के टेपिड स्पन्जिङ्ग (RAPID SPONGING) भी कहते हैं। क्वचित् सिकोको ४ गुने जल में मिला स्पन्ज आदि डुबोनिचोड़ कर ज्वर को गर्मी घटाने के लिये कई बार पौका जाता है।

हन के अतिरिक्त रोगी को अधिक उष्णता पहुँचानी हो, तब राई को पीस कर जल को गर्म कर राई को जल में मिला कर उस में पेरों को डुबो रखते हैं। जिस से पेर की त्वचा थोड़ी लाल हो जाती है। पेरों में उष्णता आती है। तथा सिर शल ज्वर और जुकाम दूर हो जाते हैं।

#### वक्तव्य

एक गैलन ( लगभग ३।११ सेर ) जल में २-४ तोले राई मिलाई जाती है।

राई मिलाने से उष्णता अधिक पहुँचती है। इस रीति से इस जल से स्नान भी कराया जाता है। उसे मस्टर्ड बाथ ( MUSTARD BATH ) कहते हैं।

#### सन्ताप शमन विधि

कोई समय ताप बहुत बढ़ जाता है, तब कम करने के लिये शीतल जल में कपड़ा भिगी निचोड़ कर रोगी के शरीर पर लपेट देव। फिर ऊपर २ सूँसे कम्बल लपेट लें। जब १०१ डिग्रीगर्मी रह जाय तब गीला कपड़ा हटा लें। इस



18 THE LIFE OF THE 19th CENTURY

[illegible]

18. The first of these is the fact that the system is not in equilibrium with the environment. The system is in a state of non-equilibrium, and this is the cause of the observed phenomena.

१०३३

भारतीय रेल विभाग ४-६ वि. भा. ( डाई १११३ एफएफ ) मालिक का

13 TITP

ਭਾਗ ੨੨ ਦੇ ਫੀਲਡ ਨੰਬਰ ੧੩ ਵਿੱਚ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।

1. 3. 1957

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्राप्तः अतः ए. वि. क. म. व. है तादात्त रूपेण प्राप्तः अतः

६ प्रायः इत्येव । ॥३॥ उक्तं च इतिहं च सिद्धिं च नान्यथा विना तदाकं च ।



इस क्रिया को वेट पैक और ब्लैकेट बाथ ( Wet Pack and blanket Bath ) भी कहते हैं।

इसके अतिरिक्त रोगियों को वाष्प स्नान कराया जाता है, वह पहले स्वेदन विधि में लिखा गया है।

### वक्तव्य

स्नान जहाँ तक हो सके स्कान्त में करें। स्नान कर लेने पर सन अंगों को मोटे स्वच्छ वस्त्र से ढँकना चाहिये। शरीर गीला रह जाने से सिर में मारीपन कुमिश्रों की उत्पत्ति शूल, जुजली फुन्सियाँ इत्यादि रोग हो जाते हैं।

ज्वर, अतिसार, अफारा, पनिस, अजीर्ण, अर्दितवायु, तीक्ष्ण नेत्र रोग तीव्र कर्ण रोग, और तीव्र वातशूल के रोगियों को स्नान नहीं करना चाहिये और मल शुद्धि होने के पहले भी स्नान न करें।

अति तेज वायु में स्नान करना हानिकर है। परिश्रम के बाद तुरन्त स्नान करने से न्युमोनिया आदि व्याधियों की उत्पत्ति होती है।

अतः थोड़ी विश्रान्ति ले कर प्रस्वेद सूख जाने पर स्नान करना चाहिए।

भोजन के पश्चात् ३ घण्टे तक स्नान नहीं करना चाहिए।

### उष्ण जल में बैठना

अनेक रोगों में रोगियों को निर्वात स्थान में ६८ से ११२ डिग्री तक गर्म जल से मरे हुए टब या कढ़ाही में बैठाया जाता है। इस को हाटबाथ ( ~~Hot~~ Hot Bath ) कहते हैं। इस क्रिया से जकड़ा हुआ शरीर सुल जाता है, हृदय की बड़ी हुई गति का बल कम हो कर रक्त दबाव और नाड़ी का वेग कम हो जाता है। इस से कभी २ अशक्ति बढ़ कर रोगी को मुँछाँ आ जाती आ जाती है। अतः रोगी को देखते रहें।



अथ विष्णुसहस्रनाम ( १००० ) नाम स्तोत्रम् ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।



सूचना:- टब में बैठाने पर रोगी का सिर कुछ पीठ की ओर रहना

चाहिये अर्थात् आगे की ओर नीचा न रहने दे।

सामान्यत:- बालक के लिये जल ६६ से ६८ डिग्री गर्म और मनुष्य के लिए

१०० से १०५ तक लिया जाता है। ऋतु दिन और रात्रि के समय भेद से थोड़ा अन्तर हो सकता है। टब में सामान्य रीति से आध घण्टे तक बैठाना चाहिए

प्रकृति के अनुसार समय में न्यूनाधिक भी करें। स्नान के बाद रोगी को पौछ कर सुला दें।

उष्ण जल के टब से लाभ

०००

०००

बड़े मनुष्य के अंग जकड़ना, रक्त विकार, पेचिस, मूत्र में

रैती या कंकड़ी जाना मूत्राघात, अन्त्रावरण विकार, मेदोवृद्धि, वात

प्रकोप, मलावरोध, आमवात आदि रोग में बालकों के धनुर्वात, श्वास -

नलिका में कफ मरजान अंत्र में वेदना, दांत आने की पीड़ा, मेदोवृद्धि आदि

विकारों में गर्म जल में बैठाया जा सकता है।

कई बार जल में नमक सोडा एसिड आदि मिलाते हैं। प्लिहा

और यकृत के जीर्ण विकार में निम्न औषध मिलाते हैं।

नमक का तिजाब ( म्यूरियाटिक एसिड ( Muratic Acid ) )

१।। आस और कलमी शीरे का तेजाब ( नाइट्रिक एसिड ( Nitric Acid ) )

एक आस इन दोनों को सम्हालपूर्वक धीरे २ मिलावे फिर २।। आस जल धीरे

धीरे मिलावे। उफान शान्त हो जाय तब स्नान करने के ६८- $\frac{1}{2}$  ग्री गर्म

जल में मिला लें। बाद में रोगी को १५ मिन्ट तक बैठावे। जल के शीतल

होने पर उस में और गर्म जल मिला लेना चाहिये।



तबल गीत कि ठाँपि कहु उगी तब गीत गीत गीत गीत -: तबल

12 तबल गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत -: तबल

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत ५०९ ३ ००९

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत १२ १२ तबल गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत तबल गीत गीत

13 तबल गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत  
गीत गीत गीत गीत गीत गीत  
गीत गीत गीत गीत गीत गीत  
०००

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

- गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

14 तबल गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

15 गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

(गीत गीत गीत) गीत गीत गीत गीत गीत गीत

(गीत गीत गीत) गीत गीत गीत गीत गीत गीत 119

गीत गीत गीत 119 गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत १-१३ गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत

16 गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत गीत



दाह, पित्तप्रकोप, मन्दाग्नि, स्मृतिलोप, निद्रानाश, रूत -  
विकार, निष्कार, मूत्रदाह आदि विकारों में रोगी को शीतल जल से  
भरी हुए टब में आधे से एक घण्टे तक बैठाया जाता है।

इस तरह जल में राब सोमल मिश्रित अर्क फिटकरी, सोहागा,  
क्रियोसोट, ग्लिसरीन, कशिश, सौदा नमक ( या समुद्रजल ) गन्धक या इतर  
रोग शापक औषधाधियों के साथ मिला कर क ढाही या टब में रोगी को  
बैठाया जाता है। क्वचित् रोगी को ताजे हवा या दूध में बैठाते हैं, एवं  
आवश्यकता पर सूर्य के ताप, उष्ण रूता , वाष्प, बिजली आदि द्वारा सम-  
स्त देह या किसी अवयव की शुद्धि करायी जाती है।

शरीर की रक्षा निम्न रोगी एवं उस के परिवारक को इस  
बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि रोगी को टब में से निकलने पर  
खुली वायु न लगने दें और शीघ्र ही रोगी को पोछ कर कपड़े पहना देने चाहिये,  
नहीं तो वातवायु के आघात से शरीर में नाना प्रकार के वातिक रोगों की  
उत्पत्ति हो सकती है।

#### अभ्यंग (Massage)

०-०-०-०-०-०-०-०-०

०-०-०-०-०

०००

आघात एवं रोग की चिकित्सा निमित्त कौमल धातुओं का नियम  
वद्ध तथा वैज्ञानिक परिवर्तन ही अभ्यंग है।

#### \* शारीरिक प्रभाव \*

०-०-०-०-०-०-०-०-०

(Physiological Effects )

अभ्यंग का शरीर की त्वचा, मांसपेशी, रक्त, रक्त संचार एवं  
वात संस्थान पर प्रभाव स्पष्ट रूपेण होता है।



- भाषा, साहित्य, पत्रिकाएं, समाजिक, परिवर्तन, आदि

उपरोक्त कार्य (संलग्न तालिका) के लिए आवश्यक, विशेष, प्रतिष्ठित, उचित/सही

18. 1915 1916 1917 1918 1919 1920 1921 1922 1923 1924 1925 1926 1927 1928 1929 1930 1931 1932 1933 1934 1935 1936 1937 1938 1939 1940 1941 1942 1943 1944 1945 1946 1947 1948 1949 1950 1951 1952 1953 1954 1955 1956 1957 1958 1959 1960 1961 1962 1963 1964 1965 1966 1967 1968 1969 1970 1971 1972 1973 1974 1975 1976 1977 1978 1979 1980 1981 1982 1983 1984 1985 1986 1987 1988 1989 1990 1991 1992 1993 1994 1995 1996 1997 1998 1999 2000 2001 2002 2003 2004 2005 2006 2007 2008 2009 2010 2011 2012 2013 2014 2015 2016 2017 2018 2019 2020 2021 2022 2023 2024 2025 2026 2027 2028 2029 2030 2031 2032 2033 2034 2035 2036 2037 2038 2039 2040 2041 2042 2043 2044 2045 2046 2047 2048 2049 2050 2051 2052 2053 2054 2055 2056 2057 2058 2059 2060 2061 2062 2063 2064 2065 2066 2067 2068 2069 2070 2071 2072 2073 2074 2075 2076 2077 2078 2079 2080 2081 2082 2083 2084 2085 2086 2087 2088 2089 2090 2091 2092 2093 2094 2095 2096 2097 2098 2099 2100 2101 2102 2103 2104 2105 2106 2107 2108 2109 2110 2111 2112 2113 2114 2115 2116 2117 2118 2119 2120 2121 2122 2123 2124 2125 2126 2127 2128 2129 2130 2131 2132 2133 2134 2135 2136 2137 2138 2139 2140 2141 2142 2143 2144 2145 2146 2147 2148 2149 2150 2151 2152 2153 2154 2155 2156 2157 2158 2159 2160 2161 2162 2163 2164 2165 2166 2167 2168 2169 2170 2171 2172 2173 2174 2175 2176 2177 2178 2179 2180 2181 2182 2183 2184 2185 2186 2187 2188 2189 2190 2191 2192 2193 2194 2195 2196 2197 2198 2199 2200 2201 2202 2203 2204 2205 2206 2207 2208 2209 2210 2211 2212 2213 2214 2215 2216 2217 2218 2219 2220 2221 2222 2223 2224 2225 2226 2227 2228 2229 2230 2231 2232 2233 2234 2235 2236 2237 2238 2239 2240 2241 2242 2243 2244 2245 2246 2247 2248 2249 2250 2251 2252 2253 2254 2255 2256 2257 2258 2259 2260 2261 2262 2263 2264 2265 2266 2267 2268 2269 2270 2271 2272 2273 2274 2275 2276 2277 2278 2279 2280 2281 2282 2283 2284 2285 2286 2287 2288 2289 2290 2291 2292 2293 2294 2295 2296 2297 2298 2299 2300 2301 2302 2303 2304 2305 2306 2307 2308 2309 2310 2311 2312 2313 2314 2315 2316 2317 2318 2319 2320 2321 2322 2323 2324 2325 2326 2327 2328 2329 2330 2331 2332 2333 2334 2335 2336 2337 2338 2339 2340 2341 2342 2343 2344 2345 2346 2347 2348 2349 2350 2351 2352 2353 2354 2355 2356 2357 2358 2359 2360 2361 2362 2363 2364 2365 2366 2367 2368 2369 2370 2371 2372 2373 2374 2375 2376 2377 2378 2379 2380 2381 2382 2383 2384 2385 2386 2387 2388 2389 2390 2391 2392 2393 2394 2395 2396 2397 2398 2399 2400 2401 2402 2403 2404 2405 2406 2407 2408 2409 2410 2411 2412 2413 2414 2415 2416 2417 2418 2419 2420 2421 2422 2423 2424 2425 2426 2427 2428 2429 2430 2431 2432 2433 2434 2435 2436 2437 2438 2439 2440 2441 2442 2443 2444 2445 2446 2447 2448 2449 2450 2451 2452 2453 2454 2455 2456 2457 2458 2459 2460 2461 2462 2463 2464 2465 2466 2467 2468 2469 2470 2471 2472 2473 2474 2475 2476 2477 2478 2479 2480 2481 2482 2483 2484 2485 2486 2487 2488 2489 2490 2491 2492 2493 2494 2495 2496 2497 2498 2499 2500 2501 2502 2503 2504 2505 2506 2507 2508 2509 2510 2511 2512 2513 2514 2515 2516 2517 2518 2519 2520 2521 2522 2523 2524 2525 2526 2527 2528 2529 2530 2531 2532 2533 2534 2535 2536 2537 2538 2539 2540 2541 2542 2543 2544 2545 2546 2547 2548 2549 2550 2551 2552 2553 2554 2555 2556 2557 2558 2559 2560 2561 2562 2563 2564 2565 2566 2567 2568 2569 2570 2571 2572 2573 2574 2575 2576 2577 2578 2579 2580 2581 2582 2583 2584 2585 2586 2587 2588 2589 2590 2591 2592 2593 2594 2595 2596 2597 2598 2599 2600 2601 2602 2603 2604 2605 2606 2607 2608 2609 2610 2611 2612 2613 2614 2615 2616 2617 2618 2619 2620 2621 2622 2623 2624 2625 2626 2627 2628 2629 2630 2631 2632 2633 2634 2635 2636 2637 2638 2639 2640 2641 2642 2643 2644 2645 2646 2647 2648 2649 2650 2651 2652 2653 2654 2655 2656 2657 2658 2659 2660 2661 2662 2663 2664 2665 2666 2667 2668 2669 2670 2671 2672 2673 2674 2675 2676 2677 2678 2679 2680 2681 2682 2683 2684 2685 2686 2687 2688 2689 2690 2691 2692 2693 2694 2695 2696 2697 2698 2699 2700 2701 2702 2703 2704 2705 2706 2707 2708 2709 2710 2711 2712 2713 2714 2715 2716 2717 2718 2719 2720 2721 2722 2723 2724 2725 2726 2727 2728 2729 2730 2731 2732

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

THE STATE OF TEXAS, COUNTY OF DALLAS, ss. I, the undersigned, a Notary Public in and for said State, do hereby certify that the foregoing is a true and correct copy of the original of the same, as the same appears from the records of said County.

कलकत्ता १० फरवरी १९०७

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टमोऽध्यायः ॥

18 दिनांक 19 दिसम्बर

( १३-११-११ ) दिनांक

*[Faint handwritten notes at the bottom of the page]*

1. *Chlorophyll a* (Chl a)

030

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

" STERN " 1907

553-240-0705

इस प्रकार हमें यह पता चलता है कि उचित रूप से चलाया जाये तो यह एक अच्छा तरीका है।

१३ तर्हि तर्हि उक्तं ह्येतत् एव निश्चयं भवेत्



## १-त्वचा ( skin )

अभ्यंग का स्पष्ट प्रभाव त्वचा से मल दूर करने के लिये होता है। इस द्वारा अभ्यंग स्थानीय अंग में ताप वृद्धि भी होती है। शरीर के कई भागों में वसामय धातु ( Effleurage ) के संचय को प्रबल अभ्यंग भी दूर नहीं कर सकता।

## २- पेशी :- ( muscle )

एपल्यूरज ( Effleurage ) तथा पेट्रीसेज ( Petrissage ) के द्वारा पेशी में रक्तप्रदान की उन्मति होती है। और यह दुग्धाग्ल की अधिकता को नष्ट करता है। अभ्यंग अन्तर्पेशीय संयोजक धातु ( Intramuscular Connective tissue ) को प्रसारित करने में भी सहायक होता है। इस से पेशीय शक्ति की वृद्धि नहीं होती।

## ३- रक्त ( Blood )

अभ्यंग द्वारा ( Haemoglobin ) की प्रतिशतता ( Percentage ) तथा रक्त के सञ्चारित लाल कोणों ( R.B.C. ) की संख्या में वृद्धि देखी जाती है।

रक्त सञ्चार ( Blood Circulation )

---

अभ्यंग से रक्त लसीका संचार पर यान्त्रिक प्रभाव डाला जा सकता है। इस के निमित्त या तो केन्द्र गामी प्रताडन जिस से कि शिराओं के रक्त अथवा अथवा लसीका को हृदय की ओर जाने में सहायता मिले। या रक्त वाहिनियों की भित्तियों ( walls ) में स्थित अनैच्छिक मांस पेशियों में प्रत्यावर्तित संकोच ( Reflexes Contraction ) उत्पन्न हो, जिस से कि सुत्रों ( Fibres ) को अपनी तान उचित प्रकार से रखने में सहायता मिले। इन में से एक क्रिया आवश्यक है।



— ३३५ —

THE LIBRARY OF THE  
UNIVERSITY OF MICHIGAN  
ANN ARBOR, MICHIGAN 48106-1000

THE UNIVERSITY OF CHICAGO LIBRARY

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ਭੀ ਭੀਤੀ ਕਰੀਓ ॥ ਭਾਗ ਭਾਗ ॥ ਭਾਗ ॥ ਭਾਗ ॥ ਭਾਗ ਭਾਗ ॥ ਭੀ ਭੀ

15 दिनांक 15 मई 1958

१३ मंगल दि. २३/११/१९५३

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

मंत्र: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

12 TAFS TAFS 3075 BARK 30 FINEST BARK



## १-त्वचा ( skin )

अभ्यंग का स्पष्ट प्रभाव त्वचा से मल दूर करने के लिये होता है। इस द्वारा अभ्यंग स्थानीय त्रंग में ताप वृद्धि भी होती है। शरीर के कई भागों में वसामय धातु ( Effluvia ) के संचय को प्रबल अभ्यंग भी दूर नहीं कर सकता।

## २- पेशी :- ( muscle )

एपल्यूरज ( Effluation ) तथा पेट्रीसेज ( Petrissage ) के द्वारा पेशी में रक्तप्रदान की उन्नति होती है। और यह दुग्धाग्ल की अधिकता को नष्ट करता है। अभ्यंग अन्तर्पेशीय संयोजक धातु ( Intramuscular Connective tissue ) को प्रसारित करने में भी सहायक होता है। इस से पेशीय शक्ति की वृद्धि नहीं होती।

## ३- रक्त ( Blood )

अभ्यंग द्वारा ( Haemoglobin ) की प्रतिशतता ( percentage ) तथा रक्त के सञ्चारित लाल कोणों ( R.B.C. ) की संख्या में वृद्धि देखी जाती है।

रक्त सञ्चार ( Blood Circulation )

---

अभ्यंग से रक्त लसीका संचार पर यान्त्रिक प्रभाव डाला जा सकता है। इस के निमित्त या तो केन्द्र गामी प्रताडन जिस से कि शिराओं के रक्त अथवा अथवा लसीका को हृदय की ओर जाने में सहायता मिले। या रक्त वाहिनियों की भित्तियाँ ( walls ) में स्थित अनेच्छिक मांस पेशियाँ में प्रत्यावर्तित संकोच ( Reflexes Contraction ) उत्पन्न हो, जिस से कि सूत्रा ( Fibres ) को अपनी तान उचित प्रकार से रखने में सहायता मिले। इन में से एक क्रिया आवश्यक है।



३३. वि. संकाय नगर वि. संकाय ( ) पुस्तक संग्रहालय

ITSPB 3P 13F

( 010010 ) - 111 - 5

( 1991 ) 1991 ( 1991 ) 1991

१३७

ਮਾਇਤ੍ਰਿਯੰ ਤ੍ਵਿੰ ਤ੍ਵਿੰ ਕਿ ਮਾਇਤ੍ਰਿਯੰ ਤ੍ਵਿੰ

( 100 ) 100 - 6

THE FIRST (continued)

THESE ARE BUTTER & EGG TYPE ( 32-1000000 ) THERMIST

13. ਇਹ ਸਿੱਖ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਕਿਹੜੇ ਕਿਹੜੇ ( . . . . . )

( 1911-1912 )

THESE THY THINGS HAVE BEEN KEPT FOR THE PURPOSE OF THE

इस प्रकार की विचारों की ही वृत्ति नज़र आता है कि वह अपनी ही उन्नति के लिए ।

प्रतिष्ठापक मंडल यह । किन्तु प्रत्येक एक में भिन्न उद्देश कि मंडल कि प्रतिष्ठित प्रमाण

संकेत: त्रिभुजाकार है जिसका बायाँ कोण समकोण है। ( 0.11.20 ) त्रिभुजाकार है।

Reference Collection

[illegible]

19. 1915



## वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM)

इस संस्थान पर अभ्यंग से शामक और उचित अवस्था में उत्तेजक प्रभाव होता है। अभ्यंग को हाथ से एवं कभी २ यन्त्र द्वारा भी किया जाता है। इस के लिये विशेष कर प्रकार के नियमों (METHOD OR TECHNIQUE) का ज्ञान आवश्यक है।

### \* हस्ताभ्यंग (MANUAL MASSAGE)

इस अभ्यंग के निम्नलिखित ५ भेद हैं:-

- १- एफ्ल्यूरेंज (EFFLEURAGE) या मुक्की लगाना (
- २- पेट्रीसेज (PETRISAGE) या मलना (KNEADING )
- ३- घर्षण ( FRICTION )
- ४- ठपन (TAPOTMENT OR PERCUSSION
- ५- आवेप ( VILARATION )

### \* एफ्ल्यूरेंज (EFFLAURAGE) या मुक्की लगाना (,STROKING ):-

यह क्रिया अभ्यंग में प्रचलित है। इस में दीर्घ काल तक थप - थपाने का कार्य चलता रहता है। अभ्यंग करने वाला धीरे २ सरलता पूर्वक नियमानुसृत त्वचा पर जहाँ २ पर आवश्यकता होती है वहाँ पर इस क्रिया को करता है।

मुक्की लगाने की क्रिया ऊपरी ( SUPERFICIAL )

हो सकती है। ऐसी दशा में परिणाम प्रतिरोध योजना ( REFLEX ) MECHANISM ) के द्वारा प्राप्त होता है। जिस में शिरावाही तथा लसीका वाहिनियाँ (LYMPHATICS) की वास्तविक तथा यान्त्रिक रिक्ता प्राप्त होती है। इस प्रकार अभ्यंग क्रिया अतिनिर्दिष्ट (UNINDIRECTIONAL



ITRIP 20 21

( 0.500 kg )  $\times$  9.81  $\frac{m}{s^2}$  = 4.905 N

१७३५

ਮਰਿਅਦਾ ਤਿਥੇ ਭੀਐ ਕਿ ਜਾਇਐ ਜਾਇਐ

( 100000 ) 100000 - 0

THE FIRST (Hologram)

THE UNIVERSITY OF CHICAGO (continued)

1. संसार में ईश्वर के नामों की संख्या ( १००० )

( 1943. 12. 11. 10. 00. 00 ) 377-5 583

इसका अर्थ है कि जिसकी भी है उसी प्रकार कि वह इस जगत् में है ।

प्रतिष्ठापित कृत तत् । श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः ।

संविद्ध विनिर्माणकः २ विनिर्माणकः ३ विनिर्माणकः ४ विनिर्माणकः ५ ( २००० ) विनिर्माणकः ६

Reliance Construction ( )

RECEIVED THE TOWN OF NEW YORK

19. 10. 1954



## वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM)

इस संस्थान पर अभ्यंग से शामक और उचित अवस्था में उत्तेजक प्रभाव होता है। अभ्यंग को हाथ से एवं कभी २ यन्त्र द्वारा भी किया जाता है। इस के लिये विशेष कर प्रकार के नियमों (METHOD OR TECHNIQUE) का ज्ञान आवश्यक है।

### \* हस्ताभ्यंग (MANUAL MASSAGE) \*

इस अभ्यंग के निम्नलिखित ५ भेद हैं:-

- १- एफ्ल्यूरेंज (EFFLEURAGE) या मुक्की लगाना (
- २- पेट्रीसेज (PETRISAGE) या मलना (KNEADING )
- ३- घर्षण ( FRICTION )
- ४- ठपन (TAPOTMENT OR PERCUSSION
- ५- आवेप ( VILERATION )

### \* एफ्ल्यूरेंज (EFFLEURAGE) या मुक्की लगाना ( STROKING ) :-

यह क्रिया अभ्यंग में प्रचलित है। इस में दीर्घ काल तक थप - थपाने का कार्य चलता रहता है। अभ्यंग करने वाला धीरे २ सरलता पूर्वक नियमानुसृत त्वचा पर जहाँ २ पर आवश्यकता होती है वहाँ पर इस क्रिया को करता है।

मुक्की लगाने की क्रिया ऊपरी (SUPERFICIAL ) हो सकती है। ऐसी दशा में परिणाम प्रतिरोप योजना ( REFLEX ) MECHANISM ) के द्वारा प्राप्त होता है। जिस में शिरावाही तथा लसीका वाहिनियाँ (LYMPHATICS) की वास्तविक तथा यान्त्रिक रिक्ता प्राप्त होती है। इस प्रकार अभ्यंग क्रिया अतिनिर्दिष्ट (UNIDIRECTIONAL



-: 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040

1. THESE THING IS (10/11/2013) 2013-2

( ) ( )

(FRICTION) TURNS - 5

1012423 20 143910 111) 115 - 2

( 101109317 ) PSTP -V

प्रा. का. का. वि. वि. में उच्च शिक्षा में प्रवेश करने वाले छात्र

15.  $\frac{1}{2} \pi$  16.  $\frac{1}{2} \pi$



मन्द, ताल वृद्ध (RHYTHOMIC) एवं धीरे होनी चाहिये। थपकियाँ की संख्या लगभग १५ प्रति मिनट ही उचित है, अधिक संख्या हानिकारक हो सकती है।

गम्भीर स्फूर्त्युरेज में मुक्की लगाने की क्रिया सदैव केन्द्राभिग (CENTRIPETAL) होती है। तथा वह भाग जिस की मालिश की जाती है शाखा रूप होता है। दूरस्थ की अपेक्षा समीपान्त भाग (PROXIMAL REGIMENT) का अभ्यंग किया जाता है।

२- पेट्रीसेज (PETRISSAGE) :- मलना :- इस क्रिया में

पेशियाँ का समूह एकत्रित किया जाता है, या कहिये कि उस समूह को अस्थियों के ऊपर उठा लिया जाता है। उस मांस पेशी समूह को इस समूह में - एवं दबाया जाता है। तत्पश्चात् हाथ को एक हाथ की चौड़ाई में परिचालित किया जाता है और यह क्रिया तालवद्ध प्रकार से तब तक की जाती है जब तक वह स्थान प्रभावित न हो। इस क्रिया में एक या दोनों हाथों का प्रयोग संभव है।

यदि पेशियाँ एकत्रित नहीं की जा सकती जैसे कि पृष्ठ प्रदेश आदि। उस समय उन्हें लोठित एवं दबाया जाता है। ऐसी अवस्था में पेट्रीसेज पेशियाँ अधिक गहरी शिराओं के रक्त संचार एवं लसीका संचार (LYMPHATICS) में स्पष्ट उत्तेजक प्रभाव उत्पन्न होता है।

३- घर्षण (FRICTION) :- इस प्रक्रिया में कार्यकर्ता का हाथ

एवं उंगलियाँ रोगी की त्वचा पर एक स्थान पर दृढता के साथ रखी रहती है। तत्पश्चात् त्वचा को छोटे छोटे वृत्तों में अधःस्थ (UNDER LYING) मसूरी पर परिचालित करते हैं। दबाव सामान्य तथा चालन तालवद्ध ही होने चाहिये। किसी सिन्धु द्रव्य का प्रयोग त्वचा पर नहीं करना चाहिए, नहीं



આવું જાણીને તેણે મારાં મન ને દિલમાં રિજા મળીને પૂર્ણ કરી લીધું

18. तबिये सुकान्ता एतत्तु सुकान्ता सुकान्ता ( 2011 A H 9 M 1 )

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri



ती स्निग्धता के कारण अंगुलियाँ फिसेंगी। इस प्रकार का अभ्यंग विशेषतया ऊँह ऊपरी शताकी (Scars ) अथवा बन्धनों ( Adhesions )

को ढीला करने सलग्न त्वचा (Adhesen Skin ) को मुक्त करने एवं स्थानीय स्त्रावी के शोषण में सहायक होने के कारण लाभप्रद है ।

४- टैपन (Tapotment of Percussion) :- इस विधि में आघात देने

देना (Hacking ) थपथपाना ( Clapping ) आदि सब

किये जाते हैं। आघात देने की क्रिया अधिकतया प्रयोग में आती है। यह विधि

दोनों मणिबन्धों को Wrist ) ढीला करके की जाती है।

यदि केवल अंगुलियाँ से ही आघात किया जाये तो पेशीय उत्तेजना एवं पेशीय तान में उन्नति होती है।

५- आवाप (Vibration) :- इस प्रकार कठिन होने के कारण

अधिक प्रयोग में नहीं आता। इस से कार्यकर्ता को भी काफी कष्ट उठाना पड़ता है।

इस में कार्यकर्ता को अपने स्कन्धों और अग्रबाह की पेशियों द्वारा निरन्तर अंगुलियों के अग्रभाग से या सम्पूर्ण बाहु से शरीर के भाग पर उत्पन्न करता है । यह विधि सामान्य रूपण तान देने वाले प्रभाव के निमित्त प्रायः मेरु दण्ड के समानान्तर तथा कभी २ सिर पर अर्द्धविभेदक (Migrain ) के लिये भी होता है।

इन उपरोक्त अभ्यंग की विधियों में भी यह निम्न निर्देशों को अधिक ध्यान में रखा जाता आवश्यक है:-

१- रोगी एवं कार्यकर्ता ( चिकित्सा करने वाला ) दोनों सुखदायक स्थान में होने चाहिये।

२- सदैव उस स्थान को सहारा देना चाहिये जिस पर मालिश







ही रही हो।

३- रोगी एवं कार्यकर्ता दोनों की पेशियां शिथिल ( ढीली )  
होनी चाहिये।

४- कार्यकर्ता के वस्त्र अधिक तंग नहीं होने चाहिये जिस से  
कि उसे अभ्यंग करते हुए कठिनाई न हो।

५- अभ्यंग की सारी क्रिया में उचित रूप से आरम्भ करनी  
चाहिये, दोनों को सावधान रहना चाहिये, जिस से कि अभ्यंग की क्रियाओं  
की वृद्धि, शक्ति, अविरामता ( Frequency ) आदि में बाधा  
न पड़ सके।

६- पट्टीसेज ( Petri ssage ) की क्रिया सम्पूर्ण  
हस्तथल से होनी चाहिये न कि अंगुलियों के अग्रभाग अंगुलियों द्वारा यह  
क्रिया उस समय करनी चाहिये जब कि अंगुलियां तथा अंगुष्ठ की पट्टीसेज  
अलग २ पेशियां या पेशी समूहों को एकत्रित करन अभिवांक्षित हो।

#### यान्त्रिक अभ्यंग ( Mechanical Massage )

इस विधि द्वारा अभ्यंग यन्त्रों की सहायता द्वारा हो जाता है।  
इस के लिए बाजार में रोलर ( Roller ) एवं कन्दुक ( Bals )  
तथा अन्य प्रकार के साधन मिलते हैं। परन्तु आवेपाम्यंग ( Vibration Massage )  
के निमित्त हितकारी यान्त्रिक आवेपक ( Mechainical Vibrator )  
के अतिरिक्त अन्य सब साधन व्यर्थ हैं। इस का प्रयोग अभ्यंग करने वाले की  
बाहं के पृष्ठ भाग पर कर दिया जाता है। जिस से कि कार्य में सुगमता रह  
रह सके ।

यद्यपि अभ्यंग की कुछ क्रियाएं त्वचा रोगों में केवल त्वचा की







कुछ क्रियाएं त्वचा रोगों में केवल त्वचा की सुन्दरता आदि को बनाये रखने के लिए अधिक हितकारी है, परन्तु फिर भी जिन २ रोगों में यह अभ्यंग हितकर एवं अहितकर उन २ रोगों के नाम का निर्देश करना भी यहाँ पर संगत ही है, जिस से कि त्वचा रोगों के चिकित्सा क्रम में सुगमता रह सके। क्योंकि त्वचा रोगियों में कई रोगी अन्य २ व्यक्तियों से भी भी ग्रसित मिलते हैं।

जिन रोगों में यह अभ्यंग हितकारी रहता है, उस का विवरण निम्न है:-

१- रक्त तथा रक्तवाहक संस्थान गत रोग

( Diseases of blood and circulatory System. )

१- रक्तहीनता ( Anemia )

२- गौण रक्त हीनता ( Secondary Anemia )

इन रोगों में सर्वे देखिक एवं उदर सम्बन्धी अभ्यंग लाभकारी रहता है। इस से लाल रक्त कणों की संख्या तथा रक्त रंजक ( Haemoglobin ) इन दोनों की प्रतिशतात्मक संख्या ( Percentage Counting ) में वृद्धि देखी जाती है।

२- हृदयज रोग ( Diseases of Heart )

हृदयावसाद ( Cardiac Decompensation )

शोथ युक्त हृदयावसाद में विग्राम, तरल पदार्थों का यथोचित प्रयोग हितकारी है। इस के साथ यदि अभ्यंग भी रहे तो अधिक लाभ रहता है।







पाचन संस्थान के रोग ( Diseases of Digestive System )

क- श्लेष्मिक वृहदन्त्राशय ( Mucous Colitis Atonic Dyspepsia )

ख- अशक्त मन्त्रि ( Gastric Neuroses )

ग- आम्लाशयिक वात विकार ( Diseases of the liver )

घ- यकृत रोग ( )

६- अक्रयति ( Visceroptosis )

इन में सार्वदैहिक एवं उदर सम्बन्धी अम्यंग रोगानुसृत  
हितकारी रहता है।

४- श्वास संस्थान के रोग ( Respiratory Diseases )

क) श्वास प्रणाली विस्तृति : ( Bronchiectasis )

(ख) जीर्ण कास ( Chronic Bronchitis )

इन दोनों में भी उचित अम्यंग हितकारी है।

५- वात संस्थान के रोग ( Nervous Diseases )

क- यौषापस्मार

ख- स्नायु दीर्घत्व

ग- मध्यस्थ वात संस्थान ( C.N.S. ( रोग ।

### घ- प्रान्तस्थ नाडियों के राग

इन में भी अवस्थानुसार अभ्यंग हितकारी है।

सन्धिशीथ ( Arthritis )

ही अस्थिजात्य ( Bony Ankylosis ) रोग के

अनुकूल जिस अवस्था में यह नहीं करना चाहिये उस अवस्था को छोड़ कर



प्रातः काल १० बजे ( १० )

-१-

१- अंतर्गत ( १ )

२- अंतर्गत ( १ )

३- अंतर्गत ( १ )

४- अंतर्गत ( १ )

५- अंतर्गत ( १ )

६- अंतर्गत ( १ )

७- अंतर्गत ( १ )

८- अंतर्गत ( १ )

-२-

९- अंतर्गत ( १ )

१०- अंतर्गत ( १ )

११- अंतर्गत ( १ )

१२- अंतर्गत ( १ )

-३-

१३- अंतर्गत ( १ )

१४- अंतर्गत ( १ )

१५- अंतर्गत ( १ )

१६- अंतर्गत ( १ )

१७- अंतर्गत ( १ )

१८- अंतर्गत ( १ )

१९- अंतर्गत ( १ )

२०- अंतर्गत ( १ )



अभ्यंग व्यायाम तथा निरन्तर आकर्षण अथवा कुशाश्री Splints )

के द्वारा तान (Stretching ) कड़ी सन्ध्यों की चिकित्सा निमित्त बहुत हितकारी है।

### सौत्रिक शोथ (Fibrositis )

सौत्रिक शोथ में नवीन सौत्रिक धातु Fibrous Tissue ) बनता है। जिस में शोथ एवं स्पर्श वेदना होती है। उचित अभ्यंग से इस में लाम पहुँचता है।

### जीर्ण वात रक्त (Chronic Gout )

इस रोग में यह हितकारी रहता है, परन्तु तीव्र वात रक्त (Acute Gout )

### ७- शल्यगत रोग (Surgical Diseases )

क- सन्ध्युत्थिति (Dislocations of Joints )

ख- भग्न Fractures ) आदि में भी हितकारी है।

ग- मोच आना Sprains )

जिन रोगों में इस का प्रयोग अहितकारी है उन का वर्णन इस

प्रकार है:-

१- त्वचागत संक्रमण (Cutaneous affections )

२- क्षयज विकृति (Tuberculous Lesions)

३- तीव्र शिरा शोथ (Phlebitis )

४- रक्त स्कन्दन (Thrombosis )

५- लसीका बहिनी शोथ (Lymphangitis)

६- घातक शोथ (Malignant)



18 THE END

( )

[illegible]

( )

- १ - पृष्ठ क्रमांक ( २ )

( 20100111 1111 -P

:- 377

(continued)

(continued on next page)

( 15111) 115 TWT RTH - 5

(abstract) 1977 1977 - 1977

(3rd May 1962) 10/11 10/11 -



७- तीव्र शीथ युक्त ( Inflammatory Conditions)

c- अस्थिमज्जा प्रदाह ( Osteomyelitis)

६ - आमाशयिक व्रण ( Gastric Ulcer )

१०- पक्काशयिक व्रण ( Duodenal Ulcer )

११- वृहत्सूत्र वृद्धि ( Hernia )

१२- घमनी काठिन्य ( Arteriosclerosis)

११- बिद्रधि ( Abscess)

१४- वृक्क रोग ( Nephritis)

हत्यादि रोगों में इस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

इस के साथ २ त्वक्वा पर साधारण प्रकार की विकृति दूरी  
दूरी करणार्थ कुछ अन्य उपाय भी जो कि मविष्य में विशेष रोग का मूल  
कारण बनते हैं, प्रकट करने में आवश्यक है।

मुख पर कौटी २ पिटिकाएं ( मुँहा से ) या मुख के काले दाग एवं शरीरस्थ अन्य त्वचा के दाग बहुत ही अल्प समय में निम्नलिखित योगों से दूर हो जाते हैं, यदि इस योग की सारे शरीर में मालिश की जाये तो त्वचा की दुर्गन्ध कुन्सी एवं लाल आदि भी दूर हो कर शरीर की त्वचा सुन्दर , स्वच्छ एवं उज्ज्वल हो जाती है।

### इस की चिकित्सा के योग:-

योग नं०-१

१- पीली सरसों

२- चिराजी

### ३- मसर की दाल



( ) 99-8760

(1990) (1) 1990-1991

(a) (b) (c) (d) (e) (f) (g) (h) (i) (j) (k) (l) (m) (n) (o) (p) (q) (r) (s) (t) (u) (v) (w) (x) (y) (z) (aa) (ab) (ac) (ad) (ae) (af) (ag) (ah) (ai) (aj) (ak) (al) (am) (an) (ao) (ap) (aq) (ar) (as) (at) (au) (av) (aw) (ax) (ay) (az) (ba) (bb) (bc) (bd) (be) (bf) (bg) (bh) (bi) (bj) (bk) (bl) (bm) (bn) (bo) (bp) (bq) (br) (bs) (bt) (bu) (bv) (bw) (bx) (by) (bz) (ca) (cb) (cc) (cd) (ce) (cf) (cg) (ch) (ci) (cj) (ck) (cl) (cm) (cn) (co) (cp) (cq) (cr) (cs) (ct) (cu) (cv) (cw) (cx) (cy) (cz) (da) (db) (dc) (dd) (de) (df) (dg) (dh) (di) (dj) (dk) (dl) (dm) (dn) (do) (dp) (dq) (dr) (ds) (dt) (du) (dv) (dw) (dx) (dy) (dz) (ea) (eb) (ec) (ed) (ee) (ef) (eg) (eh) (ei) (ej) (ek) (el) (em) (en) (eo) (ep) (eq) (er) (es) (et) (eu) (ev) (ew) (ex) (ey) (ez) (fa) (fb) (fc) (fd) (fe) (ff) (fg) (fh) (fi) (fj) (fk) (fl) (fm) (fn) (fo) (fp) (fq) (fr) (fs) (ft) (fu) (fv) (fw) (fx) (fy) (fz) (ga) (gb) (gc) (gd) (ge) (gf) (gg) (gh) (gi) (gj) (gk) (gl) (gm) (gn) (go) (gp) (gq) (gr) (gs) (gt) (gu) (gv) (gw) (gx) (gy) (gz) (ha) (hb) (hc) (hd) (he) (hf) (hg) (hh) (hi) (hj) (hk) (hl) (hm) (hn) (ho) (hp) (hq) (hr) (hs) (ht) (hu) (hv) (hw) (hx) (hy) (hz) (ia) (ib) (ic) (id) (ie) (if) (ig) (ih) (ii) (ij) (ik) (il) (im) (in) (io) (ip) (iq) (ir) (is) (it) (iu) (iv) (iw) (ix) (iy) (iz) (ja) (jb) (jc) (jd) (je) (jf) (jg) (jh) (ji) (jj) (jk) (jl) (jm) (jn) (jo) (jp) (jq) (jr) (js) (jt) (ju) (jv) (jw) (jx) (jy) (jz) (ka) (kb) (kc) (kd) (ke) (kf) (kg) (kh) (ki) (kj) (kk) (kl) (km) (kn) (ko) (kp) (kq) (kr) (ks) (kt) (ku) (kv) (kw) (kx) (ky) (kz) (la) (lb) (lc) (ld) (le) (lf) (lg) (lh) (li) (lj) (lk) (ll) (lm) (ln) (lo) (lp) (lq) (lr) (ls) (lt) (lu) (lv) (lw) (lx) (ly) (lz) (ma) (mb) (mc) (md) (me) (mf) (mg) (mh) (mi) (mj) (mk) (ml) (mm) (mn) (mo) (mp) (mq) (mr) (ms) (mt) (mu) (mv) (mw) (mx) (my) (mz) (na) (nb) (nc) (nd) (ne) (nf) (ng) (nh) (ni) (nj) (nk) (nl) (nm) (nn) (no) (np) (nq) (nr) (ns) (nt) (nu) (nv) (nw) (nx) (ny) (nz) (oa) (ob) (oc) (od) (oe) (of) (og) (oh) (oi) (oj) (ok) (ol) (om) (on) (oo) (op) (oq) (or) (os) (ot) (ou) (ov) (ow) (ox) (oy) (oz) (pa) (pb) (pc) (pd) (pe) (pf) (pg) (ph) (pi) (pj) (pk) (pl) (pm) (pn) (po) (pp) (pq) (pr) (ps) (pt) (pu) (pv) (pw) (px) (py) (pz) (qa) (qb) (qc) (qd) (qe) (qf) (qg) (qh) (qi) (qj) (qk) (ql) (qm) (qn) (qo) (qp) (qq) (qr) (qs) (qt) (qu) (qv) (qw) (qx) (qy) (qz) (ra) (rb) (rc) (rd) (re) (rf) (rg) (rh) (ri) (rj) (rk) (rl) (rm) (rn) (ro) (rp) (rq) (rr) (rs) (rt) (ru) (rv) (rw) (rx) (ry) (rz) (sa) (sb) (sc) (sd) (se) (sf) (sg) (sh) (si) (sj) (sk) (sl) (sm) (sn) (so) (sp) (sq) (sr) (ss) (st) (su) (sv) (sw) (sx) (sy) (sz) (ta) (tb) (tc) (td) (te) (tf) (tg) (th) (ti) (tj) (tk) (tl) (tm) (tn) (to) (tp) (tq) (tr) (ts) (tt) (tu) (tv) (tw) (tx) (ty) (tz) (ua) (ub) (uc) (ud) (ue) (uf) (ug) (uh) (ui) (uj) (uk) (ul) (um) (un) (uo) (up) (uq) (ur) (us) (ut) (uu) (uv) (uw) (ux) (uy) (uz) (va) (vb) (vc) (vd) (ve) (vf) (vg) (vh) (vi) (vj) (vk) (vl) (vm) (vn) (vo) (vp) (vq) (vr) (vs) (vt) (vu) (vv) (vw) (vx) (vy) (vz) (wa) (wb) (wc) (wd) (we) (wf) (wg) (wh) (wi) (wj) (wk) (wl) (wm) (wn) (wo) (wp) (wq) (wr) (ws) (wt) (wu) (wv) (ww) (wx) (wy) (wz) (xa) (xb) (xc) (xd) (xe) (xf) (xg) (xh) (xi) (xj) (xk) (xl) (xm) (xn) (xo) (xp) (xq) (xr) (xs) (xt) (xu) (xv) (xw) (xx) (xy) (xz) (ya) (yb) (yc) (yd) (ye) (yf) (yg) (yh) (yi) (yj) (yk) (yl) (ym) (yn) (yo) (yp) (yq) (yr) (ys) (yt) (yu) (yv) (yw) (yx) (yy) (yz) (za) (zb) (zc) (zd) (ze) (zf) (zg) (zh) (zi) (zj) (zk) (zl) (zm) (zn) (zo) (zp) (zq) (zr) (zs) (zt) (zu) (zv) (zw) (zx) (zy) (zz)

[illegible][illegible]

13. संस्कृत में निम्न प्रकार से निम्न तुल्य

ਸਾਰ ਸਿੱਖਾਂ ਦੇ ਨਾਮੁ ਤਖ਼ ( ੧੧ ਨਾਮੁ ) ਸ਼ਾਹੀਦੀਆਂ ੬ ਤਿਹਿ ਸਾਰ ਨਾਮੁ

जिसे निम्न के अनुसार है :—

तबल कि उडिउ उड कि उडु के उडिउ उड उड कि उडु उडिउ कि उडल

19. ਕਿਸੇ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਣ ਵਾਲੇ, 1999

-: १०३ ई. तारीखी कि २४

2-05 1718

1875 1876 - 2

1157 -5



विधि:-  
०-०-०

सब को समान भाग ले कर अलग २ कूट कर हकटठा कर ले और इस में से कुछ ले कर गौदुग्ध में पीस कर रात्रि को सोने के समय मुख पर लगाये या शरीर पर लेप कर ले प्रातः गर्म जल से उस लेप को धो डालें। इस से त्वचा शुभ्र निकल आती है और त्वगिन्द्रिय कोष्ठा से दोष की निवृत्ति होती है।

योग नं० -२  
०-०-०-०-०-०

मसूर को मून कर उस का क्लिका उतार कर गाय के दुध के साथ पीस कर घृत और शहद मिला कर प्रतिदिन मुख पर लेप करने से मुख की फाँई ७ दिन में दूर हो जाती है। लेप के सूखने पर सर्व शरीर पर भी इस का लेप त्वचा के सौन्दर्य का वर्द्धक है।

योग नं० -३  
०-०-०-०-०-०

अर्जुन वृक्षा की छाल को बारीक कर के गाय के दुध के साथ घिसा कर मुख पर लेप करना चाहिये। इस से भी मुख की एवं सर्व शरीर की त्वचा सुन्दर बनती है, फुरियें आदि नष्ट होती है।

योग नं० -४  
०-०-०-०-०-०

मन्जीठ के बारीक चूर्ण को मधु के साथ लेप करने से भी शरीर एवं मुख की फुरियें आदि नष्ट होती है।

योग नं०-५  
०-०-०-०-०-०

केवल जैफल को यदि जल में घिसाकर मुख पर लगाया जाये तो मुख दुष्णिका आदि रोग दूर हो कर मुख त्वचा स्वच्छ हो जाती है।



-: प्रतीति

उत्ति है एक तन्त्र, एक उक्त, एक एक ही एक तन्त्र कि एक

विशेष एक एक एक ही एक कि एक एक एक एक ही एक एक एक एक ही एक

एक एक है एक। एक कि एक एक एक है एक एक : एक है एक एक एक एक एक

। है कि एक एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

१- ओं प्रतीति

एक है एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक

कि एक है एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक

एक एक है एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक

। है कि एक एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

२- ओं प्रतीति

। है एक है एक है एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

एक एक है एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

। है कि एक एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

३- ओं प्रतीति

कि है एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक

। है कि एक एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक कि एक

४- ओं प्रतीति

एक कि एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक

। है कि एक कि एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक एक



योग नं० -६  
०-०-०-०-०

१- सफ़ेद जीरा

२- काला जीरा

३- तिल

४- पीली सरसों

विधि:-  
०-०-०

सब समान भाग ले कर गाय के दुग्ध में रगड़ कर मुख पर लेप करने से उस स्थान की त्वचा या अन्य त्वचा जहाँ पर इस का लेप किया जाता है, स्वच्छ एवं रोग निर्मुक्त हो जाती है।

योग नं० -७  
०-०-०-०-०

१- लाल चन्दन

२- मन्जीठ

३- लोध्र

४- प्रियंगु

५- बट्ट की कोमल जटा के अंकुर

६- बुनी हुई मसूर के हिलके रहित दाने

विधि :-  
०-०-०-०

इन सब को समान भाग ले कर गी दुग्ध में त्वचा पर लेप करने से इस की सुन्दरता वृद्धि होती है।

योग नं० -८  
०-०-०-०-०

१- लोध्र

२- धनियाँ

३- बब







विधि:-

इन सब को समान भाग ले कर जल के साथ पीस कर मुख पर लेप करने से युवानपिङ्गासं ( मुख की फुन्सियाँ ) दूर हो कर मुख का सौन्दर्य बढ़ाता है। इस लेप का सर्व शरीर पर लेप करने से त्वचा की स्वच्छता एवं अन्य जीवाणुओं का शरीर की त्वचा पर प्रभाव नहीं होता।

इस प्रकार त्वचा की रोग दामता शक्ति वर्द्धनार्थ एवं उस के सौन्दर्य को चिरस्थायी बनाने के लिये ये ऊपरोक्त योग एवं निम्नलिखित कुंकुमादि तेल बहुत उपयोगी है। इस तेल की प्रतिदिन मालिश करने से शरीर कौमल एवं स्वच्छ तथा शुभ्र बन जाता है और विसर्प, कण्डू और कुष्ठ आदि रोग शरीर पर अपना प्रभाव किसी भी प्रकार से नहीं कर सकते।

योग नं० -६कुंकुमादि तेल

|                    |                      |
|--------------------|----------------------|
| १-केशर             | ११- तैज पत्र         |
| २- श्वेत चन्दन     | १२- पदास             |
| ३- रक्त चन्दन      | १३- कमल              |
| ४- लोध्र           | १४- कुठ              |
| ५- फलीग            | १५- गौरीचन           |
| ६- गैरु            | १६- हल्दी            |
| ७- पीला चन्दन      | १७- दारु हल्दी       |
| ८- सस              | १८- लास              |
| ९- मन्जीठ          | १९- नाग केशर         |
| १०- मुलहठी         | २०- ठाक पुष्प        |
| २१- प्रियंगु पुष्प | २२- कट के अये प्रकुर |

२३-मालती पत्र

२४- मीम







२५- सरसी

२६- ज्व

२७- यह सब एक २ तोला लै

२८- तिल तैल १ सैर एक छिट्ठाक एक तोला

२९- गाय का दुग्ध ६ सैर ८ छिट्ठाक दो तोला

निर्माण विधि:-

सर्व प्रथम इन द्रव्यों को बारीक कर लै फिर उन को गौ दुग्ध में पीस कर कल्क बना लै, फिर लोहे की कढ़ाही में तिल - तैल डाल कर पहले उस तैल निर्माण विधि द्वारा फाट लै, उस में उपरोक्त कल्क डाल कर गाय का दूध उचित परिमाण में डाल लै और मन्दग्नि से तैल निर्माण विधि द्वारा पाक करै परन्तु जिस समय तैल पाक में लगभग २ घण्टे शेष रहै तो कशर को खूब धीरे से दूध में रगड़ कर मिला कर पाक कर लै और उसे अच्छी तरह से छान कर बौतलों में भर लै । यह तैल बल्य एवं त्वचा रोगों के लिए हितकर और सौन्दर्य वर्द्धक है।

---

 ०-०-००००००००-०-०-०-

---

 ००००००

---

 ००००००







## समन्वयात्मक दृष्टि कोण से विसर्प का निदान

### मुख्य कारण:-

यह रोग प्रधानतया आधुनिक दृष्टि कोण से जीवाणु जन्य है। इस रोग में मुख्य कारण विसर्प उत्पन्न करने वाला मालाकार जीवाणु (*Streptococcus Erysipelatis*) है। परन्तु इसमें जब पुर या कोथ उपद्रव हो जाते हैं तो अन्य पुर जनक जीवाणु भी पाये जाते हैं। इस रोग का मुख्य जीवाणु समूह गृहस्थित वस्तुओं में बहुत दिनों तक चिपके रहते हैं। इनमें जीवन शक्ति अधिक होती है। यह रोग से तंत्रिकात्मक संक्रामक रूप भी कारण करता है और व्यापक रूप से ग्रीष्म प्रधान प्रदेशों में फैलता है। इसके विशेष मास फाल्गुण और चैत्र आदि मास हैं। इस का जीवाणु व्रण के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर रोग पैदा करता है।

### सहायक कारण:-

इस जीवाणु के प्रकोप की वृद्धि में दुषित जलवायु, दुषित स्थान आदि सहायक कारण होते हैं। और इस रोग के सहायक कारण त्वचा में क्षत एवं व्रण आदि हैं। इसी कारण प्रसूता स्त्री, नवजात बालक, टीका आदि लाये हुए एवं शस्त्रकर्म किये गये मनुष्यों में इसके प्रसार की विशेष सम्भावना रहती है। बाल्यावस्था में प्रथम वर्ष इसके बाद ४० वर्ष से बाद की आयु में इस रोग का प्रसार अधिक देखा गया है। पुरुषों की अपेक्षा यह स्त्रियों को अधिकतया आक्रान्त करता है।

चिरकालीन वृक्क एवं यकृत के रोगों से पीड़ित और मष







पायी लोगों को यह विशेष रूपेण होता है। इसके अतिरिक्त वे लोग भी इसी से आक्रान्त देखे गये हैं जो मधुमेह और वातरक्त से पीड़ित होते हैं। शारीरिक शक्ति की क्षीणता से यह रोग शीघ्र ही अपना पूर्ण प्रभाव करता है।

यह गन्दे स्थान एवं संकुचित वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों की उनकी दुर्बलता के कारण ज्यादा आक्रान्त करता है।

कुछ व्यक्तियों में प्रकृति के कारण या कुलज प्रवृत्ति के कारण इस रोग का अधिक प्रसार होता है। एक बार होकर बार २ होने की प्रवृत्ति इस रोग में है। यह प्रवृत्ति प्रायः मद्य पीने वाले व्यक्तियों में विशेष कर्मेच्छा होती है।

स्वास्थ्य हानिकर सब कारण इस रोग के सहायक हैं। इसके अतिरिक्त मसूरिका एवं आन्त्रिक ज्वर में भी यह रोग उपद्रव की दृष्टि से कदाचित् किसी किसी रोगी में हो जाता है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसके कारणों का विशिष्ट वर्णन निम्न प्रकार से देखा गया है।

१- चरक संहिताके कारण:-



लवणास्फुटणानां रसानामतिसेवनात् ।

दध्यम्लमस्तुशुक्तानां सुरासोवीरकस्य च ॥

व्यापन्नबहुमयोष्णरागषाडवसेवनात् ।

शाकानां हरितानां च सेवनाच्च विदाहिनाम् ॥

कुर्वितानां किलाटानां सेवनात्पुण्ड्रकस्य च ।

दध्नः शण्डाकिपुर्वाणामासुतानां च सेवनात् ॥







तिलमाषकुलत्थानां तैलानां पिष्टकस्य च।

ग्राम्यानुपादकानां च मांसानां लघुनस्य च॥

प्रकिलन्नानां च मत्स्यानां विरुद्धानां च सेवनात् ।

अत्यादानाद्दिवा स्वप्नादजीर्णाध्यक्षनात्कृतात् ॥

अथ न्यप्रसन्नं अथ न्यप्रसन्ननादमीकमो तिसेवनात्।

विषवाताग्निदोषाच्च विसर्पाणां समुद्भवः॥

स्तेर्निदानेर्व्यामिश्रेः कुपिता मारुतादयः॥

दुष्प्यान् सद्दुष्य रक्तादीन् विसर्पन्त्यहिताशिनाम्॥

( च० चि० ज० २१ श्लोक १५-२१ )

अर्थात् खण, अम्ल, कटु प्रभृति उष्ण रसों के अतिसेवन

से खट्टी दधि, मस्तु ( दधि का जल ) शुक्त ( सिरका ) सुरा, सौवीर

( निस्तुष जाँ से सम्बन्धित कांजिक भेद ) तथा विकृत मद्य अथवा बहुत अधिक

मद्य के सेवन से उष्ण वीर्य द्रव्यों के अधिक सेवन से राग बाढव ( अचार

चटनी ) के अधिक प्रयोग से पत्र शाकी के अधिक सेवन से प्यास हरितक

वर्ग:- ( अदरक, जम्बीर, मूली, सुरस, अजवायन गण्डीर, भुतुष, खराश्वा,

धनियां गाजर, लहसुन, प्याज के तथा अन्य विदाही द्रव्यों के सेवन से

कूर्चिक, किलाट मन्दक दधि ( जाँ दधिक अच्छी तरह से जमी न हो। ) तथा

शिण्डाकी प्रभृति सम्बन्धित द्रव्यों के प्रयोग से, तिल, उड़द, कुलात्थ, तैल

पिष्टक ( चावलों के आटे से प्रस्तुत भोज्य पदार्थ ) ग्राम्य, आनूप और

जलचारी पशुपक्षियों का मांस, लहसुन, प्रकिलन्न ( अत्यन्त सड़े गले )

द्रव्य, मच्छली इनके अत्याधिक सेवन से विरुद्ध भोजनों के करने से अत्याधिक

भोजन, दिन में सोना तथा अजीर्ण पर अध्यक्षन ( पूर्व भुक्त भोजन अभी पचा

न हुआ हो उसी अवस्था में पुनः भोजन करना ) से, क्षत से, वष से







(अति तीव्र आघात से) कत्तकर फट्टी या रस्सी आदि के बांधने से गिरकर चोट लगने से, घुप या अग्नि आदि के अत्याधिक सेवन से अथवा स्वेद आदि उष्ण क्रमों के अत्याधिक सेवन से वा अग्नि के दोष से विसर्पों की उत्पत्ति होती है।

विशेष वक्तव्य:-  
 ~~~~~

इन कारणों में जो राग बाडव कुचिका और किलाट आदि शब्द हैं उनकी व्याख्या निम्न प्रकार से है।

राग और बाडव के लक्षण  
 ~~~~~

आममाग्रं त्वचाहीनं द्विस्त्रिंशं सण्डितं ततः। मृष्टमज्ये  
 मनागस्तं सण्डपाके थ युनिततः ॥ सुपक्वं च समुचार्य मरिचै-  
 लेन्दुवासितम्। स्थापितं स्निग्धमृन्दाण्डे रागबाडव-  
 संज्ञितम् ॥ अथवा-- सितारुचकसिन्धुत्यैः सवृक्षांस्त-  
 पकषकैः। जम्बूफलसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः।  
 बाडवा मधुराम्लादिरससंयोगसम्भवनाः॥

कुचिका:-  
 ~~~~~

कुचिका दो प्रकार की मानी गयी है यथा:-

दध्ना सह च यत्पक्वं क्षीरं सा दधि कुचिका  
 तद्रेण पक्वं यत्क्षीरं सा भवेत्तु कुचिका॥

अर्थात्:- कुचिका दो प्रकार की है।

१- दधि कुचिका

२- वज्र कुचिका

१--दधि







### कूर्चिका :-

यदि दूध में दही या लस्सी डालकर उसे पकाया जाये तो वह दूध फट जायगा। जलीय अंश और घन अंश अलग अलग हो जायेंगे। इस फटे हुये दूध को कूर्चिका कहते हैं। यदि उसे दही से फाड़ा गया तो 'दधि कूर्चिका' और यदि तन्त्र से फाड़ा गया तो 'तन्त्र कूर्चिका' कहते हैं।

### किलाट :-

फटे हुए दुग्ध के घन भाग को 'किलाट' कहते हैं यथोक्तम्:-  
नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्ता किलाटकः। अथवा  
पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकूर्चिका। तन्त्रेण तन्त्रकूर्चा स्यात्तयोः  
पिण्डः किलाटकः॥

इस किलाट को बंगाली भाषा में 'छाना' कहा जाता है। कदाचित् दुग्ध स्वयं फट जाता है उसे क्षीर पाक कहते हैं, यथोक्तम्:-  
अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः ॥

इस क्षीर शाक के घन भाग को भी कहते हैं। दूध को नीम्बू आदि के रस से भी पका कर फाड़ा जाता है, उसका घन भाग भी किलाट की संज्ञा दी जाती है।

### शण्डाकी का लक्षण :-

शण्डाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्पषादिभिः

( शार्ङ्गधर संहिता )

मूली सरसों आदि द्वारा सन्धित शुकत विशेष-सर्प-सर-



-: उत्तराखण्ड :  
२०००-२००१

किं वरुण तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्

१३

-: उत्तराखण्ड :  
२०००-२००१

-: उत्तराखण्ड : किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
॥ उत्तराखण्ड : उत्तराखण्ड

तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
-: उत्तराखण्ड : किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
॥ उत्तराखण्ड : उत्तराखण्ड  
किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
उत्तराखण्ड किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्  
१३ किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात् किं तस्मात्

-: उत्तराखण्ड :  
२०००-२००१

: उत्तराखण्ड : उत्तराखण्ड

( उत्तराखण्ड )

-: उत्तराखण्ड : उत्तराखण्ड



संज्ञाकी कहलाता है।

वाग्भट के अनुसार विसर्प के कारण

विसर्प भी शोफ की पान्ति वातादि पृथक् दोषों के संसर्ग से सन्निपात से अभिघात से एवं पितृरक्त और कफ इन दुष्यों से होता है। यथा:-

स्याद्विसर्पो मिधातान्तेदोषैर्दुष्येच्च शोफवत् ।

(अष्टांग हृदय नि० अ० १३ श्लोक ४२)

दोषजन्य शोफ के निमित्त कथित कारण विसर्प के भी उत्पादक हैं, यथाक्तम्:-

सामान्यहेतुः शोफानां दोषजानां विशेषतः ॥

व्याधिकमोपवासादिक्षीणस्य मज्जतो द्रुतम् ।

अतिमात्रमथान्यस्य गुर्वभ्रमस्निग्धशीतलम् ॥

लवणक्षारतीक्ष्णोष्णशकाम्बु स्वप्नजागरम् ।

मृग्द्राम्भमासंवत्सूरमजीर्णं श्रमैथुनम् ॥

पदोत्तेमगिर्ममनं यानेन क्षोभिणा पि वा ।

श्वासकासातिसाराशोष्ठरज्ज्वराः ॥

विष्वच्यत्सकच्छदिगर्भवीसर्पपाण्डवः ।

वन्ये च मिथुयोफ्रान्तास्तेदोषा वक्षसि स्थिताः

ऊर्ध्वं शोफमधो बस्तो मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः ।

सर्वांगाः सर्वगतं प्रत्यङ्गैश्च तदाक्रयाः ॥

(अष्टांग हृदय नि० अ० १३ श्लोक २४-२६)

अर्थात् विशेष करके रोग उपवास पंचकर्म आदि से क्षीण शरीर



तात्पर्य विवरण  
 तात्पर्य विवरण  
 तात्पर्य विवरण

१. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

२. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

— तात्पर्य विवरण

३. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

(35-36 वीं पृष्ठ पर भी तात्पर्य विवरण)

४. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

— तात्पर्य विवरण

५. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

६. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

७. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

८. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

९. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

१०. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

११. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

१२. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

१३. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

१४. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

१५. तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण

(35-36 वीं पृष्ठ पर भी तात्पर्य विवरण)

तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण तात्पर्य विवरण



वाले पुरुष के सहसा अथवा अतिमात्रा में गुरु, अम्ल, स्निग्ध, शीतल  
मोजन करने से लवण क्षार तीक्ष्ण उष्ण शक या जल के सेवन करने से  
दिन में सोने और रात्रि के जागरण से भृतिकाग्रम्य मांस शुष्क मांस के  
मोजन से, पैदल यात्रा या काम करने वाली सवारी की यात्रा करने से  
श्वास कास, अतिसार, अर्श, उदर, प्रदर, ज्वर, विसृचिका ~~अतिसार~~  
अलसक, वमन, गर्भ विसर्प पाण्डु ये तथा अन्य जिन रोगों की ठीक चिकित्सा  
नहीं की जाती उनसे दोष हाती में स्थित होकर उदर में शोफ करते हैं।

वस्ति में स्थित होकर नीचे के भाग में और मध्य में स्थित  
होकर मध्य भाग में शोफ करते हैं।

सर्व अंगों में स्थित दोष सर्व शरीर गामी शोथ करते हैं।  
प्रत्यंग में तनाव और शोफ करते हैं।

ये ही कारण विसर्प के भी हैं। अतः सम्यक् शोफोक्त  
निदान का वर्णन करने से विसर्प के कारणों का भी ज्ञान हो जाता है।

वाग्भट के अनुसार वाइय विसर्प का वर्णन

वस्तु वासहेतोः क्षातात्पृष्ठः सरक्तं पित्तमोरयम् ॥

विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशश्चितम्।

स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यं श्यावलोहितम् ॥

अर्थात् वास कारण से क्षात के कारण से कुपित वायु पित्त  
के साथ रक्त को प्रेरित करके कुलपी के सदृश पिटकाओं से युक्त विसर्प रोग  
को उत्पन्न करती है।

इसमें रोगी को शोथ ज्वर, पीड़ा दाह की अधिकता रहती  
है। वह स्थान कृष्ण और लाल वर्ण का हो जाता है।







इस रोग में भावप्रकाशकार का मत:-

लवणा म्लक्ष्ण विसेवना दोष को फलः ।

विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥

(भावप्रकाशविकार ५५ श्लोक ५६ )

लवण युक्त खट्टे और चरपरे तथा उष्ण पदार्थों का सेवन करने से शरीरगत दोष जब कुपित हो जाते हैं। तो उस दोष प्रकोप से विसर्प रोग होता है। यह रोग ७ प्रकार का है। और यह शरीर में चारों ओर फैलता है।

इसी प्रकार चरकाचार्य भी ७ भेद ही विसर्प के मानते हैं।

यथोक्तम्:-

स च सप्तविधो दाहर्विज्ञेयः सप्त धातुकः ।

पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पो द्वन्द्वजास्त्रयः ॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक ११ )

अर्थात् यह बात आदि दोषों के कारण ७ प्रकार का होता है। उसे सप्तधातुक समझना चाहिये। अर्थात् इस रोग के जो कारण होते हैं वे दोष और दुष्य मिलकर ७ होते हैं।

वातिकः पित्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ।

चत्वार स्ते विसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक १२ )

वातिक पित्तिक एवं कफ जन्य और सान्निपातिक ये चार तथा आगे जाने वाले (३) द्वन्द्व विसर्प इस प्रकार यह ७ प्रकार का होता है।

द्वन्द्व विसर्पों की गणना:-



—: श्रीगुरुदेव नमः —

I: श्रीगुरुदेव नमः

II: श्रीगुरुदेव नमः

( १५ मंत्राः )

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

—: श्रीगुरुदेव नमः —

I: श्रीगुरुदेव नमः

II: श्रीगुरुदेव नमः

( १५ मंत्राः )

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः

I: श्रीगुरुदेव नमः

II: श्रीगुरुदेव नमः

( १५ मंत्राः )

श्रीगुरुदेव नमः

श्रीगुरुदेव नमः



वाग्नेयो वातपित्त्यां ग्रन्थ्यास्यः कफवातजः।

यस्तु कर्दमको ज्वरः स पित्तकफसंभवः ॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक १३ )

१- वात तथा पित्त से वाग्नेय विसर्प।

२- कफ और वात से ग्रन्थि विसर्प।

३- पित्त और कफ से कर्दम विसर्प।

इस प्रकार ये तीन प्रकार के दो दो दोषों से उत्पन्न विसर्प के हैं।

यही मत भावप्रकाशकार का है। परन्तु इसमें ज्ञात जन्य विसर्प का नाम नहीं आया। जिसे सुश्रुत ने पृथक् भी माना है। उसके मतानुसार वाक्कि, पैक्कि, कफज, सन्निपातिक और ज्ञातज ये ५ भेद होते हैं। क्योंकि इस रोग की साध्यासाध्यावस्था का प्रतिपादन करते हुए लिखा है, यथा:-

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः॥

सर्वात्मकः ज्ञातकृतश्च न सिद्धिमेति॥

पित्तात्मको ज्वरपुश्च भवेदसाध्यः॥

कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्वे स्व॥

( सु० नि० अ० १० श्लोक ८ )

वातज, पित्तज एवं कफज विसर्प साध्य होते हैं। सान्निपातज एवं ज्ञातज असाध्य होते हैं। पित्तज विसर्प जिसमें रोगी का शरीर अंजन के समान काला हो जाता है, वह असाध्य होता है। मर्मस्थानों में होने वाले सभी विसर्प असाध्य कृच्छ्रसाध्य होते हैं।

इस श्लोक में सुश्रुत मतानुसार ज्ञातज विसर्प भी ठहरता है।

परन्तु चरक में इसका स्वतन्त्र वर्णन नहीं है।







सप्त स्नान विसर्प इति वातपित्त कफाग्निकर्दम

ग्रन्थि सन्निपाताख्याः ।

परन्तु विसर्प के कारणों में चरक में भी ज्ञात का उल्लेख निम्न प्रकार से मिलता है।

अत्यादानादिवास्व पादजीर्णो व्यसनात्कृतात्

वधवन्धप्रपतनाद्धर्ममोतिसेवनात् ।

( च० चि० अ० २१ श्लोक १६ )

परन्तु इस पत्र के चतुर्थ पाद का निर्देश दंष्ट्रा दन्त नख ज्ञातात् के स्थान पर धर्ममोतिसेवनात् इस प्रकार से भी मिलता है। परन्तु ज्ञात भी एक विसर्प का कारण है। इस की पुष्टि श्लोक के द्वितीय पाद से ही हो जाती है।

एलोपेथिक दृष्टि कोण से सभी विसर्प ज्ञातज ही होते हैं। परन्तु आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से दोष एवं दुष्यों को प्रधानता है और यह 'ज्ञात' एक इस विमारी के उत्पन्न करने वालों विशेष कारणों में चरक ने परिगणित कर ही रखा है। अतः उसने इसे अलग नहीं गिना। सुश्रुत संहिता शल्य प्रधान ग्रन्थ होने के कारण इन कारणों की तरफ विशेष ध्यान दिलाती है। इसी कारण से सुश्रुत ने इसे आयुर्वेदिक विज्ञानवादियों की भ्रान्ति ज्ञात का मुख्य कर्ता मान कर इस स्वतन्त्र ज्ञातज विसर्प का निर्देश कर दिया है।

जिस प्रकार आयुर्वेद में इस रोग के ७ भेद हैं उसी प्रकार एलोपेथी में भी निम्न अनेक भेद माने गये हैं।

१- प्रमण शील विसर्प ( *Erysipilasmigrans* ):-



THE UNIVERSITY OF CHICAGO



इस प्रकार से कमी कमी विसर्प में मुँह से ग्रीवा वक्ता तथा शरीर के अन्य जगहों पर फैलने की प्रवृत्ति होती है।

## २- कदम विसर्प ( Cellulocutaneous or Gangrenous ):-

इस प्रकार त्वचा और उपत्वचा का गम्भीर पाक होकर विकृत स्थान में वातु गल जाते हैं।

## ३- परिवर्तित विसर्प ( Rebapsing ):-

इस प्रकार में कमी कमी एक ही स्थान पर विसर्प का पुनः पुनः आव्रमण होता है। जिसके परिणामस्वरूप उस स्थान की त्वचा प्रत्येक आव्रमण के समय अधिक से अधिक हो जाती है। और उसके समीप स्थान की त्वचा बाहिनियां रुकने लग जाती हैं और यह आव्रमण स्थान श्लीषद के समान मोटा हो जाता है।

## ४- नवजात विसर्प ( CONGENITAL ):-

इस प्रकार नवजात बालक में नालच्छेदन के बाद विसर्प हो जाता है। यदि उस समय उचित शुद्धि आदि का ध्यान न रखा जाये।

इसके अतिरिक्त विसर्प को निम्न प्रकार से भी विभाजित किया जाता है।

## १- स्वयंजात ( Idiopathic ) या आन्तरिक कारण

दोष प्रकोप जनित।

## २- अधिष्ठातृ या क्षत जनित:-

इसके अतिरिक्त इसके निम्नलिखित तीन भेद और होते हैं।

## १- सामान्य:-

इस प्रकार में इस रोग के सामान्य लक्षण अभिव्यक्त होते हैं।



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



## २- कठिन:-

~~~~~

इस प्रकार में कठिन और प्रदाह युक्त पुरात्पादक शोथ त्वचा के नीचे तन्तुओं तक फैल जाता है।

## ३- व्यापक:-

~~~~~

इस प्रकार में बाह्यान्त स्थान का शोथ की अनिर्दिष्ट रूप से सारे शरीर में व्याप्त मिलता है। इसके अतिरिक्त शरीर पर जो इस रोग का परिणाम होता है उस में भी इसके तीन भेद हो जाते हैं।

## १- शोथभाव:-

~~~~~

इस प्रकार में शोथ अदृश्य हो जाता है या उसका बिलकुल ह्रास हो जाता है।

## २- त्वक्ष फूटता:-

~~~~~

इस प्रकार में अधिक दाह होता है और फफोले पड़ जाते हैं। उनकी ऊपरी त्वचा छूट जाती है।

## ३- पुष्पमयता:-

~~~~~

इसमें यह रोग पुष्प की उत्पत्ति पूर्वक गति का त में परिणत होता है।

~~~~~

~~~~~

## विसर्प का मुख्य क्षेत्र

~~~~~

यद्यपि विसर्प रोग सर्व शरीर पर उत्पन्न होता है, परन्तु फिर भी इस रोग का विशेष आक्रमण प्रायः मुख और शिर पर होता है।

नवजात बालकों में नामित्वान इससे अल्प बाह्यान्त होता है







और कदाचित् कर्ण प्रदेश भी स्त्रियों में स्तन प्रदेश और जनेन्द्रिय ये दोनों स्थान भी प्रायः इस रोग से आक्रान्त होते हैं जाते हैं। पुरुषों में अण्डकोशीय प्रदेश आक्रान्त होता है।

अष्टांग-हृदयकार ने इनके अधिष्ठान कहे हैं:-

अधिष्ठानं च तं प्राहुर्वासान्तरुमयाभ्याम्

यथोत्तरं च दुःसाध्याः-

( अ० हृ० नि० अ० १३ श्लोक ४३ )

स्थान भेद से विसर्प तीन प्रकार से फैलता है, बाह्य स्थान एवं आन्तर स्थान एवं उभयस्थान।

ये उत्तरात्तर कष्टसाध्य हैं।

प्रकोपणैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः

देहे शीघ्रं विसर्पन्ति ते उत्तरन्तःस्थिता बहिः।

बहिःस्था द्वितये द्विस्थाः-

विषाचक्रान्तराश्रयम्

मर्मोपतापात्सम्भोहादयानां विषदटनात्

तृष्णातियोगादेगानां विषमं च प्रवर्तनात्

वायु चाग्निबलप्रसादतो वासं विपर्ययात्।

( अ० हृ० नि० अ० १३ श्लोक ४४-४६ )

अर्थात् विसर्प में वात आदि दोष बमकी अपने अपने प्रकोपक कारणों से प्रकुपित होकर विशेषतया विदाही अन्न से प्रकुपित होकर शरीर में शीघ्रता से फैलते हैं। ये दोष भीतर स्थित होकर आन्तरिक विसर्प की बाहर में स्थित होकर बाह्य विसर्प की ओर दोनों में स्थित होकर दोनों प्रकार में विसर्पों की उत्पत्ति करते हैं।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥  
 श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ )

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ )

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणं नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥



इनमें अन्त विसर्प को हृदय आदि मर्मों के दुःख से, मुखों से, कान नाक आदि इन्द्रियों के चालन या रगड़ से प्यास के अधिक लगने से, मल मूत्र आदि वेगों के असम्यक् प्रवर्तन से, शीघ्र ही अग्नि और शारीरिक बल के नाश से जांच करें। और बाह्य विसर्प को इन लक्षणों से विपरीत होने से बहुत पहचानें।

विसर्प का समन्वयात्मक सामान्य परिचय

रोग का आक्रमण विशेषतया अधिक शीत के साथ होता है। यदि रोग बच्चों को आक्रान्त करता है तो उस समय आक्षेप भी आते हैं। इसके अतिरिक्त सिरदर्द, वमन, अग्निमान्द्य शरीर में पीड़ा तथा बेचैनी इत्यादि लक्षण भी होते हैं।

कभी कभी तो सिरों वेदना इतनी अधिक होती है, कि मस्तिष्कावरण शोथ की शंका हो जाती है। यदि साथ में प्रलाप उपद्रव भी हो तो मस्तिष्कावरण भी पूर्ण प्रभावित हो जाता है। कुछ समय में ही मुख पर या इसके समीपस्थ भाग पर एक छोटा सा रक्त वर्ण स्थान दिखायी देता है। और यह रक्तवर्णता धीरे धीरे चारों ओर बढ़ने लग जाती है।

जिस स्थान पर यह लालिमा होती है वह स्थान शोधयुक्त, चमकीला, उष्ण, वेदनायुक्त पीड़ा को सहन करने में असमर्थ एवं तना सा होता है। यदि इसे दबा कर देखा जाये तो दब जाता है। इसके विस्तार की गति स्थान की कोमलता और कठोरता पर निर्भर है। यदि स्थान कोमलतायुक्त हो यह शीघ्रता से वृद्धि को प्राप्त होता है। यदि स्थान कठोरतायुक्त हो तो यह विलम्ब से फैलता है। जैसे यदि आँसों के समीप



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



इस रोग का प्रसार हो जाये तो यह शीघ्रता से फैलता है। और उस समय उस स्थान पर शोध की भी अधिकता रहती है। यदि अन्य कठोर स्थानों पर इस का प्रसार हो तो यह मन्द गति से फैलता है। इसमें उस समय शोध भी अधिक नहीं होता बल्कि कम हो जाता है।

इस विसर्प की शोध का किनारा कुछ उमरा हुआ कड़ा और फुन्सियों से युक्त होता है। और इन फुन्सियों में प्रायः पीले रंग की लसीका होती है। तीन चार दिन के भीतर ही सम्पूर्ण मुख मण्डल तथा कान आदि फूल जाते हैं और आसों बन्द हो जाती है। मुखमण्डल के देखने से रोगी की पहचान करना असम्भव सा हो जाता है।

इसके अतिरिक्त गले की लसीका ग्रन्थियां भी फूल जाती हैं। ग्रास आदि के निगलने में बहुत कठिनता का अनुभव करना पड़ता है।

विसर्प के स्थान पर बेचैनी तनाव और दाह होती है। जैसे ज्यों ही विसर्प आगे जागे फैलता जाता है। त्योंही प्राक्स्थिक स्थान और पिछले स्थान का शोध कम होता जाता है। और तत्स्थानीय त्वचा भी भुसी के रूप में झिलने लग जाती है।

इसके अतिरिक्त यदि शिर पर इस रोग का प्रसार हो तो शिर कपाल के केश गिरने लग जाते हैं। कभी कभी इस स्थानीय विसर्प में तीव्र पीड़ा एवं जलन भी होती है और उससे बड़े फफोले निकल आते हैं।

कभी कभी २ विसर्प मुख के भीतर गले में टांगिस्तल या स्वर-यन्त्र में प्रवेश कर जाता है। इससे श्वास लेने और ग्रास आदि के निगलने में कठिनाई हो जाती है। इस अवस्था में स्वांसावरोध (ASPHYXIA) उपद्रव भी होता है।

क्योंकि चरम में भी आन्तरिक, वाह्य और उभयाश्रित इस







प्रकार तीन प्रकार के विसर्पों का स्थान भेद से वर्णन मिलता है।

बहिःश्रितः श्रितश्चान्तस्तथा चोभयश्रितः।

विसर्पो बलमेषां तु ज्ञेयं गुरु यथोचरम् ॥

बहिर्नागश्रितं साध्यमसाध्यमुभयश्रितम् ।

विसर्पं दारुणं विद्यात्सुकृच्छ्रं त्वन्तराश्रयम् ॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक २२-२३ )

अर्थात् विसर्प तीन प्रकार का होता है:-

- १- वाह्य आश्रित
- २- अन्तः आश्रित
- ३- उभयश्रित ( शरीर के बाहर और भीतर स्थान में आश्रित )

इन्में क्रमशः गुरुता समझनी चाहिये अर्थात् वाह्य आश्रित से

अन्तः आश्रित और अन्तः आश्रित से उभयश्रित विसर्प अधिक बलवान् होता है। और इनके चिकित्सा क्रम में भी इसी प्रकार क्रमशः कठिन प्रयास करना पड़ता है। जो विसर्प वाह्य मार्ग में स्थित है वह साध्य है। जो बाहर और भीतर दोनों स्थानों में आश्रित है। वह दारुण एवं असाध्य होता है। जो केवल अन्तः मार्ग में स्थित है उसे अतिकष्ट साध्य समझना चाहिये।

इस रोग में स्थानिक विकृति तो होती है। परन्तु साथ में रोग के आरम्भ काल से ही ज्वर उपद्रव भी रहता है। यह ज्वर २४ घण्टे में १०२ से १०४ तक चला जाता है। ज्वर के साथ जिह्वा पर विशेषतया मेल देखी जाती है।

नाड़ी की गति १०० से १२० तक तीव्र हो जाती है। मूत्र में अल्पता हो जाती है। इसके अतिरिक्त कदाचित् मूत्र में अत्यूष्णि भी जाती है।







### विसर्प मर्यादा

यह रोग अपनी तीव्रता के अनुसार २ से ३ सप्ताह तक स्वयं ठीक हो जाता है। इसलिये यह स्वयं मर्यादित रोग भी माना है। यदि कोई उपद्रव न हो और शोथ भी गम्भीर स्थान तक न पहुँची हो तो ज्वर ५ से या ६ वें दिन से अकस्मात् धीरे धीरे उतरने लग जाता है। स्थानिक शोथ भी कम होता है, और उसका प्रसार बन्द हो जाता है। इसके बाद १-२ सप्ताह तक विकृत स्थान की त्वचा झिल्ली रहती है और रोगी ठीक हो जाता है। यह मर्यादा केवल कीटाणु जन्य विसर्प में तो देखी जाती है। परन्तु दोषजन्य विसर्प में इस मर्यादा का सङ्गठन हो जाता है।

कई व्यक्ति मानते हैं, कि विसर्पीणु विष शरीर में प्रविष्ट होने के बाद एक सप्ताह बाद रोग के केवल लक्षण उत्पन्न करता है। वे सब लक्षण व्यक्त भी रोगी में मिलते हैं। इस पूर्व अवस्था को विसर्प का का पूर्वरूप समझा जाता है। या विसर्प की गुप्तावस्था भी कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कई चिकित्सक मानते हैं कि एक से तीन चार दिन तक ही इस रोग की पूर्वावस्था होती है। परन्तु यदि विसर्पीणु के विष का प्रयोग इजे क्लेन द्वारा रोगी को कराया जावे तो १५-१६ घण्टे के बाद रोग की उत्पत्ति देखी जाती है। इस अवस्था में योनि और त्वचा में शोथोत्पादक लक्षण स्पष्ट होकर आश्रान्त स्थान में परिवर्तन भी आरम्भ हो जाते हैं।

कई चिकित्सक ऐसा मानते हैं कि सम्पूर्ण मुलमण्डल पर विसर्प के प्रादुर्भाव से पूर्व ग्रीवा गत लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं।



CCO Gurukul Kangri Collection Haridwar Digitized by eGangotri



डा० जोष्टन के विचार में विसर्प से पूर्व सुख का अभाव, कम्प, आलस्य तन्द्रा क्षीणता प्रतीत होती है। नाड़ी की गति तीव्र और उत्कलेश वमन उदर रोग एवं कदाचित् कण्ठ नलिका में दाह युक्त शोथ हो जाती है।

डा० वल्कमेन के विचार में इस रोग का पूर्वरूप कोई प्रकाशित नहीं होता। जो सब स्थानों पर पूर्वरूप दिखायी देते हैं, वे इन स्थानों के अतिरिक्त गम्भीर अंश में स्थानिक विकार आरम्भ होते हैं। और साथ २ शीघ्र ही अत्यन्त कम्प, वमन, गात्र दाह होने लगता है। इसके बाद जहाँ पर दाह होता था वहाँ पर वेदना भी होने लगती है। रोगी को प्रथम गले में जलत हो जाता है। क्रमशः रोग की वृद्धि हो जाती है। ज्वर का उपद्रव भी इतना प्रबल हो जाता है, कि ज्वर १०४-१०५ तक हो जाता है।

विसर्प के उपद्रवों का वर्णन आचार्य ने भी निम्न प्रकार से किया है:-

ज्वरात्तिसारो वमथुस्त्वहमांसदण्डं क्लमः।

अरोचकाविपाको च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥

अर्थात् ज्वर, अतिसार वमथु त्वचा और मांस का फटना क्लम, अर्चि और अविपाक ये उपद्रव विसर्प रोग होते हैं।

विसर्प के उपद्रवों में ज्वर का होना प्रथम आवश्यक है।

तत्पश्चात् ज्वर का द्रास होना आरम्भ हो जाता है। या ज्वर आरम्भ होने के कई घण्टों बाद किसी स्थान की त्वचा में या नासा समीप में लालिमा, दाह, शोथ और तीव्र वेदना हो जाती है। लालिमा शीघ्र ही बढ़ जाती है। परन्तु इस लालिमा को यदि दबाया जाये तो यह अदृश्य हो जाती है। इस रोग का शोथ धीरे धीरे सम्पूर्ण मुखमण्डल पर २-३ दिन में ही फैल



... ७८५

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...



जाता है।

क्रमशः जितनी दूरी तक यह रोग फैलता है। उसकी सीमा की रेखा का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि किनारे उठे हुए होते हैं और विस्तृत अंश को छोड़ कर कंगली से स्पर्श करने पर त्वचा के नीचे के तन्तुओं में प्रक्षिप्त प्रवर्धन प्रतीत होता है।

यदि रोग फैलने वाला न हो तो रोग ग्रस्त भाग के उभरे हुए किनारे धीरे धीरे स्वस्थ त्वचा के साथ मिल जाते हैं। नेत्र की पलकों की जहाँ पर त्वचा शिथिल हो जाती है। वहाँ शीघ्र अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। कदाचित् पलकों खुलती भी नहीं और शोथमय पलकों के कारण रोगी को किसी वस्तु के देखने में भी कठिनाई होती है। उस रोगी के मुख की आकृति भी विकृत हो जाती है। मुख पर छोटी छोटी फुन्सियाँ या फफोले हो जाते हैं। इन में जल सा दिसायी देता है। तीन चार दिन तक यह रोग मुख से ग्रीवा तक सब स्थानों में फैल जाता है। ठोड़ी की त्वचा के नीचे से संयोग तन्तु के गुच्छों की रचना विशेष से उसमें रोग स्पर्श नहीं करता अर्थात् यह स्थान रोगाक्रान्त होने पर भी विकृत रूप को धारण नहीं करता है।

इसी प्रकार उदर के नीचे के भाग में अथवा ऊरु आदि के विसर्प रोग में जघन चूड़ा या वंकाण स्नायु से विसर्प का विस्तार रुक जाता है।

मस्तिष्क और मुख का विसर्प वक्षःस्थल तक फैलता है। किन्तु देह काण्ड हाथ पैर का विसर्प सर्व शरीर में फैल जाता है।

मुखमण्डल आदि जो स्थान खुले रहते हैं, वे सब स्थान इस व्याधि से गिर जाते हैं। मस्तिष्क और मुख में जैसे जैसे विसर्प फैलता है,







वैसे ही मुख की विकृति नेत्र भी पलकों के फूलने साथ साथ कर्णों में भी विकृति पायी जाती है। वे स्थूल और मांस के पिण्ड के समान हो जाते हैं।

कभी कभी किसी किसी स्थान पर तो फफोला फूट कर सदा उससे ब्राव होने लग जाता है। यदि फफोला नहीं फूटता तो पुर्य भी हो जाती है।

इस रोग के विषय में मिस्टर बारेनल्डस का विचार है, कि इस रोग में स्थानिक विकार के साथ साथ ज्वर अवश्य रहता है। ज्वरोष्मा कभी घट जाती है और कभी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है। कदाचित् किसी किसी रोगी में ज्वरोष्मा समान रहती है। प्रायः प्रातः काल की अपेक्षा ज्वरोष्मा सायंकाल में कम हो जाती है। नाड़ी के गति तेज मृदु एवं क्षीण हो जाती है। कदाचित् दो बार फटका देकर या हक हक करके चलती है। अधिकतया रोगी को रात्रि में प्रताप और कभी कभी प्रबल उन्मत्तता-हमें- उन्मत्तता हो जाती है। सिर में पीड़ा निद्राभाव एवं अधिक शोर की ध्वनि इस रोगी को अच्छी नहीं लाती, घुथा का अभाव प्यास, वमन की इच्छा या बारम्बार वमन का उपद्रव होता रहता है। जिह्वा मेल से युक्त रहती है। अनेक रोगियों में मल अतिसार भी होता है। उसका मल दुग्न्धित होता है। और ऐसे रोगी को मूत्र भी अल्प ही जाता है। उसमें रक्त की लासिमा और निर्माल ( ) आदि भी निकलते हैं।

जो विसर्प एक स्थान से प्रकाशित होने के वह शरीर के दूसरे स्थान में हो जाता है। उसे प्रमणशील विसर्प (ERYSIPILAS MIGRANS) हरिसिपलेस माई ग्रान्स कहते हैं। यह रोग की कोई निश्चि मर्यादा नहीं। किसी किसी रोगी में तो यह १४ दिन तक और किसी किसी पर इस







इस रोग का प्रभाव ६ से ७-८ दिन तक अवश्य रहता है। यदि ठीक होने योग्य हो यह रोग जब शरीर के निम्न निम्न स्थानों पर या हाथ पैरों पर अपना चक्कर लगाता है तो स्थान पर इसे कई सप्ताह तक एवं कई मासों तक स्थायी रूप में देखा गया है। फिर इस रोग की शान्ति हो जाती है।

कई रोगियों में १ घण्टा के भीतर ही शारीरिक ताप स्वाभाविक हो जाता है। और विसर्प के सब स्थानिक लक्षण शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। त्वचा की लालिमा लुप्त हो जाती है। उसमें शिथिलता और संकुचिता अवस्था देखने में आती है। जिस स्थान का रोग शान्त हो जाता है। इसकी छोटी एवं बड़ी सब फुन्सियें एवं फफोले आदि सब सूख जाते हैं और पीला हला त्वचा पर रह जाता है। अन्त में ऊपरी त्वचा स्तर रूप में या सुक्ष्म कणों के रूप में गिरती रहती है। मस्तिष्क की त्वचा के आक्रान्त होने पर साज उठती रहती है। जब यह रोग उस स्थान से निवृत्त हो जाता है, तब भी कण्डू (साज) का प्रादुर्भाव पुनः हो जाता है। यह सब अवस्था साध्य विसर्प के लिये है। असाध्य एवं कण्ठसाध्य विसर्प तो कठिन प्रयत्न करने पर ही साध्यावस्था को प्राप्त हो सकता है।

सर्व स्थानों पर साध्यावस्था में फल सार्थक ही तो ऐसा कहीं कहीं नहीं भी होता किसी स्थान में जाल की पत्तों की तरह लिंग के पूर्व भाग की त्वचा भगोष्ठ आदि कोमल स्थानों में सड़ने वाला घाव हो जाता है। किन्हीं किन्हीं स्थानों में शोध के कम होने पर भी बाह्य त्वचा के नीचे के भाग में विकृति को दूर करने के निमित्त अस्त्र चिकित्सा का भी आश्रय लेना पड़ता है। इस रोग में प्रायः नासिका कान और आँखें बार बार के आक्रमण से विकृत एवं मोटी भी प्रतीत होती हैं।







इसके उपसर्ग शनिक कण्ड ( टेरिगाइडप्लेक्सस ) मस्तिष्क शिरा ( कर्वेनस साइनस ) के साथ मॉस्कि शिरा के विशेष सम्बन्ध से प्रयुक्त शिरोवरीय ( सेरिब्रल ) केशिका और शिरोकुल्या ( साइनस ) में रक्त का जमाव उत्पन्न हो जाता है।

कण्ठ में रोग के फैलने से जाम्यन्तरीय कण्ठ नली प्रदाह ( एडिभैटस लेरिज्जाइटिस ) उत्पन्न हो जाता है। और फुफ्फुस प्रदाह उरस्तोय ( प्युरिसी ) मस्तिष्क कला प्रदाह एवं हृदय की रक्तधरा कला प्रदाह अधिकतया हो जाते हैं।

~~~~~  
सापेक्षिक निदान  
~~~~~

ज्वर और स्थानिक लक्षणों की तरफ दृष्टि डालने पर रोग का निर्णय सुगमता पूर्वक हो जाता है।

एरीथिमा ( ERYTHEMA ) के साथ इसका सादृश्य इसलिये मिलता है। कि इसमें स्थानिक शोथ होती है। किन्तु वह शोथ विसर्प की भान्ति प्रसारशील नहीं होता। इसमें अधिकतया कोई सर्वांगिक लक्षण नहीं देखे जाते हैं।

अनेक स्थानों पर मसुरिका, आदि पिड़िका निकलने वाले ज्वर को प्रथम अवस्था के साथ इसका भ्रम हो जाता है। इन सब ज्वरों में मुख मण्डल के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों पर पिड़िकारं निकलती हैं। ज्वर की अवस्था और लक्षणों को दृष्टिगोचर करते हुए विसर्प का ज्ञान सुसुगमता पूर्वक हो जाता है।

कदाचित् किसी किसी रोगियों में विशेष-कर बालकों के गलसुबा ( )

मध्यम के साथ इस रोग के पहचानने में भ्रम सा प्रतीत देता



पुत्री कन्या ( पुत्रीकन्या ) के कन्या विवाह के

कन्या के विवाह के पुत्री कन्या के ( कन्या विवाह )

पुत्री के ( कन्या ) कन्याविवाह के कन्या ( कन्या ) कन्याविवाह

के विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के ( कन्याविवाह के कन्याविवाह )

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या ( कन्या ) कन्याविवाह

के विवाह के कन्याविवाह के

कन्याविवाह के  
कन्याविवाह के  
कन्याविवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

कन्या विवाह के ( AM3H7V83 ) कन्याविवाह

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के  
कन्या विवाह के कन्याविवाह के कन्याविवाह के कन्याविवाह के कन्याविवाह के

के विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

पुत्री के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

के विवाह के कन्या विवाह के

के विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के कन्या विवाह के

( ) कन्याविवाह



हैं जो कि गंगसुवा रोग के मुख्य लक्षण हैं।

कर्ण-मूल शोध की लालिमा से ज्ञान हो जाता है। क्योंकि यह शोध युक्त लालिमा एक स्थान पर ही रहती है। इधर उधर प्रसारण शील नहीं होती है। विसर्प में प्रसारण शीलता रहती है। इसके अतिरिक्त कर्ण-मूल ग्रन्थि ही इस रोग में प्रभावित होती है। जबकि विसर्प में इसके समीपस्थ भाग भी आक्रान्त होते हैं इस प्रकार विसर्प के पूर्व लक्षणों की तरफ दृष्टि डालने से यह रोग शीघ्रता से पहचाना जा सकता है।

### मुख्य परीक्षा

इस रोग की जांच में निम्नित पंक्तिवद्ध विन्दुकाकृति वाला स्ट्रेप्टोकोकस इरीसिपलिस (STREPTOCOCCUS ERYSIPILAS) नामक जीवाणु को जघावीद्वानजन्य (MICROSCOPIC) द्वारा देखें कीटाणु मिले तो इस रोग की जांच हो जाती है। जायुर्वेदानुसार यह रोग दोष प्रकोप से भी होता है। उस समय इस रोग के विशेष विशेष दोष के निमित्त कथित लक्षण उपद्रव आदि का विशेष न्न ध्यान रखने से पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

### विसर्प के अष्ट लक्षण :-

यद्यपि यह रोग प्रायः साध्य एवं मर्यादा में रहने वाला है परन्तु फिर भी बालक, वृद्ध, दुर्बल प्रसूता स्त्री मद्य पीने वाला, चिरकालीन वृक्क विकार रोगी एवं मधुमेही और स्थूलता के रोगियों में आसाध्य हो जाता है।

कर्म विसर्प, नवजात विसर्प एवं भ्रम गशील विसर्प भी असाध्यता को प्राप्त होते हैं। यदि अनुचित चिकित्सा एवं उचित साधन न हों।



1. यह एक रूप है और तद्वत् ही है

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

यह एक रूप है और तद्वत् ही है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

तबकि कि मात्र तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

( 20110209 20110209090909 ) अर्थात् यह तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि

अर्थात् यह तब कि मात्र है तबकि कि मात्र तबकि



इसके अतिरिक्त यदि इस रोग में ये उपग्रह हों तो ये रोगी के लिये निश्चित अरिष्ट लक्षण ( अरिष्टं मरण व्यापकं लिंगं ) समझ लेना चाहिये।

- १- मस्तिष्कावरण शोथ ( MENINGITIS ):-
- २- तीव्र वृक्क शोथ NEPHRITIS
- ३- हृदन्तः शोथ ENDOCARDITIS
- ४- फुफ्फुस सन्निपात ( न्यूमोनिया ) PNEUMONIA
- ५- जीवाणुमयता
- ६- अति तीव्र सन्ताप
- ७- विसर्पजन्य नीलिका
- ८- वमन
- ९- प्रवल युक्त उन्मत्ता
- १०- विषमयता

इसलिये इनकी चिकित्सा आदि का विशेष ध्यान रखना साथ साथ आवश्यक एवं अनिवार्य है।

इस विषयमें निम्नलिखित प्रमाण भी भिन्न भिन्न संहिताओं के सार्थक ही हैं।

सुश्रुत संहिता:-

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः ।

सर्वात्मकः क्षातकृत्स्व न सिद्धिमेति॥

संज्ञानिलावपि च दर्शितपूर्वलिङ्गो ।

सर्वे च मर्मु भवन्ति हि कुक्कुसाध्याः॥

( सु० सु० नि० अ० १० श्लोक ८ )



पुस्तक संख्या १०१

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम

पुस्तक संख्या

पुस्तक (संस्कृत भाषा) का नाम



चरक संहिता:-

वस्मिन्निगिभितं साध्यमसाध्यमुपयाभितम् ।

विसर्पे दारुणं विधात्सुकुम्भं त्वन्तराश्रयम् ॥

यस्तु लिङ्गानि सर्वाणि बलवत्स्य कारणम् ।

यस्य चोपद्रवाः कष्टा मर्माणि यस्य हन्ति सः ॥

(च० वि० अ० २१ श्लोक २३ और २७ )

भोज संहिता:-

वर्ज्यस्तु क्षतजरत्रेषां सन्निपाताद्युपायैः भवेत् ।

निषेधा जानता त्याज्याः सर्वे एव तु मर्मजा ॥

विसर्प पर प्राचीन संहिताओं के विवेचन का समन्व-

यात्मक विम्वन प्रकार से है। यद्यपि इस रोग का संक्षिप्त विवरण

पुरातन ग्रन्थों में बहुत स्थानों पर मिलता है। परन्तु उनके उस संक्षिप्त

विवरण से चिकित्सक को पूर्ण सफलता और इस रोग की विशेष जान-

कारी नहीं हो सकती। इसलिये उन सब स्थानों में से मुख्य संहिताओं

के विशेष वर्णन का यह संकलन मात्र चिकित्सक को रोग ज्ञान एवं

चिकित्सा कर्म में सफलता निमित्त पथ प्रदर्शक होगा।

इस रोग के निमित्त काय चिकित्सा के विशेषज्ञ

जात्रेय पुनर्वसु के अग्निवेद को उसकी शक्तियों की विवृति करते हुए जो

प्रकाश डाला वह सब अनुसन्धान पूर्ण एवं पूर्ण तथ्यों की कसौटी पर

पूर्ण उत्तरा हुआ था। इसलिये यहाँ पर उस प्रकरण को क्या तथा वर्णन

करना संगत है। और साथ में अन्य मतों का साथ साथ विवेचन आवश्यक-

यथावश्यक रूपेण किया है जिससे कि भिन्न भिन्न आचार्यों के मतों का



—तत्त्वज्ञानम्—

I अविद्यामयं जगत्कलमयं

II अविद्यामयं जगत्कलमयं

I अविद्यामयं जगत्कलमयं

II अविद्यामयं जगत्कलमयं

( ७५ पृष्ठ ३३ पंक्ति २२ अक्षर २० )

—तत्त्वज्ञानम्—

I अविद्यामयं जगत्कलमयं

II अविद्यामयं जगत्कलमयं

—तत्त्वज्ञानम्—

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं

अविद्यामयं जगत्कलमयं



भी जान हो सके । यद्यपि यह रोग काय चिकित्सा के भीतर ही है परन्तु फिर भी कदाचित् इस रोग की भी कोई २ ऐसी अवस्थाएं हैं जिसमें शल्य शास्त्र विशारद वाचार्थों द्वारा प्रदर्शित क्रियाएं भी करनी पड़ती हैं।

### विसर्प पर अग्निवेश के प्रश्न

कैलाश पर्वत पर विराजमान, महर्षिगणों से युक्त सब प्राणियों के हित में लो हर वात्रेय पुनर्वसु को अग्निवेश ने विसर्प रोग के विषय में विशेष प्रश्न आदि किये। यथास्तम् चरके:-

मगवन् दाहणं रोगमाशीविषविषायेमम्।

विसर्पन्तं शरीरेषु देहिनामुपलभ्ये॥

सहस्रेव नरास्तेन परीताः शीघ्रकारिणा।

विनश्यन्त्यनुपक्रान्ताः तत्र नः संशयो महान्॥

स नाम्ना केन विज्ञेयः संहिताः केन हेतुना।

कतिभेदः कियद्दातुः किंनिदानः किमाश्रयः॥

सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो ज्ञेयो यश्चानुपक्रमः॥

कथं कर्तव्यं : किं च मगवन्। तस्य भेषजम्॥

( च० वि० अ० २१ श्लोक ५-८ )

अथर्व वेदादि है मगवन्। प्राणियों के शरीरों में सर्प विष के समान एक प्रकार के भयंकर रोग को विसर्पण करते हुए कदाचित् शरीर के एक भाग से दूसरे भाग पर फैलते हुए को में देखता हूं। उस शीघ्र मृत्यु के कारणभूत रोग से आक्रान्त मनुष्यों की यदि चिकित्सा न हो सके तो वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होकर नष्ट हो जायें। इस







विषय में हमें महार लें-ह है।

- १- वह रोग किस नाम से जाना जाता है।
- २- उसका वह नाम किस कारण से है।
- ३- उसमें पैद फिल्ले- कितने हैं।
- ४- उस रोग के दोष दुष्प्र कितने हैं।
- ५- उस रोग का निदान क्या है ?
- ६- उस रोग का जाग्रत क्या है ?
- ७- उस रोग की कुछ साध्यता कुच्छसाध्यता एवं वसाध्यता कैसे किन लक्षणों से जानी जाये।
- ८- उत्तराश की चिकित्सा क्या है।

'O' Worshipful one : I see in, the bodies of human ~~beings~~ beings a fell disease which spreads with the virulence of snake-venom.

Those men who are attacked by this fulminating disease succumb to it speedily, unless treated promptly. Now, concerning this disease, we are in great need of enlightenment.

By what name should it be known? How does it derive its name? What are its varieties? How many and what are the body elements that it affects? What is its etiology? What is its seat? How are we to know which variety of it is easily curable; which again is formidable and which incurable? What is their differential diagnosis? And, finally, O Worshipful one: what is the method of its treatment?



विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः

विषयः अथवा विषयः



1. By what name.

+ 2. How does it derive its name ?

3. How many and what are the body elements that & effects?

4. What are its varieties ?

5. What is its cliology ?

6. What is its seat ?

7. How are to know which variety of its is early curable, which again is formita

यहां पर इस रोग के लिये आशी विष विषाणोपम  
यह विशेषण है यह इस रोग की प्रकृति को सिद्ध करता है। अतः  
इस रोग की चिकित्सा के लिये विषाण्विष नहीं करता चाहे नही तो  
विष सर्व शरीर में प्रसार करके अरिष्ट लक्षण उत्पन्न कर देता है।

तदग्निवेदस्य वचः पुत्रा त्रेयः पुनर्वसुः।

यथावदक्षितं सर्वं प्रोवाच मुनिश्रेष्ठः ॥

( अ० वि० अ० २१ श्लोक ६ )

अर्थात् इस प्रकार अग्निवेद के प्रश्न को सुन कर मुनिश्रेष्ठ

आत्रेय पुनर्वसु जी ने अग्रपूर्वक सब प्रश्नों का उत्तर दिया।

Hearing these words of Agniweśa, Atreya  
Pusiarvasu, The foremost among sages declared  
everything fully and precisely concerning the subject.



1. By what name.
2. How does it derive its name?
3. How many and what are the body elements of it & of what?
4. What are its varieties?
5. What is its etymology?
6. What is its seat?
7. How are to know which variety of it is really curable, which again is fatal?

तत्र ननु किं तस्य भेदः किं तस्य लक्षणम्

तस्य भेदः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य लक्षणम् त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य भेदः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य लक्षणम् त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य भेदः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

( त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः )

तस्य लक्षणम् त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य भेदः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य लक्षणम् त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः

तस्य भेदः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः त्रयः



Hearing these words of Agniवेश, Atsaya Puriarvasu, the foremost among sages, declared everything fully and precisely concerning the subject.

107

### विसर्प की निरुक्ति

विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।

परिसर्पो यथा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात्॥

( च० वि० अ० २१ श्लोक १० )

अर्थात् इस भयंकर रोग को विसर्प इसलिये कहते हैं कि यह नाना प्रकार से शरीर में अपना सर्पण ( प्रसार ) करता है और चारों तरफ परिसर्पण करने से इसे परिसर्प भी कहा गया है।

~~महन्-मर-ने-विविध-सर्पति-ने-ह~~ इस रोग के इन दोनों नामों से इस रोग की दो गतियों का ज्ञान होता है एक गति इस रोग की यह है, कि यह रोग दो ओर फैलता है। दूसरी गति इस रोग की यह है कि यह रोग कभी कभी चारों ओर फैलता है।

यहां पर 'विविधं सर्पति' इस श्लोक मत विविध शब्द विस्तृतार्थवाची है इससे इस रोग की ऊपर नीचे एवं तीर्थों गति आदि के साथ साथ यह भी ग्रहण होता है, कि यह रोग शोथस्फोट आदि के साथ ही फैलता है।

विसर्प के भेद:-

स च सप्तविधो दोषेर्विज्ञेयः सप्तधातुकः।

पृथक्त्रयस्त्रिभिस्त्वेकां विसर्पो द्वादशास्त्रयः॥

वातिकः पित्तिस्त्वेव कफजः सान्निपातिकः।

चत्वार स्ते विसर्पा वक्ष्यन्ते द्वादशास्त्रयः॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याभ्याः कफवातजः।



संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

( १०१ नं. १५ १८ २० २२ )

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित

संस्कृत-विद्यापीठ-मुद्रित



यस्तु कर्दमको धौरः स पिच्छकसम्भवः॥

( च० चि० भा० ७२१ श्लोक ११-१३ )

इस का माय पूर्व प्रकट किया गया है। सुश्रुत में कातज विसर्प भी माना गया है जिसे चरक ने स्वतन्त्र नहीं माना और यह कातज विसर्प भाज संहिता में भी मिलता है, यथावतम्:-

शस्त्रप्रहारेः स्तेः स्तेः तु व्याधन्तान्तेः रपि। दाते-

वा प्यथवा मर ने बहुदोषस्य देहिनिः॥ रक्तं

पित्तं बहुलं व्रणमाशुप्रपद्यते। पुरुतस्तो समेते

तु व्रणशोथं दुष्कारुणम्॥ आचितं तनुविस्फोटैः

कुष्णैः पीतकसन्निभैः। पित्तवीर्यवत्किं तस्य

शोथं विनिर्दिशेत्॥

चरक मतानुसार इसे हम पेटिक विसर्प के ~~अन्तर्गत~~ अन्तर्गत मान सकते हैं क्योंकि यहाँ पर भी 'रक्तं पित्तश्च बहुलं व्रणमाशु प्रपद्यते' इससे रक्त और पित्त दोष की तो दुष्टि की तरफ निर्देश किया है। पित्त की दुष्टि से रक्त की दुष्टि भी अनिवार्य है। इससे अतिरिक्त सधःकात व्रण शस्त्रप्रहार, शस्त्र कर्म या 'प्रसव कालीन अस्त्रचिकित्सा, नाभिज्वेदन कर्म' या चेक का टीका तथा अन्य रोगों की शल्य चिकित्सा आदि कारणों से ही जाया करता है। यदि उस समय सावधानी न की जाये तो विसर्प जीवाणु शरीर में प्रवेश करता है। इस रोग में पाक वादि की उत्पत्ति करा देता है। यहाँ सधःकात व्रण में भी पित्त दोष को ही पूर्व में विकृति होगी और उसकी विकृति से रक्त का दुषित होना स्वाभाविक है क्योंकि लिखा भी है:-

पित्तं विदग्धं विदहत्याशु शोथितम्



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः

( ११-१२ अंश १५०० अंश ०० )

आपने ही कुछ ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही

आपने ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही एक ही



यदि पित्त दोष शरीर में उचित कर्म करता है तो रक्त  
आदि जोकि उसके प्रधान भाग हैं अवश्य शरीर में उचित कार्य करेंगे  
अन्यथा नहीं ।

सुश्रुत आचार्य ने भी ज्ञात जन्य विसर्प के लक्षण में स्पष्टतया पित्त और  
रक्त दोष का ही निर्देश किया है।

सर्वः ज्ञातव्रणमुपेत्य नरस्य पित्तं

रक्तञ्च दोषवहुतस्य करोति शोफम् ।

श्यावं सलोहितमतिज्वरदाहपाकं

स्फोटैः कुलत्थसदृशैरक्षितैश्च कीर्णम् ॥

( च० चि० अ० १० श्लोक ७ )

अर्थात् ज्ञात जन्य विसर्प में बैठे हुए दोषों से युक्त मनुष्य के  
पित्त और रक्त सर्वः ज्ञात से उत्पन्न व्रण में जाकर शोथ उत्पन्न कर  
देता है वह शोथ कुछ श्याव वर्ण, रक्तवर्ण, तीव्र ज्वर दाह और पाक  
में युक्त होता है। उसमें स्फोट कुलथी के समान काले वर्ण के होते हैं।

आग्नेय मतानुसार विसर्प के ७ भेदों का समन्वयात्मक वर्णन

१- रुक्षोष्णैः कारणैर्वायुः पुर्येवा समाक्षितः ।

प्रदुष्टो दुष्पच्य दुष्पात्र विसर्पति यथावत्तम् ॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक २८ )

वातिक विसर्प रुखा उष्ण कारणों से जयवा  
उदर के मार लेने के कारण रुद्ध होकर संचित हुआ वा  
होकर दुष्पात्रों (रक्तादि) को दुषित करता हुआ  
विसर्पण करता है। अर्थात् विसर्प का उत्पन्न







बल अधिक होगा तो शीघ्र फैलेगा और यदि अपेक्षाकृत न्यून होगा तो अपेक्षाया शनैः शनैः फैलेगा।

यह वायु के कोष्क कारणों से यह भी बता दिया कि पित्त और कफ द्वारा मार्ग के सद् होने पर भी वायु का कोष हो जाता है और कुपित होकर यह वायु उनकी अपेक्षा अधिक बलवान् हो जाता है। वायु स्वतन्त्रतया वा परतन्त्रतया कुपित होकर विसर्प की उत्पत्ति में कारण होता है।

आचार्य ने इसी से विसर्प की त्रिदोषकता भी बता दी है। रुक्षात्ता वायु को उत्पन्न करती है। उष्ण से पित्त का और पूर्ण (तृप्ति) से कफ का संसर्ग जाता है।

विसर्प निरुक्ति:-  
 ~~~~~

विसर्प निरुक्ति में 'विवर्धं सर्पति यतो विसर्पस्तेन' चरक के इस वचन के अनुसार यह त्वचा के अतिरिक्त यह श्लेष्मा कला, हृदयावरण, फुफ्फुसावरण, मस्तिष्कावरण, मस्तिष्क जैसे शरीर के बान्तरिक अंगों तथा रक्त में प्रविष्ट हो जाता है। इन अंगों में होने वाला विसर्प असाध्य होता है। विसर्प का दूसरा नाम 'परिसर्प' भी है।

विसर्प (परिसर्प) की मुख्य विशेषताएं हैं।  
 ~~~~~

- १- त्वचा अथवा श्लेष्मकला से शोथ का प्रारम्भ।
- २- सर्गिसारी ( सारे अंग में फैले वाला )
- ३- उत्पत्तिस्थान में स्थायी रूप से रहना जिसे सुश्रुत ने अस्थिर कहा है।
- ४- अनुन्नतशोफ:- विद्रधि, ग्रन्थि और वर्तुद के सदृश उभार



ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ

ਸਾਡੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਵੋ



इसमें नहीं होता है।

जिसका वर्णन त्वद्मांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः

इत्यादि श्लोक में सुकुत जी ने स्पष्ट कर रखा है।

तस्य रूपाणि--

प्रमदवधुपिपासा निस्तोदशूलागमदोद्वेष्टनकम्पज्वरतक्रम-

कासा स्थिसन्धिमैदविश्लेषणवमनारोका विपाकाश्चक्षुषो-

राकुलत्वमन्नागमनं पीलिकासंचार इव चांगेषु, यस्मिं-

श्चावकाशे विसर्पौ नुविसर्पति सौ वकाशः श्यावारुणा-

वमासः स्वयमुमान् निस्तोदमेदशूलायाससंकोचहर्षस्फुरणे-

रतिमात्रं प्रपीड्यते, अनुपक्रान्तश्चोपचीयते शीघ्र-

मेदः स्फोटकेस्तनुभिररुणामः श्यावेवां तनुविष-

मदारुणा ल्यास्नावेर्विबद्धवातमुत्रपुरीक्षश्च भवति,

निदानोक्तानि चास्य नोपशेरते विपरीतानि चोप-

शेरत इति वातविसर्पः

( च० चि० अ० २१ श्लोक २६ )

अर्थात् वातिक विसर्प में दबधु ( उपताप), प्यास हुई

चुमने--मु- चुमने की सी पीड़ा प्रतीत होना, जुल एवं जंघों में पीड़ा

होती है, उद्वेष्टन, शरीर में कम्पकम्पी होती रहती है। ज्वर, कास

-----वमन श्वास, रोगी की हड्डियों तथा जोड़ों में मेदनवात

पीड़ा होती है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसकी सन्धियां

खुल रही हैं। कृचि एवं वमन आने लगती है, नेत्रों में से आंसू आते रहते

हैं तथा नेत्र कुछ बल्लि से प्रतीत होते हैं। रोगी के सारे शरीर में चिउडियां

चलती प्रतीत होती हैं। जिस स्थान पर यह वातिक विसर्प होता है वह







स्थान काता और अन्न अण वर्ण का हो जाता है और उस स्थान पर शोथ तथा तोड़ होती है। मूल मेदनवत पीड़ा तथा रोगी को थकावट का सा प्रतीत होना। वह स्थान छिड़ जाता है और रौमांजित हो जाता है। वह स्थान फुरकने लगता है जिससे रोगी को और भी अधिक पीड़ा का अनुभव होने लगता है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाए तो वह धीरे धीरे बढ़ कर जाले रंग के स्थान पर फोड़े से होकर फूट जाते हैं। इनमें से थोड़ा थोड़ा श्राव निकलता रहता है रोगी के मल मुत्रादि का अवरोध हो जाता है। निदान में कहे गये जो कारण इस रोग में कहे गये हैं वे इस की उत्पत्ति का कारण बनते हैं तथा दुःख दार होते हैं। इन निर- के विपरीत जो द्रव्य हैं वे इसका अक्षय हैं। यह बात विसर्प के लक्षण हैं।

वातात्मको सितमृदुः परुषो नमर्द-

सम्भेदतोदफलाज्वरलिङ्गयुक्तः।

गण्डेर्यदा तु विषमैरतिदुषितत्वा-

युक्तः स ख कथितः सलु वर्जनीयः॥

( सु० नि० अ० १० श्लोक ४ )

सुश्रुताचार्य मतानुसार, वातिक विसर्प का लिमा भृशता एवं सुरदापन लिये होता है। इसमें अंगों में पीड़ा एवं वात ज्वर के लक्षण पाए जाते हैं, परन्तु जब लसीका रक्त तथा मांस आदि अधिक दुषित हो जाते हैं, तब यह विसर्प विषम प्रकार के अर्थात् उच्चै नीचै विस्फोटों से युक्त हो जाता है। उस समय इसे चिकित्सा दृष्टि से वर्जित करना पड़ता है।

सुश्रुत में गण्ड शब्द का जो प्रयोग किया गया है वह इस चीज



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ११ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १२ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १३ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १४ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १५ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १६ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १७ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १८ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १९ ॥  
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २० ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ )

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



को सिद्ध करता है कि इस विसर्प में अग्नि से दग्ध स्थान पर जैसे स्फोट होते हैं वैसे ही इसमें भी होते हैं। जिसका वर्णन पुरातन ग्रन्थों में निम्न रूप से मिलता है।

अग्नि दग्ध एव स्फोटैः शीघ्र गत्वाद् द्रुतं स च ।

ममानुसारी विसर्पः स्याद्वातोदतिवलस्तदा ॥

अष्टांग हृदय के अनुसार वात विसर्प के निम्नलिखित

लक्षण हैं:-

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥

शोकस्फुरणनिस्तोदमेदायामातिहर्षवान् ।

(अ० हृ० अ० १३ श्लोक ४७)

अर्थात् यह वातिक विसर्प में वात ज्वर के समान व्यथा (पीड़ा) होती है अर्थात्, शिरःशूल हृदय शूल, गात्र शूल तथा उदरशूल इत्यादि होते हैं। शोथ, अंग में स्फुरण एवं सुई चुमाने के समान वेदना, चीरन, चीन्ने के समान वेदना होती है। इसके साथ रोमांच लक्षण भी पाया जाता है।

भाव प्रकाशकार भी इसी लक्षण से सहमत हैं तद्व्यथा:-

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ।

शोकस्फुरणनिस्तोदमेदायामातिहर्षवान् ॥

(भा० प्र० नि० ५६ श्लोक ५)

भाव प्रकाश मतानुसार वातजन्य विसर्प में वात ज्वर के ही समान व्यथा हो जाती है अर्थात् शिरःशूल, हृच्छूल, गात्र में शूल का होना एवं उदर में शूल इत्यादि लक्षण होते हैं। इसके अतिरिक्त शोथ, अंग स्फुरण, सुई चुमाने का सा प्रतीत होना, चीर के समान व्यथा होती



आज का दिन है शुभ है किसी काम की है बहुत बड़ी है  
 आज का दिन है शुभ है किसी काम की है बहुत बड़ी है  
 इस दिन का है बहुत बड़ा है किसी काम की है

I. १० मंथन प्रमाण प्रति : प्रमाण का प्रमाण प्रमाण  
 II. प्रमाण प्रमाण प्रमाण : प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण

प्रमाण प्रमाण

II. प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 (१० मंथन प्रमाण प्रमाण प्रमाण)

प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण

प्रमाण प्रमाण

I. प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 II. प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 (१० मंथन प्रमाण प्रमाण प्रमाण)

प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण



होती है तथा लीचने या चुसने के समान वेदना होती है एवं रोमांच हो जाता है।

## २- पित्तज विसर्प की हेतुकी एवं विकृति:-

पित्तमुष्णापचारेण विदाताम्लादिमिश्रितम्।

दुष्प्यात्तु सद्दुष्य घमनीः पुरयद्द्वे विसर्पति॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ३० )

अर्थात् उष्ण श्रिया से विदाही अम्ल एवं उष्ण वीर्य आदि द्रव्यों से संचित हुआ पित्त रक्त लसीका एवं मांसादि को दुषित करके घमनियों को पूर्ण करता हुआ अर्थात् घमनियों को फुलाता हुआ विसर्प रोग की उत्पत्ति करता है।

घमनियों का फुलना प्रायः सब प्रकार के विसर्प में ही होता है। और यह फेलाव भिन्न भिन्न दोष की प्रधानतावश होता है।

तस्य रूपाणि

~~तस्य रूपाणि--तनितकः--तनितकज्वरः--मर्मेरु-~~

~~निद्रा-तन्त्र-रौनक-ममुस्तस्वल्पमस्वप्नमेव-~~

तस्य रूपाणि-- ज्वरस्तृष्णा मुर्च्छा मोहश्चर्दिर-

क्वको गंधेदः स्वेदो तिमात्रमन्तदहिः प्रलापः

तश्च चतुर्धाराकुलत्वमस्वप्नमरतिप्रमः शीत-

रतयो तिमात्रं हरितहारिद्रमुत्रवर्चस्त्वं

शनं यस्मिंश्चावकाशे विसर्पो नुसर्वति

प्रहरितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानां वर्णा-

त्मं पुष्यति, सौत्सेपेश्वातिमात्रं दाहसमं वन-



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ १ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( ०१ अक्षर ११ अक्षर ११ )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



परीतः स्फोटकेन पनीयते तुल्यवर्णाग्नावैरचिरपा-  
कश्च भवति, निदानोक्तान्यस्य नोपशेरते विपरीतानि  
चोपशेरत इति विषयविसर्पः॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक ३१)

अर्थात् पित्तज विसर्प में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं।

- १- ज्वर १०६ वा १०७ भी पहुँच सकता है।
- २- तृष्णा
- ३- मुर्छा
- ४- मोह अर्थात् प्राणी मोह में इन्द्रियों द्वारा अपने विषयों का ज्ञान नहीं कर सकता।
- ५- वमन
- ६- ज्वरि
- ७- अंग भेदः- अंगों में पीड़ा का होना।
- ८- अन्तर्दाहः- इस अवस्था में रोगी को पसीना आता है। तथा पित्त की अधिकता के कारण गर्मी का अधिक रोगी अनुभव करता है।
- ९- प्रलाप।
- १०- तिरःशून्य।
- ११- नेत्रों की व्याकुलता इस (अवस्था में नेत्रों का रंग कुछ मलिन सा रहता है) निद्राल्पता भी रहती है।
- १२- व्रणः- इस अवस्था में रोगी को चक्कर से जाते हैं। तथा उसे किसी कार्य करने की इच्छा नहीं रहती।
- १३- शीतेच्छाः- इस अवस्था में रोगी शीतल वायु एवं शीतल जल



संस्कृत-विश्वकोश-प्रकाशक-संस्थान-वैदिक-विभाग : दिल्ली

संस्कृत-विश्वकोश-प्रकाशक-संस्थान-वैदिक-विभाग : दिल्ली

11: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर

(55 नंबर 25 00 00 00)

12: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-1

13: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-2

-2

14: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-3

-3

15: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-4

-4

16: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-5

-5

17: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-6

18: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-7

-7

19: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-8

-8

20: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-9

-9

21: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-10

-10

22: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-11

23: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-12

24: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-13

-13

25: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-14

-14

26: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-15

-15

27: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-16

28: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-17

-17

29: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-18

30: दिल्ली-की-नई-सड़क-पर-19

-19



~~अन्य-रस~~ पान की अधिक अभिलाषा रखता है।

१४- हरित रस हरिद्र मुखपरीक्षता:- ( इस अवस्था में रोगी के मुख परीक्षा का वर्ण हरा रस पीत रस हल्दी के समान प्रतीत होता है )

१५- हरित रस हरिद्र रसों का दर्शन:- इस अवस्था में रोगी प्रत्येक वस्तुओं को प्रायः हरित वर्ण रस हरिद्रा के वर्ण के समान पीत ही देखता है। इत्यादि लक्षण विशेष रूपेण देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर यह रोग होता है। वह स्थान ताम्र के समान रक्त, हरा, हरिद्रा के समान पीत नीला, काला, या अधिक लाल हो जाता है।

उस स्थान पर ऊँचे उठे हुए रस उमार वाले स्फोट होते हैं, जिनमें मैदन वत् पीड़ा रस दाह होता है। जिस वर्ण के वे स्फोट होते हैं उसी वर्ण का प्रायः प्रायः उनसे प्रापित होता है। ये स्फोट (व्रण) शीघ्र पक जाते हैं।

जिन जिन कारणों से यह रोग होता है। उन उन कारणों से रोगी को हानि पहुँचती है और उनसे विपरीत कारण रोगी के सुधार के लिये हितकर रहते हैं। इसलिये निदान में कहे हुए (लवणाभ्यन्त) आदि कारणों का परित्याग अवश्य करना चाहिये नहीं तो रोगी की चिकित्सा में वेध सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता।

सुश्रुत मतानुसार लक्षण:-

पित्तात्मको द्रुतगतिर्ज्वरदाहपाक-

स्फोटसौम्यः सत्वप्रकाशः।



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



दोषप्रवृद्धिहतमांससिरौ यदा स्यात्

स्रोतोऽवर्धमनिमो न सदा स सिध्येत्॥

( च०-नि० सु० नि० अ० १० श्लोक ५ )

अर्थात् विसर्प शीघ्र फैलने वाला होता है। इसमें ज्वर दाह पाक तथा अनेक प्रकार के फोड़े फुन्सियाँ निकल आती हैं और यह विसर्प रक्त के समान लाल वर्ण का होता है। जिस समय प्रवृद्धि दोष अधिक बढ़ कर मांस सिरा आदि में पहुँच कर उन्हें नष्ट कर देता है। तब यह विसर्प कृष्ण वर्ण कीचड़ के समान काला और कीचड़ की भाँति क्लृप्त हो जाता है। यह अवस्था उसकी असाध्यता की है।

अष्टांग हृदयकार के अनुसार लक्षणः-

पित्ताद् द्रुति गति पित्तज्वर तिद्धोऽतिलोहितः।

अर्थात् पित्तज विसर्प शीघ्र प्रसरण शील होता है तथा यह पित्त ज्वर के सब लक्षणों से युक्त होते हुए अत्यन्त रक्त वर्ण का होता है।

भावप्रकाशकार अष्टांग हृदय के अनुसार, पित्ताद् द्रुतगति--  
इत्यादि लक्षण से सहमत हैं।

श्लेष्मिक विसर्प की हेतुकी एवं विकृति

स्वाद्वस्तत्तणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः।

कफः संचययद् दुष्यं कृत्स्नमंगे विसर्पति॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ३२ )

अर्थात् इस विसर्प में मयुर वस्त, तणस्निग्ध गुल अन्न सेवन और दिन में सोने से संचित हुआ कफ रक्त लसीका त्वचा और मांस



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( १० वीं अंश १० वीं अंश १० वीं अंश )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( १० वीं अंश १० वीं अंश १० वीं अंश )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



को दुषित करके सब जगों में फैल जाता है। यह विसर्प अन्य विसर्पों की अपेक्षा मन्द गति से ही सारे शरीर में फैलता है। इसी लिए कई स्थानों पर कृत्स्न के स्थान पर कृच्छ्र पाठ भी पढ़ा गया है। जो कि युक्ति युक्त ही है।

तस्य रूपाणि

शीतकः शीतकज्वरो गांखं

निद्रा तन्त्रा रोचको मधुरास्यत्वमास्योपलेपो निष्ठी-

विका हृदि रालस्यं स्तमित्कमग्निनाशो दोर्बल्यं,

यस्मिंश्चावकाशे विसर्पो नुसर्पति सो कालः स्वय-

धुमान्पाण्डुरातिरक्तः सौहसुप्तिस्तम्भगोरवैरन्विता-

ल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैश्चिरकारिमिर्वहलत्वगुपलेपैः

स्फोटैः श्वेतवाण्डुमिरनुबध्यते, प्रभिन्नस्तु श्वेतं

पिच्छिलं तन्तुमद्धनमनुबद्धं स्निग्धमाग्रावं प्रव-

त्युर्ध्वं च गुरुमिः शिथरंजातावृत्तैः स्निग्धैर्वहलत्व-

गुपलेपैर्ग्रन्थैरनुबध्यते नुषंगी च भवति, श्वेतनख-

नयनवदनत्वङ्मयुक्त्वर्चस्त्वं, निदानोक्तानि चास्य

नोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति श्लेष्मविसर्पः॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ३३ )

अर्थात्:-

१-

इस विसर्प में शीतक अर्थात् देह में सर्दी सी लगना।

२-

शीतज्वर का होना:- इस ज्वर में ठण्डी लग कर ज्वर होता है।

३-

देह की गुरुता।







४- निन्त्रा, तन्त्रा।

५- ऋचि।

६- मधुरास्यता:- मुख का स्वाद मीठा सा

७- वास्योपलेप:- मुख का वलगम से लिप्ता।

८- निष्ठिका:- बार बार धुक्ना।

९- हर्दी

१०- आलस्य

११- स्तिमितता:- शरीर का गीला सा रहना।

१२- अग्निनाश:- जाठराग्नि की शक्ति का नाश के कारण  
अग्नि का नाश हो जाना।

१३- दुर्बलता इत्यादि लक्षण पार जाते हैं।

जिस स्थान पर इसका प्रसार होता है वह स्थान शोध  
युक्त पाण्डु वर्ण का रहता है। उसमें अत्यधिक लाली नहीं होती वह  
स्थान स्निग्धता, चिकनाहटपन, स्पर्श ज्ञान रहित स्तब्धता एवं भारीपन  
से युक्त होता है। उस स्थान में वेदना कम होती है। फिर वह स्थान भी  
स्फोटों से युक्त हो जाता है। वे फोड़े कठिनता से पकते हैं। और चिर-  
काल तक स्थाई रहते हैं। इनके ऊपर की त्वचा मोटी होती है और  
यह गाढ़े से ग्राव से लिप्त रहते हैं। उनका वर्ण पाण्डु वर्ण का श्वेत  
होता है। जब इस विसर्प के स्फोट फूटते हैं तब श्वेत चिपचिपा तन्तुमय  
गाढ़ा बन्धन हुआ स्निग्ध ग्राव होता है। इसके बाद बड़े बड़े स्थिर जाल  
से व्याप्त त्वचा तथा छेने मल के लेप से युक्त व्रणों का अनुबन्ध हो जाता  
है। जोकि चिरकाल स्थाई होता है। या हम इसे इस प्रकार से कह सकते  
हैं कि फोड़ों के ऊपर के भाग में गुरु कठिन जाल व्याप्त बिकने मोटी





१. विद्या, विद्या - ४

२. विद्या - ४

३. विद्या विद्या विद्या - ४

४. विद्या विद्या विद्या - ४

५. विद्या विद्या विद्या - ४



६. विद्या - ४

७. विद्या - ४

८. विद्या विद्या विद्या - ४

९. विद्या विद्या विद्या विद्या - ४

१०. विद्या विद्या विद्या

११. विद्या विद्या विद्या विद्या - ४

१२. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१३. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१४. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१५. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१६. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१७. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१८. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

१९. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

२०. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

२१. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

२२. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या

२३. विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या विद्या



त्वचा वाले तथा मल से लिप्त ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं। यह विसर्प अनुसंगी  
अर्थात् चिरकाल स्थायी होता है। निदान में कहे हुए कारणों का रोगी  
को सेवन नहीं करना चाहिए उसे विपरीत कारणों से रोगी को लाभ  
रहता है।

सुश्रुतमतानुसार श्लेष्मिक विसर्प के लक्षण

श्लेष्मात्मकः सरति मन्दमशीघ्रपाकः

स्निग्धः सितश्वयथुरत्परगुग्गुकण्डुः।

सर्वात्मकस्त्रिविधवर्णैरुजो वगादः

फक्नो न सिध्यति च मांससिराप्रणाशात्॥

( सु० नि० अ० १० श्लोक ६ )

अर्थात् यह विसर्प धीरे धीरे फैलता है जल्दी पकता नहीं  
इसमें चिकनाहट श्वेत शोध युक्त अल्प पीड़ा एवं ~~तीव्र~~ तीव्र कण्डू आदि  
लक्षण होते हैं।

सर्वात्मक या सन्निपातिक विसर्प तीनों दोषों के  
अनुरूप कृष्ण पीत सित वर्ण वाला एवं तीनों दोषों के अनुसार वेदना  
वाला तीव्र दाह कण्डू आदि वेदना से युक्त एवं गम्भीर घातुओं में गय  
हुआ होता है। जब यह फैल जाता है तब मांस और सिराओं का नाश  
कर देता है और ठीक नहीं होता।

अष्टांग हृदय के अनुसार लक्षण

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक्।

( अ० इ० नि० १३ श्लोक ४६ )







अर्थात् यह विसर्प कफ के कारण कण्डू युक्त स्निग्ध स्वं  
कफ स्वर के लक्षणों के समान वेदना देने वाला होता है।

भाव प्रकाश भी इस मत का अनुयायी है।

यथोक्तम्:- कफात्कण्डू ।

( भावप्रकाश चि० अ० ३६ श्लोक ७ )

वात पित्त विसर्प की हेतुकी एवं विर्जति:-

वातपित्तं प्रकुपितमतिमात्रं स्वहेतुमिः।

परस्परं लब्धवत्तं दहदनात्रं विसर्पति॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ३४ )

अर्थात् अपने कारणों से अत्याधिक प्रकुपित हुए वात पित्त  
दोनों परस्पर वृद्धि को प्राप्त करके शरीर में दाह करते हैं। जिससे  
वात पित्त विसर्प की उत्पत्ति होती है।

यह वात पित्त विसर्प आग्नेय विसर्प के नाम से पुकारा  
गया है और कफ वातज ग्रन्थिक विसर्प के नाम से और पित्त कफज कदर्म  
के नाम से भी पुकारा गया है, यथोक्तम्:-

आग्नेयो वातपित्तम्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः

यस्तु कदर्मको धोरः पित्तक सप्तकः।

यद्यपि यह चरकोक्त विसर्पों का वर्णन सुक्त में नहीं  
मिलता तो भी उनका अन्तर्भाव सुक्त के मतानुसार सन्निपातकि विसर्पों  
में माना जा सकता है।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ )

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ )

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥



तस्य कृपाणि

तदुपतापादातुरः सर्वशरीरमंगारेरिवाकीर्यमाणं  
 मन्यते, कृपीतीसारमुच्छादाह मोहज्वरतमकारोक्ता-  
 स्थितान्विभेदतृष्णा विपाकागंभेदादिभिश्चाभिमुख्यते,  
 यं यं चाक्काशं विसर्पौ नुसर्पति सो वकाशः  
 तान्तांगारप्रकाशो तिरक्तो वा भवत्यग्निदग्धप्रकारेण  
 स्फोटैरुपवीर्यते, स शीघ्रगत्वादाश्चैव ममानुसारी  
 भवति, मर्मणि चोपतप्ते पवनो तिललो भिन्नशृंगा-  
 न्यतिमात्रं प्रमोहयति सज्ञां हिक्कास्वासां जनयति  
 नाशयति निद्रां, स च नष्टनिद्रः प्रमुठसज्ञो व्यथित-  
 चेता न ककचन सुसमुपलभते, ज्वरतिपरीतः स्थाना-  
 वासनाव शय्यां शान्तुमिच्छति क्लिष्टमुविष्टश्चासु  
 निद्रां लभते दुःखप्रबोधश्च भवति, तमेव विषमग्नि-  
 विसर्पपरीतमधिकित्सयं विधातुम्।

(च० चि० अ० २१ श्लोक ३५)

अर्थात् इस विसर्प के उपताप से रोगी अपने सारे शरीर पर  
 अंगारे रखने से जो पीड़ा होती है वैसे अनुभव करता है और इस विसर्प में

- |    |           |
|----|-----------|
| १- | वमन       |
| २- | वृत्तिसार |
| ३- | मुच्छा    |
| ४- | दाह       |
| ५- | मोह       |







- ६- ज्वर  
 ७- तमक  
 ८- कृचि  
 ९- अस्थि सन्धि पीड़ा  
 १०- तृष्णा  
 ११- अपचन  
 १२- अंग मेद आदि लक्षणों से रोगी पीड़ित होता है।

जिस जिस त्र स्थान पर वह विसर्प फैलता है। वह स्थान बुझे हुए जंगारे के समान कृष्ण व अत्यन्त रक्त होता है। आग से जलने पर जैसे स्फोट उठ जाते हैं उसी प्रकार के फोड़े उस देश पर उत्पन्न हो जाते हैं। शीघ्र गति करने के कारण वह शीघ्र ही मर्म में पहुँच जाता है। मर्म को विसर्प से पीड़ित होने पर अत्यन्त बलवान् वायु अत्याधिक अंग मेद को उत्पन्न करता है। संज्ञा को नष्ट कर देता है। श्वास और ह्रिकका को उत्पन्न करता है। निद्रा में कमी लाता है तथा संज्ञा नाश मोह तथा विष के दुःखित होने से उसे कहीं भी सुप्त अनुभव नहीं होता। किसी भी कार्य में मन के न लगने के कारण दुखी हुआ वह रोगी कहीं बैठना तथा खड़ा पसन्द नहीं करता। वह चाहता है कि मैं शय्या पर बैठ जाऊँ। इस प्रकार अत्यन्त दुःखित होने के कारण शीघ्र ही ऐसी निद्रा आती है जिससे जाना कठिन हो जाता है। अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार के अग्नि विसर्प से पीड़ित व्यक्त की चिकित्सा असाध्य समझनी चाहिये।

चिकित्सासूत्र अष्टांग हृदयकार ने भी इस विसर्प के विषय में असाध्यता ही प्रकट की है।







इससे सिद्ध है कि यह एक भयंकर वात पित्तज विसर्प है,  
जिसकी चिकित्सा बड़ी सावधानी से करनी चाहिये

भाव प्रकाशकार के मतानुसार लक्षण:-

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमुर्च्छा तीक्ष्णरतुदग्नेः।

अस्थिमैदाग्निसक्नतमकारोक्तैर्मुतः।

करोति सर्वमंगं दीप्तांगाराक्कीर्णवत्। यं यं

देशं विसर्पेण विसर्पति भवेत्स सः॥

शीताङ्गारासितो नीलो रक्तो वा शूलवीकृतः।

अग्निदग्ध इव स्फोटः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं सः

मर्दानुसारी वीसर्पः स्याद्वातो तिबलस्ततः।

व्यथेतां हरत्संज्ञां निद्रां च स्वासमीरयेत्

हिध्मां च स गतो वस्थामीदृशीं लभते न ना।

अथ चिक्कमरित्तिग्रस्तो भुमिशय्या सनादिभु

वेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवाश्च।

दुष्प्रसोषो श्रुते निद्रां को ग्निवीसर्प उच्यते

इस विसर्प में ज्वर, कन, मुर्च्छा, अतिहार, पिपासा,

भ्रम, अस्थिशूल अग्निमान्द्य, आँखों के सामने अंधेरा आ आ जाना तथा

अर्थात् ये सब विकार उत्पन्न हो जाते हैं और सारा शरीर दीप्त आँखों

से व्याप्त होने के समान हो जाता है जिस किस प्रदेश में यह विसर्प फैलता

है वह वह प्रदेश बुझे हुये अंगूरों के समान कृष्णवर्ण नीला अथवा रक्तवर्ण

हो जाता है और अग्निदग्ध के समान फफोलों से व्याप्त हो जाता है।

यह विसर्प शीघ्र गति करने वाला है। यह विसर्प शीघ्र ही उदर तथा हृदय



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

॥ विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम् ॥

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



प्रदेश पर चला जाता है। इस विसर्प में वात की अत्यन्त प्रबलता होती है जिसके कारण यह अंगों में वेदना होता है। सङ्गा को नष्ट करता है और निद्रा स्वास तथा हिक्की को बढ़ाता है इस अवस्था को प्राप्ता मनुष्य कहीं भी सुख नहीं पाता भूमि शय्या तथा आसन इत्यादि पर कहीं भी उसे कल्पित आनन्द नहीं मिलता। किसी प्रकार की चेष्टा करने से उसे बलेश ही होता रहता है। मन तथा शरीर के कष्ट के कारण उसे दुःखबोध निद्रा या मरणरूप निद्रा उत्पन्न होती है ज्यदि रोगी की मृत्यु हो जाती है।

कदम विसर्प (कफ पित्त की हेतुकी एवं विकृति):-

कफ पित्तं प्रकुपितं बलवत् स्वेन हेतुना।

विसर्पत्येकदेशे तु प्रकलेदयति चाधिकम्॥

(च० वि० अ० २१ श्लोक ३६)

कदम विसर्प के लक्षण:-

शीतज्वरः शिरोरुश्च दाहः स्तेनित्मंगावसदनं

निद्रा तन्त्रा प्रमोहो न्दोषः प्रतापो-

ग्निनाशा दौर्बल्यमस्थिपेदो मुर्च्छा पिपासा

श्रोतसां प्रलेपो जाड्यमिन्द्रियाणां आमोषवेतन-

मग्नविज्ञेयो मगदो रतिरात्तुल्यं चोपजायते, प्राय-

शश्चाभासये विसर्पत्येकदेशग्राही च स्वात्, वस्ति-

श्चावकाशे क्लिप्तो विसर्पति सां वकाशो रक्तपीत-

पाण्डुपिच्छावकीर्णो ति मेकामौ मलिनः स्निग्धो

बहुष्मा गुरुः स्तिमितवेदनः श्वयमुमाश्च गम्भीरपाको







निराश्रावः शीघ्रक्लेदः स्विन्नचित्तमपुतिमांसश्च क्रमेणा-

त्परुह संज्ञा स्मृतिहन्ता परामृष्टो वदीयते कर्दम

स्वावपीडितो न्तरं प्रवृत्त्युपकितमपुतिमांसत्यागी

सिरास्नायुसंदर्शी कुशफान्धी च भवति, तं कर्दम-

विसर्पपरीतमचिकित्सयं विधातु ।

( च० चि० अ० २१ श्लोक ३७ )

अर्थात्:---

- १- इस कर्दम विसर्प में शीत सहित ज्वर चढ़ता है।
- २- शिरःशूल।
- ३- दाहः- उष्णता का अनुभव करता है।
- ४- स्तिमितता:- शरीर का गीला सा रहना अनुभव होता है।
- ५- जगज्वसाद-- जगों में कुछ सिथिलता सी आ जाती है।
- ६- निन्द्रा।
- ७- तन्द्रा:- रोगी इस अवस्था में ऊँचता सा रहता है  
अर्थात् अर्थ निद्रावस्था।
- ८- प्रमोह:- इस अवस्था में मन (ज्ञानेन्द्रिय) अपने विषय  
को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है।
- ९- वन्न द्वेष:- इस अवस्था में रोगी को भोजन से अप्रिय  
हो जाती है।
- १०- प्रताप
- ११- दुर्बलता
- १२- अस्थियों में भेदनवत् पीड़ा:- इस अवस्था में रोगी की  
अस्थियों में पीड़ा इस प्रकार होती है कि प्रकार कोई







सहं चुभो रहा हो।

१३- मुखी

१४- प्यास

१५- कफ की प्रधानता के कारण <sup>प्रोक्त</sup> स्नान कफ से विलग रहते हैं

१६- इन्द्रियों की जड़ता।

१७- आम मल का स्थान।

१८- अंग विक्षेप:- इस अवस्था में रोगी अपने हाथ पैर बादि अंगों को ऊपर उपर फेंकता है।

१९- अंग मर्द:- इस अवस्था में रोगी के अंगों में पीड़ा होती है।

२०- वरति:- किसी भी कार्य करने की इच्छा नहीं रहती।

२१- उत्सुकता:- बादि लक्षण रोगी में देखे गये हैं।

इह विसर्प शरीर के किसी भी एक स्थान में होता है,

बाँर प्रायः करके आमालशय में होता है। सारे शरीर पर नहीं होता। जिस

स्थान पर वह विसर्प होता है उस स्थान पर लाल पीत वा श्वेत पाण्डु

वर्ण की पीठिकारं वति मात्रा में होती है बाँर यह कृष्णावन वर्ण

की सी होती है। यह पीठिकारं वति उष्ण, भारी मलिन तथा कुछ

चिकनाहट युक्त होती है। इनमें मन्द मन्द पीड़ा होती है। यह विसर्प शीघ्र

युक्त होकर गहराई तक जा पहुँकता है। इसमें प्रायः नहीं निकलता परन्तु

शीघ्र ही विलीन होकर गल जाता है। इस रोग में रोगी का मांस दुष्ट

होकर सड़ जाता है। संज्ञा तथा स्मृति नष्ट होने के पर्याय वैदना भी

कम होती है।

यदि उस दुष्प्रति स्थान को घोंसा जाय तो कीचड़ की

भान्ति फट कर गढ़ा सा पड़ जाता है। रोगी का मांस सड़ जाने के







शिरा स्नायु भी दिखाई देने लगती है और वहां से रने ऐसी दुर्गन्ध आती है जैसी मृत शरीर में से आती है। अतएव इन लक्षणों से युक्त रोगी को असाध्य जान कर चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं रख सकता।

कफ-पित्तज्वरः सप्तमां निद्रातन्द्राशिरोरुजः।

आवसादविकेपप्रलापारोचकप्रमाः॥

मुर्च्छाग्निहानिर्मेढ्रां स्थनां पिपासेन्द्रियाोरवशः।

आमोपवेशनं लेपः प्रोतस्तां स च सर्पति॥

प्रायेणामाशये गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुहः।

फिट्कैरवकीर्णो तिपीतलोहितापाण्डुरः॥

मेककामो सितः स्निग्धो मलिनः शोकवाद् गुरुः॥

गम्भीरपाकः प्राज्योष्णा स्पृष्टः कितन्नां वदीर्यते॥

पक्ववृद्धीर्णमासस्व स्पृष्टस्नायुसिरागणः

स कगन्धिरव वीर्यं कर्दमात्यमुहन्ति तम्॥

(अष्टांग हृदय० नि० अ० २४ श्लोक ६०-६४)

कफ-पित्त से ज्वर जड़ता, निद्रा, तन्द्रा, शिर में वेदना, अंगों में तिथिलता, विकेप, प्रलाप, आरोचक, प्रम, मुर्च्छा, अग्निमांष, अस्थियों में पीडा, प्यास, इन्द्रियों में भारीपन, मत में आम का जाना, प्रोतों का कफ से भरना होता है। यह विसर्प अवयव के एक भाग में फैलता है। कफ-पित्त के आमाशय में रहने से प्रायः करके आमाशय के एक भाग में होता है, इसमें बहुत पीडा नहीं होती, यह अतिशय पीली या लाल अथवा पाण्डु वर्ण पिटिकाओं से भरा होता है। नील, कृष्णवर्ण-काला, चिकना, भेला, शोथयुक्त, भारी, अन्तःनिगूठपाकी,



...  
...  
...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

(...)

...

...

...

...

...

...

...

...



धी की उष्णिमा के समान, घोंने पर फट जाता है, जलेदयुक्त होता है,  
कीचड की भांति भांस गल जाता है, सिरा स्नायु-समुह स्पष्ट दिखते हैं।  
इस में मुँदों की गन्ध जाती है, इस की कदमं विसर्प कहते हैं।

इसी मत से भाव प्रकाशकार एवं माधवाचार्य जी भी  
सहमत हैं।

स्थिरगुरुकज्जिमधुरतीतस्निग्धान्नपानामिष्य-  
न्दिसेविनामप्यायाम्सेविनामप्रतिकर्मशीलानां च  
श्लेष्मा वायुश्च प्रकोपमापयते, तावुमां दुष्टप्रवृद्धा-  
वतिबलां प्रदुष्य दुष्यान् विसर्पाय कल्पेते, तत्र  
वायुः श्लेष्मणा विबद्धमार्गस्तमेव श्लेष्माणमनेकधा  
भिन्दन् क्रमेण ग्रन्थिमात्तां कृच्छ्रपाकसाध्यां कफा-  
शये संजनयति, उत्सन्नरक्तस्य वा प्रदुष्य रक्तं सिरा-  
स्नायुमांसत्वगाश्रितानां ग्रन्थीनां मात्तां कुरुते तीव्र-  
रुजानां स्थूतानामधूनां दीर्घवृक्षरक्तानां॥

(च० चि० अ० २१ श्लोक ३८)

अर्थात् स्थिर मारी कठोर मीठे उण्डे तथा स्नेह युक्त तथा  
अभिष्यन्दी पदार्थों के सेवन करने से परिक्रमी कार्य न करके सुखदाई जीवन  
व्यतीत करने से विकृति न कराने से और पंचकर्म विशेष कर वमन और  
वस्ति को उचित विधि से न देने से जब कफ और वायु प्रदुषित होकर वृद्धि  
को प्राप्त हो जाते हैं तो वह दोनों दोष रक्त आदि अंगों को दुष्ट  
करके विसर्प रोग उत्पन्न करते हैं।

जल वायु कफ के कारण अवहृद्ध होकर प्रवत हो जाती है  
और वह कफ को विविध मार्गों में ले जाती है। विशेषतया हाँसी में







ग्रन्थियों की माला को उत्पन्न करती है।

**ग्रन्थि विहारी के उपक्रम ( लक्षण ) :-**

तदुपतापाज्ज्वरातीक्ष्णारकासहिकार्यासुखं च-

प्रमोक्षयैवप्यारोक्ता विपाकश्चर्दिभूज्जगिर्मां निद्रा-

रत्नसदनानि प्रादुर्भास्युः प्रवाः वैरुपद्रुतः सर्व-

कर्मजा विषयमलिपत्तिर् विवर्जनीया भवतीति

ग्रन्थविषयः ।।

( प० वि० अ० २१ श्लोक २६ )

अर्थात् इन ग्रन्थियों के कारण रोगी को ज्वर तीव्र हो जाता है। इसके साथ ही रोगी को अन्य उपद्रव देखे जाते हैं।

- १- अतिसार।
- २- कास।
- ३- शिक्का।
- ४- स्वास।
- ५- शोथ।
- ६- विवर्णता:- (वायु के कारण त्वचा के रंग में अन्तर) जा जाता है।
- ७- कृचि।
- ८- वमन।
- ९- मुर्च्छा।
- १०- अंगमर्द:- रोगी के अंगों में वेदना होती है।
- ११- निद्रा।
- १२- कार्य में अनिच्छा







१३-

शिक्षिता।

जादि उपद्रव रोगों में देखे जाते हैं, इनकी उपस्थिति में रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। अतः आशान्वय होते हैं।

ये ग्रन्थियां देर से तथा कोई ही पकती हैं परन्तु कष्टदायक होती हैं। जिस रोगी में रक्त अत्यन्त दूषित होता है तो उसके रक्त की बात कफ दौब और भी दूषित करके सिरा स्नायु मांस एवं त्वचा में जाफ़्त हो जाते हैं तथा उनमें ग्रन्थियों को उत्पन्न करते हैं। इसमें वेदना बहुत तीव्र होती है। ये ग्रन्थियां छोटी बड़ी गोल लम्बी तथा रक्त वर्ण की होती हैं।

अष्टांग हृदयकार का मत:-

कफेन रुद्धः पवनो मित्वा तं बहुधा कफम् ॥

रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्षिरा स्नावमांसाम् ।

दूषयित्वा च दीर्घाणुवृक्षस्युत्तरात्मनाम् ॥

ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ।

रवाक्षका वा तिसारास्यतां च हिष्मावमिग्रमेः ॥

मोहवैषम्यमुच्छर्गिभंगाग्निसदनैर्मुताम् ।

इत्ययं ग्रन्थिवीक्षर्पः कफमारुतकोपवः ॥

(अ० ६० नि० अ० १३ श्लोक ५६-५८)

कफ से अरुद्ध वायु कफ को बुरा फैला कर अथवा जिस व्यक्तित्व का रक्त बढ़ा हुआ है उसके त्वचा, सिरा स्नायु और मांस में रहने वाले रक्त को दूषित कर लम्बी, छोटी गोल अथवा लोटी और कठोर ग्रन्थियों की माला को उत्पन्न करती है। इन ग्रन्थियों का रंग लाल तथा साध में पीड़ा और ज्वर भी रहता है। इन लक्षणों के



विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

(७३-७४) विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम

विष्णुसहस्रनाम











०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०  
 सन्निपातज विसर्प के लक्षण  
 ०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०

सर्वायतनसमुत्पत्त्यं सर्वलिङ्गं सर्वाङ्गव्यापिनं सर्व-

धात्वनुसारिणमायुकारिणं महात्ययिकमिति

सान्निपातविसर्पमचिकित्स्यं विधात् ।

( च० वि० अ० २१ श्लोक ४१ )

सन्निपातज विसर्प सब निदानों के सेवन करने से जब तीनों दोष दूषित होकर सारे लक्षणों को उत्पन्न कर देते हैं तब होता है। सारे अंगों में तथा सारी धातुओं में फैल जाता है। यह शीघ्र ही मृत्युकरक होता है। इसलिए इसे असाध्य जान कर चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

इस विषय में सुश्रुत जी का मत:-

०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०

सर्वात्मिक( सान्निपातिक ) विसर्प:- तीनों दोषों के रूप कृष्ण-पीत-सित और वेदनाओं तौद, दाह, काण्ड से युक्त एवं गम्भीर धातुगत होता है तथा एक जाने पर मांस और सिराओं का विनाश कर देने से ठीक नहीं होता है, यद्योक्त:-

सर्वात्मिकस्त्रिविधवर्जं रुजौ कणाढः

पक्को न सिध्यति च मांससिराप्रणाशात् ॥

( सु० नि० अ० १० श्लोक ६ )

भाव प्रकाशकार का मत:-

०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०=०

सन्निपातसमुत्पत्त्यं सर्वैकसमन्वितः

( म० प्र० वि० अ० ५६ श्लोक ८ )



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
 श्रीमद्भगवद्गीता  
 अर्जुनसंवादे

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

१. प्रथमः अध्यायः

( १४ श्लोक १५ पर्यन्तम् )

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

११. प्रथमः अध्यायः

( १ श्लोक १५ पर्यन्तम् )

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

अथ श्रीकृष्णस्य वचनम्

( १ श्लोक १५ पर्यन्तम् )



जो विसर्प तीनों दोषों से उत्पन्न होता है। उसमें  
उपर्युक्त तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

अष्टांग हृदयकार का मत:-  
~~~~~

सन्निपातजन्य विसर्प में सब दोषों के लक्षण रहते हैं  
और सब वातुओं में अधिकतः फैलता है, यथावतम्:-

सर्वजो लक्षणैः सर्वैः सर्वधात्वतिसर्पणः।

(अष्टांग हृदय अ० १८ नि० श्लोक ६५)

इस प्रकार सुकृता वाचावयव सन्निपातज विसर्प को तो  
माते हैं परन्तु विदोषज को अलग नहीं मानते हैं क्योंकि उनके एक दोष  
वाले जो वातिक, पेटिक, श्लेष्मिक विसर्प के लक्षण हैं, उनमें ही उन  
विदोषज सन्निपातों के लक्षणों का अन्तर्भाव किया हुआ मिलता है।  
सुश्रुतावत वातज लक्षण में ग्रन्थि विसर्प के लक्षण मिलते हैं और उस  
विसर्प में ग्रन्थियों का होना कफ के बिना असम्भव है। इस प्रकार इस  
वात विसर्प का ( वातकफज ग्रन्थि विसर्प ) में अन्तर्भाव हो जाता है,  
यथा:-

गण्डेयंदा तु विषमैरतिदुषितत्वा-

पुनतः स ख कथितः तनु वर्जनीयः॥

( सु० स० नि० अ० १० श्लोक ४ )

इसी प्रकार पित्त विसर्प के लक्षण में:-

दोषप्रमुदितमांससिरो यदा स्यात्

ओतो जर्दमनिभो न तदा स स्तिष्ठते सिध्येत्।

(सु०स० अ० नि० अ० १० श्लोक ५)



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ )

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ )



इस पथ में प्रोतोजन समान कृष्ण वर्णीता से अग्नि-  
विसर्प का ज्ञान होता है, क्योंकि वात के कारण पित्त अधिक प्रवृत्त होकर  
त्वचा आदि को जला देता है। जब पित्त त्वचा मांस आदि पर स्थित  
करके उस स्थान को कीचड़ के समान करता है, तब पित्त के साथ ही  
प्रवृद्ध कफ का मिश्रण होता है नहीं तो उस स्थान की आकृति कीचड़  
के समान नहीं हो सकती। इस प्रकार इस विसर्प विसर्प के लक्षणों में  
चरकोक्त कफ-पित्तज कदर्म (विसर्प) का ज्ञान अन्तर्भाव हो जाता है।

इस अग्नि विसर्प का भी सुश्रुतोक्त वात और पित्त के लक्षणों में ही अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि इस विसर्प में वात और पित्त दोष दूषित होकर और अपने अपने कारणों से अत्यन्त बृद्ध होकर गात्र में प्रबलता से दाह करते हुए शरीर में फैलते हैं। इसी कारण रोगी अपने जंगों को अग्नि में रखे हुए से अनुभव करता है। और जलनयुक्त स्फोटों ( फफोटों ) से युक्त हो जाता है। यथा:-

वातं पित्तं प्रदुषितं भति मात्रं स्वहेतुमि।

हत्यादि इस पक्ष में जो लक्षण हैं वे सब प्रकृति रूप समवाय से भी दुषित  
पित्त और वात के ही हैं। इस प्रकार चरक और सुश्रुत के मत में विरोध  
प्रतीति नहीं होती।

**विसर्प की साध्यासाध्या:-**

तत्र वातपित्त श्लेष्मनिमित्ता विसर्पास्त्रयः साध्याः

भवन्ति, अग्निवर्दमास्त्यां पुनरनुपलब्धं मर्मण्डनु-

पहले वा सिरास्नायुनासंवेदे साधारणक्रियापिरु-

मायेवाप्यस्यमानो प्रज्ञातिमापयेयाताम्, वनादरो-







पक्रान्तः पुनस्तयोरन्यतरौ हन्याद्देहमाश्वेवाहीविष-

वत्, तथा ग्रन्थिविसर्पमजातोपद्रवमारपेत चिकि-

त्सितुमुपद्रवोपद्रुतं त्वेनं परिहेत्, सन्निपातजं

सर्वपात्वनुसारित्वादायुकारित्वाद्भिरुद्धोपक्रमत्वा-

च्चासाध्यं विधात्।

अर्थात् वातज पित्तज तथा श्लेष्मज यह तीनों विसर्प साध्यता को प्राप्त होते हैं। अग्नि विसर्प तथा कर्दम विसर्प में यदि कोई उपद्रव न हुआ हो तथा साथ ही वह किसी मर्म देश तक न स्न पहुंचा हो यदि इनके मांस सिरा स्नायु आदि दुष्ट न हो और जो साधारण दोषानुसार चिकित्सा करने से यह दोनों विसर्प शान्त हो जाते हैं। यदि इनकी उपेक्षा की जाए तो शीघ्र ही सर्प विष की तरह घातक होते हैं।

यदि ग्रन्थि विसर्प में उपद्रव न हो तो वह उचित चिकित्सा से लाभ होता है। उपद्रव युक्त ग्रन्थि विसर्प चिकित्सा के योग्य नहीं होता।

सन्निपातज विसर्प सब धातुओं में समा जाता है। तथा शीघ्रता से फैलता है। इसकी चिकित्सा में यदि एक दोष को शान्त किया जाए तो दूसरा उसके विरुद्ध वृद्धि को प्राप्त होता है। उसे असाध्य जानना चाहिए।

सुश्रुतमतः:-

सिध्यन्ति वातककपित्तता विसर्पाः

सर्वात्मकः चतकृतश्च न सिद्धिमेति।







इत्यादि।

मौजमत:-

वर्ज्यस्तु कृतजस्तेषामित्यादि।

अष्टांगहृदय:-  
 जञ्जञ्जञ्जञ्ज

पृथक् दोषेः स्रवः साध्या इन्द्रजाश्चानुपद्रवाः।

असाध्यां कृतसर्वात्त्यां नन्वे। इत्यादि

भाववाच्यं और भावप्रकाशकार सुश्रुताक्त असाध्य

लक्षणों से ही सहमत हैं। उन्होंने सुश्रुताक्त साध्यासाध्यता के लक्षणों को ही अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है।

वास और आभ्यन्तरीय स्थान भेद से साध्यासाध्यता

विवेचन चरक संहिता और अष्टांग हृदय में इस प्रकार है:-

बहिर्माग्निक्रितं साध्यमसाध्यमुभयाक्रितम्।

विसर्पं दारुणं विधात्सुकृच्छं त्वन्तराश्रयम् ॥

यस्य लिङ्गानि सर्वाणि बलवत्स्य कारणम्।

यस्य चोपद्रवाः कष्टा मर्माणि यश्च हन्ति सः॥

( च० स० अ० २१ श्लोक २३ एवं २७ )

वास रोग मार्ग और आभ्यन्तरीय रोग मार्गों से यहां पर तत्र शाखा रक्तादयोधातव स्क्व, व, स वातयो रोगमार्गः। एवं आभ्यन्तरीय रोग मार्ग से कोष्ठः पुनरुच्यते-महाघ्नोतः शरीर-मध्यं महानिम्नमाम पक्वाशय इति पर्याय शब्दे सतन्त्रे, स रोग मार्ग आभ्यन्तरः इत्यादि चरक निर्दिष्ट स्थानों का ही ग्रहण होता है।

यदि विसर्प रोग बहिर्माग में स्थित हो तो साध्य



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( ०१ ०२ ०३ ०४ ०५ ०६ ०७ ०८ ०९ १० )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

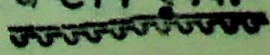
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



होते हैं। यदि दोनों मार्गों में स्थित हो तो यह दारुण या असाध्य होता है। यदि भीतरी स्थानों में हो तो यह कष्टसाध्य है।

इसके अतिरिक्त जिस समय इस रोग के सब उपद्रव रोगी को बाधान्त करते हैं और रोग को उत्पन्न करने वाले भी कारण प्रवृत्त हो और उनसे महान् कष्ट का अनुभव रोगी करता हो और यह रोग भी मर्म स्थानों तक पहुंच गया हो तो मृत्युकारक ही है। इसमें रोगी वचता नहीं। यहां पर चरकोक्त मध्यम रोग मार्ग के सब स्थानों का ग्रहण उचित है न केवल मर्म शब्द से, 'मर्माणि पुनरस्ति हृदयमूर्धादीनी' ही लेने चाहिये। क्योंकि जब रोगी का यह रोग अस्थिसन्धियों जादि तक पहुंचता है सब भी रोगी का वचन असम्भव है। यहां पर वस्ति, हृदय, मूर्धा इन तीन मुख्य मर्म स्थानों का नाम लेने से 'स्कोचर सतमर्म्' अर्थात् १०१ छोटे बड़े सब मर्मों का ग्रहण होता है। परन्तु उनमें से केवल जब ये विशेषतया विकृत हो जायें तो रोगी का जीवन भयंकर संतुलनात्मक परिस्थिति में समझना चाहिये।

इसलिये यहां पर जब अस्थिसन्धियां एवं उनसे सम्बन्धित बन्धी हुई स्नायु (LIGAMENT) कण्डरा (स्थूल स्नायु महत्यः स्नायवः कण्डरा इति) तथा सिरा धमनी जादि सब की विकृति पायी जाये तो इस रोग की असाध्यता समझनी आवश्यक है। क्योंकि मध्यम रोग मार्ग में चरक ने मर्म के अतिरिक्त 'अस्थिसन्धयो स्थि संयोगास्तत्रोपनिबद्धास्व स्नायु कण्डराः, समध्ययो रोग मार्गः' इस प्रकार वर्णन किया है।

**अष्टांग हृदयः-**  




... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..



अथपिष्ठानं च तं प्राहुर्वर्णि-त्तरुमयाक्याम् ॥ ययोत्तरं च

दुःसाध्याः-- इति-- ( अ० दृ० नि० अ० २३ श्लोक ४३ )

इस प्रकार के विसर्प को उत्तोर दुःसाध्य नम्र बतलाया

110

विसर्प चिकित्सा विवरण

~~केन्द्रीय~~ विसर्प की चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों

का सामान्य वर्णन चिकित्सा निमित्त वहाँ दिया जाता है, जिससे कि

वैद्य एव डॉक्टर वर्ग इन द्रव्यों के विशेष विशेष कृत्यों का प्रयोग करते

दुए इस रोग के असाध्य से असाध्य भेदों पर चिकित्सा में सकलता

प्राप्ति कर सकें। यदि व्याध्य भेदों पर किसी भी रूप में कुछ सफलता

मिले वह भी जन-समूह के लिये हितकारी सिद्ध होगी।

इसलिये यहां पर विशेष विशेष द्रव्यों का जो कि त्वचा

पर नाना प्रकार का प्रभाव डालते हैं, वर्णन करना युक्ति संगत है क्योंकि

विसर्प का विशेष क्षेत्र त्वचा ही है। इन द्रव्यों को इस रोग की चिकित्सा

निमित्त निर्णय रूपेण अवस्था बादि को देखकर प्रयोग किया जा सकता है।

अथ:-

वर्ण्य द्रव्य ( COSMETICS )

ये द्रव्य त्वचा के रंजक द्रव्यों ( MELANINS )

में नाना प्रकार का सुधार कर त्वचा को सुन्दर बनाते हैं।

१- चन्दन

२- केशर



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( १३ भाग ११ अंश ११ पृष्ठ ११ ) -- श्रीगणेशाय नमः --

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

१३

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( १३ भाग ११ अंश ११ पृष्ठ ११ ) -- श्रीगणेशाय नमः --

( १३ भाग ११ अंश ११ पृष्ठ ११ ) -- श्रीगणेशाय नमः --

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



- ३- पद्मक  
 ४- उशीर  
 ५- मजिष्ठा  
 ६- सारिका  
 ७- लोत्रा जादि द्रव्य।

(२) स्नेहन एवं मार्दवकर (EMOLIENTS) द्रव्य:-

ये द्रव्य त्वचा को मृदु बनाते हैं। घृत, तेल, कसा,

मज्जा, मधुच्छिद्रादिक।

(३) रुक्षाण द्रव्य:-

ये द्रव्य त्वचा में रुक्षाता की उत्पत्ति करते हैं।

१- यव

२- मृष्टान्न

३- कदफल।

(४) स्वेदल द्रव्य (SADOROFICES DIAPHOROSUES):-

ये द्रव्य त्वचा की स्वेद ग्रन्थियों को उत्तेजना देकर स्वेद की उत्पत्ति कराते हैं। जिससे कि सैन्ध्रिय विषय इस प्रकार निकल जाता है।

१- तुलसी २- कपूर ३- मरिच ४- वत्सनाभ ५- मुस्तक।

(५) स्वेदोपा द्रव्य:-

ये द्रव्य भी स्वेद की क्रिया निमित्त कार्य करते हैं।

उनका प्रयोग स्वेदजनन द्रव्यों के साथ सहायक रूप में भी होता है।

१- पुनर्नवा २- शिग्रु ३- निर्गुडी ४- कर्क ५- कुलत्थ ६- माष।

(६) स्वेदापनक (ANHYDROTICS-ANTI SUDORIFICS)







है-य- ये द्रव्य स्वेद की दुर्गन्धि आदि को दूर करने में सहायक है। जिससे त्वचा में रोगोत्पत्ति नहीं होने पाती।

- |    |             |
|----|-------------|
| १- | सुवी        |
| २- | पारसीक्यानी |
| ३- | उशीर        |
| ४- | पत्तूर      |
| ५- | कुपीलु      |

(७) रांगसंजन द्रव्य:-

ये द्रव्य त्वचा का सुधार करते हुए उसमें रोगों की उत्पत्ति करने में समर्थ हैं।

- |    |           |
|----|-----------|
| १- | रसाञ्ज    |
| २- | हस्तिदन्त |
| ३- | निम्ब     |
| ४- | शंख       |

(द) राशिलातन द्रव्य:- (DEPILATORY):-

इन द्रव्यों से त्वचा में स्थित रोमों की जड़े कम जोर  
हो जाती हैं और वे गिर जाते हैं।

- |    |        |
|----|--------|
| १- | कार    |
| २- | हरिताल |
| ३- | शं     |

(६) कण्डूजन ( ANTI PRURITIS ) द्रव्य:-







(१०) उदर काँठ प्रशमन द्रव्य:-

इन द्रव्यों से उदर और काँठ जादि दूर होते हैं।

- १- लविर
- २- सप्तपर्णी
- ३- जरिमेद
- ४- प्रियाल
- ५- जर्जुन
- ६- वसन
- ७- गोरिक
- ८- कृष्णमिर्च

(११) कुष्ठघ्न द्रव्य ( ANTI LEPROTICS ):-

ये द्रव्य कुष्ठ रोग की निवृत्ति कराते हैं।

- १- निम्ब लविर
- २- भल्लातक
- ३- त्रिफला
- ४- वारग्वय
- ५- निम्ब
- ६- सौमराजी
- ७- वाकुची
- ८- जतिप्रवाल
- ९- तुवरक
- १०- चक्रपर्द



अथ अष्टांगसंहिता (११)

अथ अष्टांगसंहिता (११)

|         |    |
|---------|----|
| अष्टांग | -१ |
| अष्टांग | -२ |
| अष्टांग | -३ |
| अष्टांग | -४ |
| अष्टांग | -५ |
| अष्टांग | -६ |
| अष्टांग | -७ |
| अष्टांग | -८ |

अथ अष्टांगसंहिता (११)

अथ अष्टांगसंहिता (११)

|         |     |
|---------|-----|
| अष्टांग | -१  |
| अष्टांग | -२  |
| अष्टांग | -३  |
| अष्टांग | -४  |
| अष्टांग | -५  |
| अष्टांग | -६  |
| अष्टांग | -७  |
| अष्टांग | -८  |
| अष्टांग | -९  |
| अष्टांग | -१० |



११-

काकोदुम्बरत्क मूला

इन द्रव्यों का क्यावस्था प्रयोग रोग के लिये हितकारी है।

(१२) कैश्य द्रव्य:-

इन द्रव्यों के प्रयोग से कैशों की वृद्धि होती है और  
त्वा की पुष्टि होती है।

१-

त्रिफला

२-

नारिकेल

३-

तिलेल

४-

गुंजा

५-

नीलिनी

६-

मदयन्तिका

७-

भृंगराज

उपरोक्त वर्णित द्रव्यों का समन्वय चरकाचार्य ने दश  
दश द्रव्यों का गण बनाकर उनके गुणों के आधार पर किया है। जो उन  
द्रव्यों के गुणों का निदेश जो विसर्प के लिये हितकारी है किया जाता है।

१- वर्ण्य  
जञ्जञ्जञ्ज

रक्त चन्दन, पुत्राग, पप, उशीर, मधुक मविष्ठा, सारिवा  
विदारी श्वेत दुर्वा यह दस वर्ण्य को ठीक करने वाले हैं।

२- कुष्ठध्वजगण:-  
जञ्जञ्जञ्जञ्ज

सरिद, अमया, जाम्बू, हरिद्रा, मिलावां, सप्तपर्ण  
जम्बूतास, करवीर, विडंग, जाती प्रवाल यह दस कुष्ठ  
कुष्ठनाशक हैं।

३- कण्डध्वजगण:-  
जञ्जञ्जञ्जञ्ज

चन्दन, नलग, कुतमास, नक्तमास, निम्ब, कुटज, सपर्ण



संस्कृत-शब्द-कोश

५१

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

संस्कृत-शब्द-कोश (५१)

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः

यस्य शब्दः 'संस्कृत' इति अर्थः



मधुक, हरिद्रा दारु, नागरमोथा, यह दस कण्डूनाशक हैं।

#### ४- कुमिध्न गण:-

शोभाज्जन, मिर्च, गण्डीर, केकुक, विडंग, निगुण्डी, जप-  
स्मार, गोक्षुर वासा, मुसाकणी यह दस कुमिध्न  
गण के हैं।

#### ५- विषघ्नगण:-

हरिद्रा, मण्डिष्ठा, सुवहा, सूतमस्ता, पातिन्दी चन्दन,  
कतक, शिरोष, सिधुवार, रतेष्मात्क वह दस विषनाशक  
होते हैं।

#### विसर्प रोगनाशक द्रव्य:-

ये द्रव्य विसर्प रोग की प्रत्येक अवस्था में या दोषों  
की सन्निपातावस्था में भी प्रयोग किये जा सकते हैं। शिरीष, मुलेठी,  
जामतकी, उशीर। उत्पल, अनन्ता, चन्दन, देवदारु, किराता।

विसर्प रोग नाश निमित्त दोषशामक द्रव्यों का ज्ञान  
आवश्यक होने के कारण निम्नलिखित रूपेण किया जाता है।

#### वातशामक द्रव्य:-

देवदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, नरुण, पुनर्वा, बला, अतिवला,  
दशमुल, गुडची सरड, जटामांसी, जर्ज, जर्ज, सतावरी, अश्वगन्धा, मुवादि,  
तगर, मधुर, जम्ब, स्वणरम, स्निग्धोष्णद्रव्य।

#### पित्ताशामक द्रव्य:-

मधुर, तिक्त, कषाय, शति द्रव्य, उशीर, सुगन्धवाला







किरात-तिक्त वृहती, शतावरी, फटोल, चन्दन, गुडुची, कमल, पर्पट,  
लाक्षा, शर्करा, पद्मोत्पल, कदली, जीवनीकाण।

कफशामक द्रव्य:-

~~~~~

रास्ना, उष्ण, पंचकोल, ताम्बूल, पिप्पलीमूल  
तुलसी, मूर्वा, अद्रिक शिगु, विभीतक, चिरवित्त्व, झुंदी वल्लीपंचमूल,  
कटकी पंचमूल मेषकृषी, हिंगु, -पुस्तक पुराणवृत्त अर्कमुलादि।

इन द्रव्यों का वर्गीकरण सुत्र मतानुसार निम्नलिखित है।

वातसंशमनवर्ग:-

~~~~~

देवदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वरुण, मेषकृषी, बलातिवला,  
अतिगल-कांच, रत्नको कुवेराक्षी(पाटला) वीरक्त, सहचर, अग्निमंथ,  
गिलोय, एण्ड, पाषाणमेद, अर्क, अर्क, शतावरी, पुनर्नवा, वसुक, वसिर,  
कांचनक, मागी कापासि, वृश्चिकाली, पशुर वेर, यवकोल कुलत्थ वातशामक  
हैं।

पित्त संशमन वर्ग:-

0=0=0=0=0=0=0=0=0=

श्वेत चन्दन, रक्तचन्दन, उशीर, मंजीठ, क्षीरकाकोली,  
क्षीरकाकोली, विदारीकण्ड, शतावरी गुन्द्रा शेवाल, कल्हार कुमद उत्पल,  
पद्मबीज, दुर्वा, मर्वा, तथा सारिवादिगण, काकोत्यादिगण, अंजना-  
दिगण, उत्पलादिगण, न्यग्रोधादि गण और तृणपंचमूलादिगण यह  
पित्तशामक हैं।

रक्तसंशमन वर्ग:-

0=0=0=0=0=0=0=0=0=

पीत चन्दन और, रक्त-चन्दन, कुष्ठ हरिद्रा कपूर



... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

...

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..



शतपुष्पा सरल, रास्ना, प्रकीर्य, उदकीर्य (करंजमेद) झुंकी, चमेली, गुंजा कलिहारी, पलाश, मुंज लामज्जक (ससजातीय) इत्यादि तथा बली पंचमूल, कण्टक पंचमूल, पिप्पलादि वृहत्यादि मुष्कादिगण, वचादिगण सुरसादिगण, आरग्वधादिगण की बाँच पियां श्लेष्मा का संश्लेषन करती हैं।

विसर्प रोग में वमन विरेचन आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है, क्योंकि ये कर्म इस रोग में हितकारी रहते हैं। अतः चिकित्सा विधित इन कर्मों के कार्यों में प्रयुक्त होने वाले मुख्य मुख्य द्रव्यों का भी वर्णन यथाचित होने के कारण किया जाता है।

१- Emetics : वाक्क द्रव्य मदनफल, अरिष्टक, तुल्य, हृत्पत्री, निम्ब देवदासी कटुतुम्बी ईश्वरी।

२- वमनापण द्रव्य (AID TO EMENTICS) मधुमष्टि, सेंपव नीप शणपुष्पी, अपामार्ग, मधु।

३- मृदुरेचक द्रव्य (LAXATIVES) हरितकी, यासशर्करा, फाल्गु (अंजीर) ईसवगोल, गन्धक, मुलेठी, मलंगबीज।

४- संशन द्रव्य (ANTHRAEENL) आरग्वध शरण्डतेल, सरनाय मार्कण्डिका कुमारी सत्व स्तीकम्प।

५- सेहन द्रव्य (REMULSCENT) करकन्द पीतु आदि

६- मेदन द्रव्य (CATHARTICS HYDROGOGAL) कटुकी, इन्द्रायण, त्रिवृत्, स्वर्णचूरी, कम्पिलक, कृष्णबीज।

७- तीव्रविरेक:- जपपात, सुही, कण्डुष्ट।

विसर्प में वाक्क योग:-

~~~~~







- |    |            |
|----|------------|
| १- | मैनकल      |
| २- | मुलहठी     |
| ३- | नीम की छाल |
| ४- | इन्द्रजो   |

इन द्रव्यों को कफ-पित्त विषय में शीतल जल में यथा-  
चित् मात्रा में डालकर प्रयोग में लाना चाहिये। या इन्हें दूध के रस में  
या नीम की छाल के बवाय में डाल कर भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

प-टौलादि वमनयोगः-- २

- |    |                   |
|----|-------------------|
| १- | फटोलपत्र नाल सहित |
| २- | नीम की झाल        |
| ३- | पीपल              |
| ४- | मैमफल             |
| ५- | हन्ड्रजों         |

इन द्रव्यों का ववाथ बनाकर वमन के लिये यथोचित मात्रा में प्रयुक्त किया जा सकता है।

**यस्यादि योगः---३**

मुलहठी, मेंफल, इन्द्रजॉ, इन द्रव्यों का कषाय भी

वमन कारक है और मृतेतपत्र-निमिषत्र-भेनकल विसर्पनाशक है।

पटौलादि-योग ४  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

फटोलपत्र नीमपत्र, मंनफल। इनका प्रयोग भी समन

कारक है और विसर्पहर है।



अथर्व

१०

अथर्व

११

अथर्व

१२

अथर्व

१३

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

१४

अथर्व

१५

अथर्व

१६

अथर्व

१७

अथर्व

१८

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व

अथर्व



ब्रह्मसूत्र योग ५

- १- पटोलपत्र
- २- नीम की छाल
- ३- इन्द्रजो

या

- १- पीपल
- २- भैरफल
- ३- हन्त्रजो

इनसे भी बचन होती है और ये विसर्प में हितकारी

यांग हें

**विसर्प में विरेचक योग:-** योग न० १  
०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०ज०

- १- निशोथबुर्ण ३ माशा  
२- घी ३ उचित  
३- दुग्ध  
४- उष्णजल  
५- अंगूररस

इनमें से किसी एक द्रव्य में चूर्ण को मिलाकर विषय

नाश निमित्त दिनमें दो बार देना चाहिये।

योग नं० २

त्रायमाणं साक्षितं दुग्धपानं विरेचनार्थं विसर्पं मे

हितकारी है। इसे उचित मात्रा में देना चाहिये। त्रायमाण के दूर्ण की

मात्रा दूग्य में तीन मात्रा से हः मात्रा तक डाल सकते हैं। यह योग



५ वीं भाग

अध्याय - १

अध्याय - २

अध्याय - ३

४

अध्याय - ५

अध्याय - ६

अध्याय - ७

अध्याय - ८

६ वीं भाग

१ वीं अध्याय - अध्याय - १

अध्याय - २

अध्याय - ३

अध्याय - ४

अध्याय - ५

अध्याय - ६

अध्याय - ७

अध्याय - ८

७ वीं भाग

अध्याय - १

अध्याय - २

अध्याय - ३



पित्ताधिक्य वाले विसर्प में विशेष लाभकारी रहता है।

योग नं० ३:-

~~~~~

इस योग को विसर्प अन्य ज्वर की शान्ति निमित्त  
विरेचकार्य दिया जा सकता है।

१- त्रिफला क्वाथ ५ तोला

२- निशोध चूर्ण ३ माशा

३- घृत यथोचित मात्रा में मिलाकर यथावस्था प्रयोग

करना चाहिये।

या

योग नं० ४:-

~~~~~

जामलास्वरस

या

जामला क्वाथ उचित मात्रा में घृत मिलाकर देना चाहिये।

यदि कोष्ठरू हाँ तो उपरोक्त योग त्रिवृत् नुस्त्र चूर्ण यथोचित मात्रा में  
मिलाकर देना लाभप्रद है। यदि विसर्प दोष कोष्ठाक्रित है तो भी  
बाहुल्येन उपरोक्त योगों का ही प्रयोग विरेचार्थ करवाना प्रशस्त है।

योग नं० ५:-

~~~~~

कोष्ठाक्रित दोषों से युक्त विसर्प में विरेचनार्थ निम्न  
योग अधिक प्रशस्त है।

निशोध चूर्ण ३ माशा को त्रायन्मी रस, त्रिफला रस,  
दुध या घृत के साथ देने से लाभ होता है। निशोध की मात्रा रोगी को  
वलावल के अनुसार বেশ अधिक या कम भी कर सकता है।

यदि रोगी शोथन के योग्य न हो और दोष अल्प मात्रा



१६. तबल विनयक अर्थात् ३ भोजी भोज प्रवर्तमान

-:३: ०८ भोज  
अर्थात् ३ भोज

भोजी भोजन वि. तबल अर्थात् भोजी वि. भोजन

१७. तबल वि. तबल विनयक

भोजी ५ भोजन अर्थात् -५

भोजन + भोज भोजी -५

भोजन अर्थात् भोजन ३ भोजन अर्थात् भोज -५

भोजन वि. तबल

भोज

-:३: ०८ भोज  
अर्थात् ३ भोज

भोजन अर्थात्

भोज

भोजन अर्थात् भोजन भोज ३ भोजन अर्थात् भोजन

३ भोजन अर्थात् भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

-:३: ०८ भोज  
अर्थात् ३ भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज

भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज भोज



में हों तो निम्न योग क्वाथ रूप में हितकारी रहते हैं। इनसे रोगी को शान्ति पहुँचती है।

योग नं० १

- १- चन्दन  
२- कमल-- इनका उचित वसाथ।

योग नं० २

- १-नागरमोथा  
२- नीम छाल  
३- परवल पत्र

योग नं० ३

पटोलादिगण ( जष्ठांगहृदय ) का क्वाथ ।

योग नं० ४

- १- सन्निधि सारिका
- २- आमला
- ३- सस
- ४- नागरमोथा

इसका ब्याथ बनाकर प्रयोग में लाना चाहिये।

विसर्प विकित्सा-पयोगी सूचना

1948.4 1948.5 1948.6 1948.7 1948.8 1948.9 1948.10 1948.11 1948.12 1949.1 1949.2 1949.3 1949.4 1949.5 1949.6 1949.7 1949.8 1949.9 1949.10 1949.11 1949.12 1950.1 1950.2 1950.3 1950.4 1950.5 1950.6 1950.7 1950.8 1950.9 1950.10 1950.11 1950.12 1951.1 1951.2 1951.3 1951.4 1951.5 1951.6 1951.7 1951.8 1951.9 1951.10 1951.11 1951.12 1952.1 1952.2 1952.3 1952.4 1952.5 1952.6 1952.7 1952.8 1952.9 1952.10 1952.11 1952.12 1953.1 1953.2 1953.3 1953.4 1953.5 1953.6 1953.7 1953.8 1953.9 1953.10 1953.11 1953.12 1954.1 1954.2 1954.3 1954.4 1954.5 1954.6 1954.7 1954.8 1954.9 1954.10 1954.11 1954.12 1955.1 1955.2 1955.3 1955.4 1955.5 1955.6 1955.7 1955.8 1955.9 1955.10 1955.11 1955.12 1956.1 1956.2 1956.3 1956.4 1956.5 1956.6 1956.7 1956.8 1956.9 1956.10 1956.11 1956.12 1957.1 1957.2 1957.3 1957.4 1957.5 1957.6 1957.7 1957.8 1957.9 1957.10 1957.11 1957.12 1958.1 1958.2 1958.3 1958.4 1958.5 1958.6 1958.7 1958.8 1958.9 1958.10 1958.11 1958.12 1959.1 1959.2 1959.3 1959.4 1959.5 1959.6 1959.7 1959.8 1959.9 1959.10 1959.11 1959.12 1960.1 1960.2 1960.3 1960.4 1960.5 1960.6 1960.7 1960.8 1960.9 1960.10 1960.11 1960.12 1961.1 1961.2 1961.3 1961.4 1961.5 1961.6 1961.7 1961.8 1961.9 1961.10 1961.11 1961.12 1962.1 1962.2 1962.3 1962.4 1962.5 1962.6 1962.7 1962.8 1962.9 1962.10 1962.11 1962.12 1963.1 1963.2 1963.3 1963.4 1963.5 1963.6 1963.7 1963.8 1963.9 1963.10 1963.11 1963.12 1964.1 1964.2 1964.3 1964.4 1964.5 1964.6 1964.7 1964.8 1964.9 1964.10 1964.11 1964.12 1965.1 1965.2 1965.3 1965.4 1965.5 1965.6 1965.7 1965.8 1965.9 1965.10 1965.11 1965.12 1966.1 1966.2 1966.3 1966.4 1966.5 1966.6 1966.7 1966.8 1966.9 1966.10 1966.11 1966.12 1967.1 1967.2 1967.3 1967.4 1967.5 1967.6 1967.7 1967.8 1967.9 1967.10 1967.11 1967.12 1968.1 1968.2 1968.3 1968.4 1968.5 1968.6 1968.7 1968.8 1968.9 1968.10 1968.11 1968.12 1969.1 1969.2 1969.3 1969.4 1969.5 1969.6 1969.7 1969.8 1969.9 1969.10 1969.11 1969.12 1970.1 1970.2 1970.3 1970.4 1970.5 1970.6 1970.7 1970.8 1970.9 1970.10 1970.11 1970.12 1971.1 1971.2 1971.3 1971.4 1971.5 1971.6 1971.7 1971.8 1971.9 1971.10 1971.11 1971.12 1972.1 1972.2 1972.3 1972.4 1972.5 1972.6 1972.7 1972.8 1972.9 1972.10 1972.11 1972.12 1973.1 1973.2 1973.3 1973.4 1973.5 1973.6 1973.7 1973.8 1973.9 1973.10 1973.11 1973.12 1974.1 1974.2 1974.3 1974.4 1974.5 1974.6 1974.7 1974.8 1974.9 1974.10 1974.11 1974.12 1975.1 1975.2 1975.3 1975.4 1975.5 1975.6 1975.7 1975.8 1975.9 1975.10 1975.11 1975.12 1976.1 1976.2 1976.3 1976.4 1976.5 1976.6 1976.7 1976.8 1976.9 1976.10 1976.11 1976.12 1977.1 1977.2 1977.3 1977.4 1977.5 1977.6 1977.7 1977.8 1977.9 1977.10 1977.11 1977.12 1978.1 1978.2 1978.3 1978.4 1978.5 1978.6 1978.7 1978.8 1978.9 1978.10 1978.11 1978.12 1979.1 1979.2 1979.3 1979.4 1979.5 1979.6 1979.7 1979.8 1979.9 1979.10 1979.11 1979.12 1980.1 1980.2 1980.3 1980.4 1980.5 1980.6 1980.7 1980.8 1980.9 1980.10 1980.11 1980.12 1981.1 1981.2 1981.3 1981.4 1981.5 1981.6 1981.7 1981.8 1981.9 1981.10 1981.11 1981.12 1982.1 1982.2 1982.3 1982.4 1982.5 1982.6 1982.7 1982.8 1982.9 1982.10 1982.11 1982.12 1983.1 1983.2 1983.3 1983.4 1983.5 1983.6 1983.7 1983.8 1983.9 1983.10 1983.11 1983.12 1984.1 1984.2 1984.3 1984.4 1984.5 1984.6 1984.7 1984.8 1984.9 1984.10 1984.11 1984.12 1985.1 1985.2 1985.3 1985.4 1985.5 1985.6 1985.7 1985.8 1985.9 1985.10 1985.11 1985.12 1986.1 1986.2 1986.3 1986.4 1986.5 1986.6 1986.7 1986.8 1986.9 1986.10 1986.11 1986.12 1987.1 1987.2 1987.3 1987.4 1987.5 1987.6 1987.7 1987.8 1987.9 1987.10 1987.11 1987.12 1988.1 1988.2 1988.3 1988.4 1988.5 1988.6 1988.7 1988.8 1988.9 1988.10 1988.11 1988.12 1989.1 1989.2 1989.3 1989.4 1989.5 1989.6 1989.7 1989.8 1989.9 1989.10 1989.11 1989.12 1990.1 1990.2 1990.3 1990.4 1990.5 1990.6 1990.7 1990.8 1990.9 1990.10 1990.11 1990.12 1991.1 1991.2 1991.3 1991.4 1991.5 1991.6 1991.7 1991.8 1991.9 1991.10 1991.11 1991.12 1992.1 1992.2 1992.3 1992.4 1992.5 1992.6 1992.7 1992.8 1992.9 1992.10 1992.11 1992.12 1993.1 1993.2 1993.3 1993.4 1993.5 1993.6 1993.7 1993.8 1993.9 1993.10 1993.11 1993.12 1994.1 1994.2 1994.3 1994.4 1994.5 1994.6 1994.7 1994.8 1994.9 1994.10 1994.11 1994.12 1995.1 1995.2 1995.3 1995.

- १- विसर्प रोगी का स्वच्छ प्रवेश में रहना चाहिये और वनन उसके वस्त्र आदि की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये।
- २- विसर्प रोगी के दोषों का निराकरण वमन विरचन, बालेपन अवसेचन रक्त मोक्षण द्वारा अवश्य दोष के कलावत के अनुसार







करनी चाहिये।

३- इस रोगी को विदाही, शामक एवं तृप्त मोक्षण आदि देना चाहिये।

४- फल एवं हरे शाक आदि द्रव्य इसमें विशेषतया हितकारी रहते हैं। रक्त मोक्षण इस रोग में सबसे हितकारी है।

५- क्योंकि चरक ने इसके विषय में स्पष्ट लिखा है, कि जितने भी कर्म विसर्प रोग की निवृत्ति निमित्त हैं उनमें से सबसे श्रेष्ठ रक्त मोक्षण ही है, अर्थात् रक्त मोक्षण कराने पर इन सब कर्मों की आवश्यकता नहीं रहती है।

यथा:-

यानीहोक्तानि कर्माणि विसर्पाणां निवृत्तये।

रक्तस्तानि सर्वाणि रक्तमोक्षणमेकतः।

(च० वि० अ० २१ श्लोक १४०)

६- वात प्रधान विसर्प में तिक्त द्रव्यों से साधित घृत आदि का प्रयोग करना चाहिये। यदि अल्पदोष युक्त पित्त प्रधान विसर्प हो तो भी उपरोक्त घृत ही हितकारी है।

७- यदि पेंक्ति विसर्प बहु उपद्रव युक्त हो, तो उसमें विरेचन विशेष हितकारी रहता है।

८- विसर्प रोगी को स्नान नहीं कराना चाहिये ऐसा करने से दोषों का अवरोध होकर रोग की वृद्धि होती है।

९- इसके अतिरिक्त उपद्रव युक्त पेंक्ति विसर्प के लिये जो घृत आदि योगों का वर्णन है उनमें से भी वे ही घृत देने चाहियें जो विरेक हो अथवा इन घृतों के पान से दोष भीतर ही रुक कर त्वचा मांस



161/1/1/1

161/1/1/1 -1

161/1/1/1

161/1/1/1 -2

161/1/1/1

161/1/1/1 -3

161/1/1/1

161/1/1/1

161/1/1/1

161/1/1/1

161/1/1/1

161/1/1/1

(161/1/1/1)

161/1/1/1 -4

161/1/1/1

161/1/1/1

161/1/1/1 -5

161/1/1/1

161/1/1/1 -6

161/1/1/1

161/1/1/1 -7

161/1/1/1

161/1/1/1



रुधिर को पचाकर रोग की उग्रता के वर्दीक बनते हैं। इसलिये बहुदोष प्रधान पेशिक विसर्प वाले को प्रथम विरेचन ही हितकारी रहता है।

१०- अग्नि विसर्प में वात पित्त शामक औषध देनी चाहिये। यदि ग्रन्थिविसर्प हो वात कफ शामक औषध, यदि कर्दम विसर्प हो तो पित्त कफ शामक औषध करनी चाहिये। त्रिदोषज विसर्प में त्रिदोष शामक चिकित्सा हितकारी रहती है।

११- दोषों की सामता होने पर और उनके कफ स्थान गत होना पर जो विसर्प होते हैं। उनमें लघन, वमन और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों का सेवन हितकारी रहता है।

१२- यदि साम दोष पित्त स्थान गत हों तो भी उपरोक्त लघन, वमन और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों का ही प्रयोग करना चाहिये। परन्तु रोगी अवस्था में विरेचन और रक्त का अवसेचन विशेष हितकारी रहता है।

१३- यदि विसर्प दोष वाताशय ( वृहदन्त्र ) में स्थित हो कर रोग की उत्पत्ति में सहायक हो तो ऐसी अवस्था में सर्व प्रथम रुक्ताण कर्म करना चाहिये।

१४- रक्तपित्त के अनुबन्ध से युक्त सब प्रकार के विसर्पों में भी सिद्ध घृतों का प्रयोग हितकर नहीं। यदि रक्त पित्त का अनुबन्ध न हो तो उपरोक्त नियमानुसार विरेचक घृतों के प्रयोग में भी हानि की सम्भावना नहीं रहती है।

१५- विसर्प रोग में दोष प्रधानता को देखकर तत्सदोष शामक चिकित्सा करने से लाभ रहता है।

१६- यदि रुधिर शालारूप त्वचा मांस स्नायु आदि में दूषित



...  
...  
...  
... - 41

...  
...  
...  
... - 42

...  
...  
... - 43

...  
...  
... - 44

...  
...  
... - 45

...  
...  
...  
... - 46

...  
...  
...  
... - 47



हुआ हो तो सर्व प्रथम रक्त निर्हरण करना चाहिये।

१७- ग्रन्थि विसर्प की चिकित्सा में यदि ग्रन्थि का पाक न हो तो दाह एवं क्षारीय द्रव्यों से उसे दग्ध करना चाहिये या उचित सस्त्र शस्त्रों के प्रयोग से उस ग्रन्थि का भेदन कर देना चाहिये। पाषाण सदृश कठोर ग्रन्थियों की चिकित्सा सावधानीपूर्वक करनी चाहिये।

१८- भोजन की शुद्धि का विशेष ध्यान इस रोगक में होना चाहिये। विदाही एवं दुषित जन्मपान विशेष कर हानिकर हैं। इसमें अधिक मांस का सेवन भी हितकारी नहीं रहता।

१९- उदर शुद्धि निमित्त अवश्य प्रतिदिन किसी विरेकक द्रव्य का प्रयोग हितकारी रहता है। स्तदर्थ गुल्फन्द ५ तोला और सोंफ ६ माशा रात्रि को दुग्ध से हितकारी रहती है।

२०- रोगी को शुद्ध वातावरण एवं सूर्य रश्मियों का जहाँ पर सीधा प्रभाव पड़े उस खुले वातावरण में रहना अधिक हितकारी है। पैरों की शीत प्रवाह एवं वातज की स्नेह प्रवाह चिकित्सा रोगी के बलावत्त का ज्ञान करके आरम्भ करें।

२१- कफातिरिक्त विसर्प में कोई भी लेप हो वह घना नहीं लगाना चाहिये। और उसे बारम्बार लगाने से ही लाभ रहता है। सब प्रलेपों को बिना धोये ही उतार कर उन पर पतला पतला दूसरा प्रलेप लगाना चाहिये।

२२- कफज विसर्प में लेप के शुष्क होने पर उसे उतार घना लेप करना चाहिये। यह प्रलेप अंगुष्ठ की चौड़ाई के तीसरे भाग जितना घना होना चाहिये। यह प्रलेप स्निग्ध रूपा, पिण्डाकृति एवं तरल नहीं होना चाहिये। अर्थात् कफज दोषानुसार सम ही होना चाहिये।







२३- लेपों को घने कपड़े पर लगाकर कम स्थान पर लगाने से उष्णता भीतर ही रुक जाती है। इससे शूल आदि की उत्पत्ति होती है। और स्वेद के भीतर ही रहने के कारण छोटी छोटी पिछ्कारें भी हो जाती हैं। इन लेपों को उचित विधि से ही लगाना चाहिये जिससे मित्र शरीर पर चिपट सके। ऐसे लेप नहीं होने चाहियें जो अल्प या अति स्नेह के कारण अल्प या अति द्रव के कारण शरीर के स्थान से चिपट न सकें।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मूंग, मसूर, चना, अरहर की दातें जइसै जंगली जीवों  
के मांसरस, नवनीत, घृत, मुनक्के, अनार, करेला, बैत का उग्र भाग, परवल,  
आमला, कट्था, नागकेसर, लाल, शिरस की झाल, कपूर, तिल और चन्दन  
का लेप, रक्तशोथक पदार्थ, नील तिक्त रस संयुक्त पदार्थ, अविदाही त्राय  
पदार्थ, तथा अनुद्वेगकर वस्तुएं सेवन करनी चाहिरां।

वहिकर द्रव्य:-  
कककककककक

व्यायाम दिवा स्वप्न मधुन प्रवात क्रोध, शोक, वमन वेग  
धारण, पर निन्दा, पत्रनाशक किष्काशन दधि कुर्चि, सोवीर मय, किलाट  
गुर्वन्मपान, लहसुन कुतयी, उड़द, तिल, अजागंत जीवों के मांस स्वेदन कर्म,  
विदाही, लवण, अम्ल, कटु - पदार्थ तथा जातपस्तेवन विसर्प से पीड़ित







व्यक्ति के लिए बहिष्कृत होते हैं।

इस सामान्य पद्यापथ्य के अनन्तर अब विशेष पथ्य का वर्णन किया जा रहा है। यदि इन पथ्य वस्तुओं के उचित कल्प बनाकर उन का प्रयोग उचित समय रोगी की अवस्थानुसार किया जाये तो लाभ अवश्यम्भावी है। रोगी को लंघन के बाद स्नेह से रहित कदाचित्त जलमें धोले हुए ससु रक्त शहद और शर्करा ( चीनी ) मिलाकर देने चाहिये।

इस मन्थ को कुछ अम्ल और मधुर बनाकर प्रयोग में लाने से विशेष लाभ रहता है। इस निमित्त इस मन्थ में उष्ण

अनारस

बावंलारस

फालसारस

अंगूररस या

मुनाक्का

पिण्ड तज्जूर इनको मिलाना हितकारी रहता है।

२- जी और शाली चावलों के तर्पण (द्रवालोहित ससु आदि) को घृत में मिलाकर अवलोहिता बनाकर भी प्रयोग में लिया जा सकता है।

३- जब यह अवलोहिता आदि पच जायें तो पुराने शाली चावलों का मोजन को युष्णों के साथ लें।

युष्ण निमित्त मुंग, मसूर और चने अधिक उपयोगी रहते हैं। इनके युष्णों को परवल के पत्र और बावंलों से तैयार करना चाहिये। यदि यह युष्ण रुचि के अनुसार अम्ल न हों तो इसमें उपरोक्त अनार आदि द्रव्यों के रसों को भी यथाचित मात्रा में मिलाकर प्रयोग में कर सकते हैं।

४- रोगी को जंगली पशुपक्षियों का मांस रस फालसे का रस



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥



डाफा, जनारदाना और बांबले के रस से युक्त घृत रहित ही प्रयोग में करना चाहिये।

५- इस रोग के लिये पुराने शाली चावल ही अधिक करने हितकारी रहते हैं। इन चावलों को तैयार करने के बाद उन्हें पिछ्छा से रहित करके भी अर्थात् शीतल जलसे धो लेना चाहिये। तब वे अधिक लघु एवं विसर्प रोगी के लिये हितकारी हो जाते हैं।

६- कफाधिक व्यक्ति और जिनके लिये इन का सात्त्व्य न हो उन्हें इन शाली चावलों का प्रयोग न करा कर क्व गेहूं चना आदि हितकारी मांज्य द्रव्यों पर ही रहें।

७- रोगी को हल्का भोजन देना हितकारी रहता है चाय, काफी, अधिक शर्करा और मध आदि द्रव्यों के प्रयोग से लाभ रहता है। रोगी की बहुदोष युक्त अवस्था में लघु भोजन चावल आदि ही हितकारी रहते हैं। यदि आवश्यकता हो तो थोड़ा सा मक्खन, घृत नमक और काली मिर्च आदि केवल मात्र मुस स्वाद को ठीक करने के लिये देनी चाहिये। यदि हो सके इनका परित्याग ही करें तो हितकर है। क्योंकि कहा भी है:-

विदाहीन्यन्नपानानि विरुद्धं स्वप्नं दिवा।

शोषव्यायामसूयान्निप्रवाताश्च विवर्जयेत्॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ११४ )

८- पुनः २ आक्रमण शीत विसर्प में पाचन संस्थान का सुधार करने के लिये रोगी को दुध, पुराने चावल, मुंग, मछर, चना उजूर, अंर, जनार, बांबला आदि द्रव्य प्रधान भोजन पर रहें।

९- पाचणशक्ति, विटामिन की और जैसा २ रोग हो उसकी अवस्थानुसार द्रव्यों का पक्षय आदि देते रहें।







१०-

जल की मात्रा कम करना और कार्बोहाइड्रेट्स प्रधान

द्रव्यों का प्रयोग कम करने से भी विसर्प की पाचन संस्थान जन्म विकृति

में लाभ रहता है। कतः अवस्थानुसार इनका भी उचित ही रोगी की

अवस्थानुसार प्रयोग कराना चाहिये।

११-

यदि रोगी को इस रोग की पीड़ा ज्ञात हो तो संज्ञा

नाशक द्रव्यों (

) का भी प्रयोग कराया जा सकता

है।

विसर्प रोग के लिये निम्नलिखित जायुर्वेदिक योगों का

प्रयोग हो सकता है।

१- चारोग्यवर्दिनी

( १० १० स० )

२- कनक सुन्दर रस

( १स० १० स० )

३- मुक्तापिष्टी

( रसतन्त्रसार )

४- प्रवालपिष्टी

( रसतन्त्रसार )

५- गिलाय सत्व

( रसतन्त्रसार )

६- तदिराष्टि

( मेषज्य रत्नावलि )

७- तदिराष्टका क्वाथ

( वृन्द )

८- गन्धक रसायन

( यो० १० )

९- पिराजा मसम

( रसतन्त्रसार )

१०- विसर्पनाशक कर्क

( कर्क प्रकाश )

११- कालाग्निरुद्र रस

( मे० १० )

१२- जन्तुघ्नी बटी

( १० १० स० )

१३- वारीसागर रस

( व० रा० )

१४- विसर्पनाशक रस

( १० यो० सा० )







|     |                       |                         |
|-----|-----------------------|-------------------------|
| १५- | विसर्प शोषण रस        | ( २० यो० सा० )          |
| १६- | विसर्पारि रस          | ( २० यो० सा० )          |
| १७- | चन्दनार्क             | ( राजकीय औ० सं० )       |
| १८- | महातिक्तक घृत         | ( चरक संहिता )          |
| १९- | कासीसादि वटी          | ( मे० २० )              |
| २०- | मुक्तामिश्रण          | ( रसतन्त्रसार )         |
| २१- | फटोलादि क्वाथ         | ( मे० २० )              |
| २२- | स्लाधारिष्ट           | ( मेषज्य २० )           |
| २३- | निम्बतैल              | ( मेषज्य २० )           |
| २४- | क्षतरीफल शाहतरा       | ( युतानी चिकित्सासागर ) |
| २५- | पंचनिम्बचूर्ण         | ( चक्र० मे० २० )        |
| २६- | कल्याण घृत            | ( मे० २० )              |
| २७- | क्षीर कल्याण घृत      | ( मे० २० )              |
| २८- | कासीसादि घृत          | ( शा० स० )              |
| २९- | त्रिफला घृत           | ( चक्र० )               |
| ३०- | पंचतिक्त घृत          | ( शा० स० )              |
| ३१- | बृहत् शतावरी घृत      | ( मे० २० )              |
| ३२- | काम दुधा रस           | ( २० या सा )            |
| ३३- | बृहत् मजिष्ठादि क्वाथ | ( शा० स० )              |
| ३४- | तप्त मजिष्ठादि क्वाथ  | ( चक्र० म० २० )         |
| ३५- | केशो वटी              | ( चक्रदत्त )            |
| ३६- | सत्यानाशी कर्क        |                         |
| ३७- | अमृताक्षुरं लोह       | ( म० २० )               |









|     |                |                        |
|-----|----------------|------------------------|
| ३८- | गुदूच्यादि लोह | ( रसेन्द्रसार संग्रह ) |
| ३९- | त्रिफलागुग्गुल | (                      |
| ४०- | त्रिफला चुणी   | ( च० सं० )             |
| ४१- | माणिक्य रस     | ( र० सा० सं० )         |

वास प्रयोग के लिये निम्न योग प्रयोग में ला सकते हैं।

|     |                  |                          |
|-----|------------------|--------------------------|
| १-  | मांस्यादि लेप    | ( शा० व० )               |
| २-  | निशादि लेप       | ( व० से० )               |
| ३-  | दशांगलेप         | ( मे० र० )               |
| ४-  | नाग रक्ता        | ( रस तन्त्र )            |
| ५-  | महासिन्धुच तेल   | ( च० व० )                |
| ६-  | विसर्पहर तेल     | ( रस त० )                |
| ७-  | कृष्ण विष हरण    | ( रस त० )                |
| ८-  | खुजली लेप        | ( युनानी चिकित्सा सागर ) |
| ९-  | तुल्य योग        | ( युनानी चिकित्सा सागर ) |
| १०- | महरम जिल्द       | ( युनानी चिकित्सा सागर ) |
| ११- | गुडुच्चादि तेल   | ( च० व० )                |
| १२- | वृहत सोमराजी तेल | ( मे० र० )               |

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय







पारचात्यमतानुसार निम्नलिखित जाँच बियाँ प्रायः हितकारी हैं।

[illegible]

|     |                |                     |
|-----|----------------|---------------------|
| १-  | सल्फा निलेमाइड | SULPHANILAMIDE      |
| २-  | सल्फा थायजाजोल | SULPHATHIAZOLE      |
| ३-  | पेनिसिलीन      | PENICILLIN          |
| ४-  | थाइजामाइड      | THIAZAMIDE          |
| ५-  | सल्फा ट्रायड   | SULPHATRIDE         |
| ६-  | डाइस्टाक्वीन   | DISTAQUIN           |
| ७-  | रेपिडोसिलीन    | RAPIDOCILLIN        |
| ८-  | सोलुसिलीन      | SOLUCELLIN          |
| ९-  | सल्फा डायजीन   | SULPHADIAZINE       |
| १०- | सुप्रोनल       | SUPRONAL            |
| ११- | सल्फामेराजीन   | SULPHAMERAZINE      |
| १२- | टिबेटिन        | TIBATIN             |
| १३- | बैडियोनल       | BADIONAL            |
| १४- | प्रोन्टोसिल    | PRONTOSIL           |
| १५- | प्रोन्टोसिल    | PRONTOSIS (SOLUBLE) |
| १६- | एल्कोसिन       | ELKOSIN             |
| १७- | सिवाजाल        | CIBAZOL             |
| १८- | सेप्टानिलम     | SEPTANILAM          |
| १९- | सल्फा रसिनोल   | SULPHER SINOL       |
| २०- | सल्फा डायजिन   | SULPHADIAZINE       |
| २१- | सल्फामेरेजीन   | SULPHAMERAZINE      |
| २२- | ग्रेनदिसिन     | GENTRISIN           |







- २३- रेडोक्सोन REDOXON  
 २४- सल्फामेलाथिन SULPHAMELATHINE  
 २५- कारिपोमाइसिन

रोगी को विशेषतया विनाम करने के लिये आदेश दिया जाता है उस समय अपने शरीर पर लगाने के लिये जो अत्यन्त आवश्यक है। उस का योग इस प्रकार है। इस रोग के स्थान पर लगाना चाहिये और जिससे इस रोग का प्रसार रुक सके। रोगी की उदर शुद्धि का विशेष ध्यान रखते हुये एक पारश्चात्य योग भी दिया जाता है।

|                                  |        |          |
|----------------------------------|--------|----------|
| 0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0= |        |          |
| पाउडर वाल प्रयोगार्थ             |        |          |
| 0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0= |        |          |
| POWDERED                         | CAMPOR | 10 ग्राम |
| BORIC                            | ACID   | २ ग्राम  |
| ZINC                             | OXIDE  | २ ग्राम  |
| STARCH                           |        | 4 ग्राम  |

इस पाउडर को शरीर पर रोग निवाणीार्थ लगाना चाहिये।

उदर शुद्धि के लिये अम्यन्तरीय प्रयोग:-

0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=

|                     |             |
|---------------------|-------------|
| CALOMAL             | 1 1/2 ग्राम |
| Ext. of Hyposcyamus | 1 ग्राम     |
| Ext. colocynthis    | 2 1/2 ग्राम |

इन सब को मिलाकर गोलियां तैयार कर लें।

तत्पश्चात् रात्रि को इसका प्रयोग करें- करायें।

वायुवेदीय एवं पारश्चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक विवेचन:-

0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=0=



सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा

के बिना किसी भी प्रकार का प्रयोग नहीं किया जायेगा

यह किताब केवल शिष्यों के लिये है

किसी भी प्रकार का प्रयोग बिना गुरुदेव की आज्ञा के

नहीं किया जायेगा

श्रीगुरुदेव की आज्ञा

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा

के बिना किसी भी प्रकार का प्रयोग नहीं किया जायेगा

यह किताब केवल शिष्यों के लिये है

किसी भी प्रकार का प्रयोग बिना गुरुदेव की आज्ञा के

नहीं किया जायेगा

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा

श्रीगुरुदेव की आज्ञा

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा

के बिना किसी भी प्रकार का प्रयोग नहीं किया जायेगा

यह किताब केवल शिष्यों के लिये है

किसी भी प्रकार का प्रयोग बिना गुरुदेव की आज्ञा के

नहीं किया जायेगा

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा

श्रीगुरुदेव की आज्ञा

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की आज्ञा



-सं- रोगी की प्रकृति जादि की भिन्नता से चिकित्सा में भी बहुत ही भिन्नता पाई जाती है। इसलिये प्रकृति जादि का ध्यान कर और रोगी के वास्तविक आन्तरिक कारणों का ज्ञान करके यथोचित औषधि ही निश्चित करनी चाहिये। जिससे की रोगी को पूर्ण सफलता प्राप्त हो सके।

इस रोग की तीव्रता के स्नान जादि वर्जित है, और किसी भी प्रकार की साबुन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो नमक को गर्म जल में मिलाकर उस जल से शरीर के कण्ठ को साफ कर लेना चाहिये। यह अनुपात नमक का बहुत ही कम होना चाहिये।

यदि रोग भयंकर स्थिति में हो तो सॉल्टीन ३० से १२० बुंद वाला स्किन् कार्बोडिक्ट ६० से २४० बुन्द २० से ३० गैलन में मिला कर ब्रणों को साफ करने के लिये कार्य में लाना चाहिये। जो ब्रण शुष्क और मोटे हो उनको इस जल से साफ करने से विशेष लाभ रहता है।

धिरुप की उस स्थिति में जिस समय त्वचा अधिक ताप हो तब जिंक ओक्साइड और टेलकम पाउडर ही लगाना चाहिये।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से शत घोंत घृत का लेप करना चाहिये या शीतल नी के मण्ड ज्वारि सह उपरीतन स्वच्छ द्रव माग, दुध, मुलहठी से सेवन करना चाहिये या पंचवल्कल कषाय के जवाय से या केवल शीतल जल से ।

यथोक्त चरक:-

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

पुतेन शतघोतेन प्रथितार्त्थवतेन च ।







घृतमण्डेन शीतेन पक्का मधुकाम्बुना।

पंचवत्कषायेण सेचयेच्छीतलेन वा।

वातासृक्पित्तबुलं विसर्पं बहुशः पुनश्च।

( च० चि० अ० २१ श्लोक ६४ )

कई पारम्प्रात्य चिकित्सक इस प्रकार की अवस्था में निम्नलिखित योग भी प्रयोग करते हैं।

|    |               |          |
|----|---------------|----------|
| १) | कैल्सीना      | २० ग्रेन |
| २) | जिंक ऑक्साइड  | २० ग्रेन |
| ३) | ग्लिसरीन      | ३० बुंद  |
| ४) | लाईकर कैलोसिस | १८ बुंद  |
| ५) | डिस्टिलड वाटर | १ औंस    |

या (२) लाईकर प्लम्बाई सव रसीटेट डिस्त, ६० बुंद

|    |              |          |
|----|--------------|----------|
| १) | जिंक ऑक्साइड | २० ग्रेन |
| २) | ग्लिसरीन     | ३० बुंद  |
| ३) | पानी         | १ औंस    |

जिस समय विसर्प में से झाव बचिक हो तो उस समय

झाव को रोकने के लिये इस प्रकार के लेप का प्रयोग करना चाहिये जो कि झाव को बन्द कर सके। ऐसी अवस्था में चिकित्सा में निम्न योग प्रयोग में लाते हैं।

|                 |           |
|-----------------|-----------|
| जिंक ऑक्साइड    | १२० ग्रेन |
| प्लवस्मीलाई     | १२० ग्रेन |
| पेराफॉस्फोर मोल | १ औंस     |

इस का प्रलेप प्रयोग करने से क्वी विशेष लाभ देला गया है।







वायुर्वेदीय मतानुसार दूषित द्राव को रोकने के लिये

निम्न औषधियें प्रयोग में जाती हैं।

- १- कमल की जड़ के कीचड़ का लेप।
- २- मोटी पिष्टी का लेप। या
- ३- शल, भुंगा, सीप
- ४- गेरु इनमें किसी एक को घी में मिला कर लेप करना चाहिये।

यह सब प्रलेप विसर्प के लिये विशेष हितकारी हैं। यदि रोगी की आवश्यकतानुसार गेरु और मोती को जल में मिला कर लेप करना हो तब भी हितकारी रहती है।

यथोक्तम् :-

पद्मिनीकर्मः शीतो मोक्षिकं पिष्टमेव वा।

शङ्गः प्रवालाः सुक्तिर्वा गैरिको वा घृताप्लवः।

पृथगेते प्रदेहाश्च हिता ज्ञेया विसर्पिणाश्च॥

( च० वि० अ० २१ श्लोक ८१ )

इस प्रकार के द्राव को रोकने के लिये निम्नलिखित पत्रों

का प्रयोग भी घृत में मिलाकर होता है।

योग न० १

~~~~~

वन्ततास पत्र

निसुडी की क्षात

दोनों को घृत में मिलाकर लेप करना चाहिये।

योग न० २

~~~~~

१- सम्भातु पत्र

२- कर्कोटी पत्र



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

( १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ )

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥

॥



## ३- शिरस पुष्प

इनको धृत में मिलाकर लेप करना चाहिये।

योग नं० ३

- १- शैवाल
- २- नल की जड़
- ३- विदारी कन्द
- ४- गन्ध प्रियंगु कृत में मिलाकर लेप करें।

योग नं० ४

त्रिफला

मुलहठी

वि-दारी कन्द

शिरस पुष्प या को धृत में मिला कर लेप करें।

योग नं० ५

- १- पुण्डरीक काष्ठ
- २- सुगन्धवाला
- ३- दारु हल्दी क्षाल
- ४- मुलहठी
- ५- बला इन्हें भी धृत में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।

नोट:- ये प्रलेप यदि कफ प्रधान विषर्प हों तो कम धृत मिलाना चाहिये यदि वातिका या पेटिका विषर्प हो तो धृत अधिक मात्रा में मिला सकते हैं।



एक शब्द - 1

जिसका अर्थ है 'एक' के लिये

१ of 10

द्वय - 2

दो शब्द - 2

एक शब्द - 1

जिसका अर्थ है 'एक' के लिये

१ of 10

तत्त्व

विषय

एक शब्द - 1

जिसका अर्थ है 'एक' के लिये

१ of 10

एक शब्द - 1

द्वय - 2

दो शब्द - 2

विषय - 2

जिसका अर्थ है 'एक' के लिये

एक शब्द - 1

जिसका अर्थ है 'एक' के लिये

१ of 10



यदि विसर्प में म्लिच्छ पेशित लक्षणों की अधिकता हो तो पाश्चात्य चिकित्सा भी इसमें विरेचन के लिये बाईमरुन्टीमोनियल के १० बुन्द को मात्रा में यथोचित प्रयोग करते हैं। इससे लाभ रहता है। आयुर्वेद में भी ऐसे समय विरेचन और रक्त का निकालना जादि उपचार कहे गये हैं, यथा:-

तस्माद्विरेकमेवादी शस्तं विषादिसर्विणः।

रुधिरस्यावसेकं च तद्ध्यस्यात्र्यसंज्ञितम्॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ४८ )

यदि विसर्प का स्वरूप मन्दावस्था में हो तो पाश्चात्य चिकित्सक मन्द घोलों का प्रयोग करते हैं। यदि वही विसर्प चिरकालीन अवस्था से रुग्ण हो तर्ग करता आया तो निम्नलिखित मरहम की अच्छी तरह से त्वचा में प्रवेश करते हैं जिससे कि रोग की शान्ति हो जाये।

योग:-

- १- पारा ( हाईड्राजराई सोडिस्टा )
- २- सैलीसिलिक एसिड
- ३- टार ( लार्डर कार्ब डिटर्जीन )
- ४- वाक्सलीन

इन की यथोचित मात्रा में मरहम बनाकर त्वचा पर लेप करने से लाभ होता है।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से चिरकालीन विसर्प की चिकित्सा निम्नलिखित योग प्रयोग में लाये जाते हैं।

दुषाधृत:-

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



1. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित समय देना चाहिए।

2. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित स्थान देना चाहिए।

3. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित विधि अपनानी चाहिए।

4. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित लक्ष्य रखना चाहिए।

— डॉ. ए. ए. ए. —

1. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित समय देना चाहिए।

2. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित स्थान देना चाहिए।

( 25 अक्टूबर 1955 को जारी )

3. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित विधि अपनानी चाहिए।

4. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित लक्ष्य रखना चाहिए।

5. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित विधि अपनानी चाहिए।

6. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित लक्ष्य रखना चाहिए।

— डॉ. ए. ए. ए. —

( 1 अक्टूबर 1955 को जारी ) 1000 1000

अध्ययन विधि 1000 1000

( 1 अक्टूबर 1955 को जारी ) 1000 1000

अध्ययन विधि 1000 1000

7. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित विधि अपनानी चाहिए।

8. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित लक्ष्य रखना चाहिए।

9. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित विधि अपनानी चाहिए।

10. प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित लक्ष्य रखना चाहिए।

— डॉ. ए. ए. ए. —



~~नैऋत्य-मन-न~~ केवल मात्र दूरी से साधित धृत को लेप करने से ही विशेष शान्ति होती है।

इसके अतिरिक्त स्तने ग्रणों पर दाव्याधिवर्णन को लगाने से भी लाभ होता है।

दाव्याधिवर्णनद्रव्यः-

०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०

१- दाहहल्दी का छिन्का

२- मुलहठी

३- लोण

४- नागकेशर इन को समान लेकर बुरक-ने योग्य बारीक करके प्रयोग में लाये।

प्रायः विसर्प रोगियों को तीव्र औषधियों का प्रयोग हितकारी नहीं रहता है। बल्कि उन औषधियों से यह रोग वृद्धि को प्राप्त होता है। अतः जितने भी लेप आदि लाये जायें उनके द्रव्य तीक्ष्ण नहीं होना चाहिये और लेपों का प्रयोग करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि लेप सुखने न पाये क्योंकि प्रलेपों को गीला रखने से रोगी को शान्ति मिलती है इसमें चरक भी सहमत है यथा:-

प्रवेहाः सर्वे स्वैते कर्तव्याः संप्रसादनाः।

ज्ञाणे ज्ञाणे प्रयोक्तव्याः पूर्वमुद्रणं पूर्वमुद्रणं लेपनम्॥

( च० वि० व० २१ श्लोक ६८ )

पारम्पर्य विज्ञानवेत्ता भी इस रोग की स्थानीय चिकित्सा

( में ग्रण आदि को तर रखते हैं। इस

विषय का







में प्रतिपादन किया है।

66. It is more than doubtful if any benefit is to be derived from drugs given internally in this disease, antiseptics or a dusting powder of starch and zinc oxide and the parts afterwards covered with cotton wool or a lotion of acetate of lead and extract of opium should be applied to the inflamed area.<sup>99</sup>

अधिक पुराने विसर्प में जब कफ शोध युक्त हो जाते हैं

तो उस समय अलकोहल का लेप करके इलाज जिलेटिन के बान्ध देते हैं।

यदि चकत्तों में अधिक सारिल होती हो तो उस समय सेलिसिलिक एसिड

और फीनोल प्रत्येक २० ग्रेन एक औंस में मिला रहती है। न- किरणों

का अल्प प्रयोग ५-७ दिन बाद किया जाता है।

स्ट्रैप्टोकोकल से युक्त विसर्प में रक्तनज्जि एक ग्रेन को

१।४ औंस स्ट्रिट थिरनायडोसाई में घोल कर लेप करना चाहिये:

|      |            |            |
|------|------------|------------|
| जधवा | १- जायोडिन | १ प्रतिशत  |
|      | २- मय      | ६० प्रतिशत |

दोनों का घोल बना कर प्रयोग करें। या जेन्सन वायलेट २ प्रतिशत पानी

यथोचित दोनों का घोल भी प्रयुक्त होता है। इसके कभी-कभी-बाद

|    |             |       |
|----|-------------|-------|
| १- | स्वन्ध्यात  | २ भाग |
| २- | किंगडोवसाईड | १ भाग |



15 JAN 1907

is more than double the amount of the  
to be derived from drugs given  
internally in this disease, and this  
a clustering powder of starch and zinc  
oxide and the parts of the body covered with  
cotton wool or a solution of acetate of lead  
and extract of opium should be applied  
to the inflamed area.

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907

15 JAN 1907



३- हाइड्रस लेनोलीन ४ भाग

४- वाक्सलीन १० भाग

मिलाकर प्रलेप करने से लाभ रहता है। जब ब्राव की अधिकता हो उस समय कैंलोमीन लोशन हितकारी माना गया है।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से ऐसी अवस्था में:-

- १- यव चूर्ण
- २- मुलहठी
- ३- घृत का लेप हितकारी रहता है।

यथोक्तम्:-

यवचूर्णसम्पुक्कं सघृतं प्रलेपनम् । जब विसर्प में पुन्य युक्त फुन्सियों की प्रवृत्ति हो तो पारद को प्रलेप रूप में या लोशन रूप में प्रयोग कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में लाँकर कार्बोडिजीन को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये।

ऐसी अवस्थाओं में आल्हावायलेट रश्मियों का प्रयोग हितकर रहता है।

रोगी के शरीर से वैक्सीन बनाकर भी प्रयुक्त करने से रोगी को लाभ रहता है।

यदि जीवाणुओं पर पेनिसिलिन का प्रभाव होकर वे नष्ट होते हैं तो पेनिसिलिन प्रयोग करना ही अधिक हितकारी है ऐसा पारश्चात्य चिकित्सकों का विचार है।

यदि मनुष्य बलवान् स्व रोग क्षमता शक्ति से युक्त है, तो सब विसर्प साध्य हो सकते हैं। उन के लिये पेनिसिलिन और सल्फा ड्रग









के द्रव्यों का प्रयोग विशेष रूपेण करना चाहिये ऐसा पाश्चात्य चिकित्सक मानते हैं। इन आविष्कारों से पूर्व यह रोग बहुत मकर परिस्थिति में रोगी को डाल कर उसके प्राणों को नाश कर देता था। इसी लक्ष्य को दृष्टिकोण में रखकर जितना कुछ अमलतास के आयुर्वेदीय योग निकाले गये हैं जिन पर विशेष अनुसन्धान भी किया गया है। ये बहुत हितकारी रहते हैं उनके प्रयोग से पेनसिलिन एवं सल्फा ड्रग्स की जरूरत में जाने की भी आवश्यकता नहीं रहती। उनका वर्णन आगे प्रसंगवश किया जायेगा।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से वाक्क और विरेक योग देने के पश्चात्, उपरोक्त अवस्थाओं में टार का प्रयोग न करके शीशम तेल और चीड़ा तैलों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है।

वास प्रयोगों के लिये दशांग लेप या त्रायमाण आदि द्रव्यों के योग भी उत्तम हैं।

आभ्यन्तरीय प्रयोग निमित्त १) अमृताक्षुर २) माणिक्य-रस ३) गुडुच्यादि लोह, केशोर कटी ५) त्रिफला गुग्गुल ६) अमृतादि कवाथ ७) त्रिफला चुर्ण एवं नव कषाय गुग्गुल आदि शास्त्रीय योग हितकारी रहते हैं।

रोगी को मल संवय अधिक रहने से वस्त्र कर्म भी कराना हितकर रहता है।

जिस विसर्प में पाक्व संस्थान विकार ज्यादा हों उसमें आयुर्वेदीय द्रव्यों में से अनार आदि द्रव्यों के प्रयोग और पाश्चात्य मतानुसार उद्र हरिकाम्प और फेब्रेटिक एक्सट्रैक्ट का प्रयोग हितकर रहता है।







यदि सब उपाय व्यर्थ हो जायें तो वैक्सीनों का प्रयोग भी हितकारी रहता है। शोध और प्राव युक्त विसर्प के लिये यथादोष चिकित्सा प्रलेप एवं अन्य स्नान रस रसायनों द्वारा करनी चाहिये जैसे रोगी की अवस्था हो? ऐसी अवस्थाओं में विटामिन बी और पाषाण लवक ( *CALCIUM* ) प्रधान आंशधियों अधिक हितकारी रहती हैं।

यदि विसर्प किसी वस्तु के असात्म्य प्रयोग से हुआ हो तो ऐसी असात्म्य प्रधान ( स्लार्जिक प्रधान ) अवस्था में रोगी के रक्त को निकालकर उसका उचित मात्रा में इन्जेक्शन रोगी के बलाबल एवं अवस्था आदि का ध्यान रखते हुए करना हितकर रहता है।

सीवन का विसर्प यदि स्लार्जिक हो तो उस समय चिकित्सा एण्टी हिस्टेमिन आंशधियों से करनी हितकारी रहती है। रात्रि के समय कैल्सीन क्रीम का प्रयोग करना चाहिये। दिन में आयुर्वेदोक्त योगों में से गुलर और पीपल छाल के चुर्ण को या शंख चुर्ण ( या भस्म ) और गेरू का अवचूर्णन करें। यहां पर शंखभस्म अधिक हितकारी रहती है जो केवल अग्नि में ही फुंकी गयी हो उसे नीम्बू के रस आदि की भावना न दी गयी हो।

विसर्प की शोध और जल को शान्त करने के निमित्त जिस स्थान पर यह शोध आदि उपद्रव हो उस जगह के चारों तरफ ३ इंच की दूरी दूरी मिनम टिकर वायोडीन का इन्जेक्शन करने से बहुत लाभ होता है। इसे शीघ्र लाभ प्राप्ति निमित्त इसे प्रातः और सांयंकाल ६-७ बजे ही लगाना चाहिये।







सीरम और वैक्सीन:-

०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३ ०३

जिस समय रोगी को अन्य कोई औषधि वादि लाभ-  
कारी न हो तो इसके निमित्त बने हुए सीरम और वैक्सीन का भी प्रयोग  
ठीक रहता है। उनमें से एण्टीस्त्रेप्टो कोक्स सीरम और स्त्रेप्टो कोक्स  
वैक्सीन इनका ही प्रायः प्रयोग ज्यादा होता है। अतः रोगी के रोग  
की अवस्था वादि का ध्यान रखते हुए जो योग उचित लगे उसी का प्रयोग  
कर चिकित्सा में सफलता प्राप्त करनी चाहिये। रोगी को देखकर घबराने  
से वैद्य और डाक्टर चिकित्सा में सफल नहीं हो सकता। उसे अपनी आत्म-  
शक्ति पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये। नहीं तो रोगी की चिकित्सा  
में उसे सफलता प्राप्त करनी कठिन है।

०१ ०२ ०३ ०४ ०५ ०६ ०७ ०८ ०९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

## विषय की दोषानुसार चिकित्सा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

### १- वातज विसर्प चिकित्सा:-

*[Faint, illegible handwritten text]*

इस विसर्प का वातशामक द्रव्यों का प्रयोग हितकारी है।

इस विवरण के निमित्त निम्न प्रलेख हितकारी रहते हैं।

योग नं० १

- (१) रास्ता
- (२) नीलकमल
- (३) देवदारु
- (४) लाल चन्दन
- (५) मुलहठी
- (६) सोंटी    इनका क्वाथ बनाकर घृत और दुग्ध में मिला







लेप करना चाहिये।

इसके साथ पंचनिम्ब चुर्ण, विसर्पनाशक कर्क, शतावरी चुर्ण, कामदुग्धा रस, मज्जिष्ठादि क्वाथ, पंचतित्त घृत, केशोर बटी आदि में से भी यथावस्था प्रयोग कर सकते हैं।

योग नं० २

—————

- १- साँया
- २- नागरमोथा
- ३- नीलफिण्टी
- ४- धनियां
- ५- देवदारु
- ६- सुहांजा
- ७- कुठ

इनका लेप करना हितकर है।

योग नं० ३

—————

या निम्न द्रव्यों का लेप खूब क्वाथ कर प्रयोग करना वातज विसर्प में हितकारी है।

- १- साँफ
- २- देवदारु
- ३- कुठ
- ४- वराहीकन्द
- ५- धनियां
- ६- सुहांजा बीज



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

विद्यायाः साक्षात्कारं, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु

विद्यायाः साक्षात्कारं, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु

विद्यायाः साक्षात्कारं, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

|          |    |
|----------|----|
| गुरुभ्यो | -१ |
| गुरुभ्यो | -२ |
| गुरुभ्यो | -३ |
| गुरुभ्यो | -४ |
| गुरुभ्यो | -५ |
| गुरुभ्यो | -६ |
| गुरुभ्यो | -७ |

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

विद्यायाः साक्षात्कारं, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु, यत्नं प्रयासं यत्नं कुरु

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

|          |    |
|----------|----|
| गुरुभ्यो | -१ |
| गुरुभ्यो | -२ |
| गुरुभ्यो | -३ |
| गुरुभ्यो | -४ |
| गुरुभ्यो | -५ |
| गुरुभ्यो | -६ |



७- उष्णगण ( भद्रदावादि, पीपल्यादिगण )

इसके अतिरिक्त निम्न द्रव्यों से सिद्ध किये हुए प्रदेह, सेक, घृत और तैल आदि भी हितकारी होते हैं।

१- कण्टक पंचमूल ( करमंद, गोंसह, पियावांसा →  
शतावर और बेरी )

२- लघु पंचमूल

३- वहदपंचमूल

४- वल्लिपंचमूल ( विदारीकन्द, सारिवा, हरिद्रा,  
गिलोय, मैषांशु )

इन योगों से सेक एवं लेप और केवल क्वाथ भी तैयार कर रोगी की अवस्थानुसार प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

ये मूल सब मिलाकर एवं उपरोक्त औषधियों भी मिला कर क्वाथ तैल आदि तैयार किये जा सकते हैं। या केवल इन अकेले अकेले मूलों से या समस्त मूलों के स्कन्धीकरण द्वारा भी योग तैयार करके प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

यद्यपि वातिक रोगों की चिकित्सा निमित्त स्नेह प्रधान चिकित्सा कही गयी है परन्तु फिर भी जहाँ पर दोषों की दुष्टि की अधिकता हो वहाँ पर घृत आदि द्रव्यों का प्रयोग हानि-कर ही रहता है, जैसे कि लिखा है:-

वातोत्वणं तिवत्तघृतं पेक्षितं च प्रशस्यते।

लघुदोषे, महादोषे पेक्षितं स्याद्विरेचनम्।

न घृतं बहुदोषाय देयं यन्न विरेचयेत्।

तेन दोषो त्वष्टव्यस्त्वह्नासंरुधिरं पचेत्







तस्माद्विरेकमेवादौ शस्तं विद्याद्विसर्पिणः।

रुधिरस्यावर्तकं च तद्व्यस्यत्रयमङ्गितम्॥

( च० चि० अ० २१ श्लोक ४६-४८ )

दोषों की निराम्यता में विसर्प रोगनाश निमित्त स्नेहन योगों का भी प्रयोग हितकारी रहता है। यदि दोष सम हों उनकी स्नेहन चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, यथा:-

निरामे श्लेष्मणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम्।

धृतं तिक्तं महातिक्तं कृतं वा त्रायमाणया॥

( अष्टांग हृ० चि० अ० १८ श्लोक ६ )

इससे सिद्ध होता है कि आमवात में इस रोग की चिकित्सा के लिये महातिक्त धृत और त्रायमाण धृत आदि स्नेहन द्रव्य भी हितकारी रहते हैं।

यदि वायु आमदोष युक्त होकर कफ स्थान में स्थित हो जाये तो अल्प शीतल, अल्प उष्ण एवं रुद्ध लेप करने चाहिये।

यदि आम वायु रक्त और पित्त स्थान तक पहुँच जाये तो अत्यन्त शीतल पतले लेप करने चाहिये। इन लेपों को वस्त्रों से ढकना चाहिये और उन्हें कुछ कुछ समय बाद अवश्य बदलते रहना चाहिये नहीं तो लाभ की के स्थान पर हानि रहती है क्योंकि ये लेप शीघ्र ही हीन वीर्य हो जाते हैं।

यदि वातपित्तकफ की दृष्टि से रक्त शालाकों में दृष्ट होकर स्थित हो जायें तो उनके नाश के लिये रक्त आदि का निर्हरण इस प्रकार कराये--

१- वात प्रधान रक्त विकृति में सिंगी का प्रयोग



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( २५-२६ अंक ३७ ०० ०० ०० )

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( ३ अंक २७ ०० ०० ०० )

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



२- पित्तप्रधान रक्त विकृति में जलोका का प्रयोग।

३- कफ युक्त रक्त विकार में जलाबु ( तुम्बी का प्रयोग कराने से विसर्प में लाभ रहता है।

या जिस स्थान पर विकार हो उसके समीप स्थित सिरा का वेधन करके रक्त निकाल देना चाहिये ऐसा करने से लाभ होता है उस स्थान के त्वचा मांस और स्नायु गलते नहीं हैं।

इस प्रकार जब आम्यन्तरीय दोषों को शून्य कर दिया हो तब ही ये वाह्य प्रयोग प्रलेप आदि कार्यकारी सिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं।

यदि दोष अल्प हों तो लेप आदि की चिकित्सा लाभकारी रहती है। ऐसी अवस्था में रक्त को निकालना आवश्यक नहीं है। केवल प्रलेप आदि से लाभ होता है।

### विसर्प में हितकारी कषाय

न० १ मुस्तादि क्वाथ:-

१- नागरमोथा २- नीम की छाल ३- फटोलपत्र

ये सब मिलित २ तोले। क्वाथार्थ जल ३२ तोला। अवशिष्ट क्वाथ ८ तोला रहने पर प्रयोग में लायें। इसी प्रकार अन्य कषायों की कल्पना भी उचित है।

क्वाथ न० २:-

लालवन्दन, नीलोफर। इन दो द्रव्यों का कषाय

पिलाना हितकारी है।

क्वाथ न० ३:-



मार्गिक १४ मार्गिक १५ मार्गिक १६ मार्गिक १७

मार्गिक १८ मार्गिक १९ मार्गिक २० मार्गिक २१ मार्गिक २२

१३ मार्गिक १४

मार्गिक १५ मार्गिक १६ मार्गिक १७ मार्गिक १८

मार्गिक १९ मार्गिक २० मार्गिक २१ मार्गिक २२ मार्गिक २३

मार्गिक २४ मार्गिक २५ मार्गिक २६ मार्गिक २७

मार्गिक २८ मार्गिक २९ मार्गिक ३० मार्गिक ३१

मार्गिक ३२ मार्गिक ३३ मार्गिक ३४ मार्गिक ३५

मार्गिक ३६

मार्गिक ३७ मार्गिक ३८ मार्गिक ३९

मार्गिक ४० मार्गिक ४१ मार्गिक ४२ मार्गिक ४३

मार्गिक ४४ मार्गिक ४५ मार्गिक ४६

मार्गिक ४७

मार्गिक ४८

मार्गिक ४९ मार्गिक ५० मार्गिक ५१

मार्गिक ५२ मार्गिक ५३ मार्गिक ५४ मार्गिक ५५

मार्गिक ५६ मार्गिक ५७ मार्गिक ५८ मार्गिक ५९

६०

मार्गिक ६१

मार्गिक ६२ मार्गिक ६३ मार्गिक ६४

मार्गिक ६५

मार्गिक ६६



१- सारिवा २- बावंला , लक्ष नागरमोथा इनका

सवाथ भी लाभप्रद है।

व्याथ नं० ४:- किरात सिक्तादि व्याथ:-

000

- १- चिरायता
- २- लोध
- ३- लालवन्दन
- ४- दुरालभा ( धमासा )
- ५- साँठ
- ६- कमलकेशर
- ७- नीलात्पल
- ८- नु बहेड़ा
- ९- मुलहठी
- १०- नागकेशर

कथाथ नं० ५ प्रपाण्डरीकाय कथाथ:-

[illegible]

- १- पुण्डरीककाष्ठ
- २- मुलवठी
- ३- कमलकौसर
- ४- नीलोत्पल
- ५- नागकेशर
- ६- लोच

६ द्राक्षादि शीतकषायः-

0 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99

- १- पुस्तकां







- ७- पटोलादि शीत कषायः-

- इनके अतिरिक्त इन में अन्य दो द्रव्य भी मिला सकते हैं।

८- कटुतैलम- पटोलादि क्वाथः-

- विसर्प नाशक प्रदेह, प्रलेप:-**

- १- फटोलपत्र
- २- मुंग
- ३- आंबला



पुष्पकान्त -५

पुष्प -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त पुष्पकान्त पुष्पकान्त पुष्पकान्त

पुष्पकान्त पुष्पकान्त पुष्पकान्त

पुष्पकान्त पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५

पुष्पकान्त -५



## २- कालीयादि प्रलेप:-

~~~~~

- |                                   |                          |
|-----------------------------------|--------------------------|
| १- कालीया की लकड़ी अथवा दारुहल्दी | ५- लालचन्दन              |
| २- मुलहठी                         | ६- मृणाल (कमलदण्ड का लस) |
| ३- नागकेशर                        | ७- प्रियंगु              |
| ४- केवटीमोथा                      |                          |

## ३- सारिवादि प्रलेप:-

~~~~~

- |             |             |
|-------------|-------------|
| १- अनन्तमूल | ५- मजिष्ठा  |
| २- पथकेशर   | ६- लालचन्दन |
| ३- लस       | ७- लोघ्न    |
| ४- नीलोत्पल | ८- हरड़     |

## ४- कल शाकलादिः प्रदेह:-

~~~~~

- |          |                |
|----------|----------------|
| १- दुष   | ४- लालचन्दन    |
| २- मृणाल | ५- नीलोत्पल    |
| ३- शल    | ६- वेतस की जड़ |

## ५- नलदाय प्रलेप:-

~~~~~

- १- नलद ( उशीर अथवा लामज्जक )
- २- हरेणु ( फट्ट या कावली मोटादान )
- ३- लोघ्न
- ४- मुलहठी
- ५- नीलोत्पल
- ६- दुष



-: प्रथम शीतलिका -१  
अथवा अथवा अथवा अथवा

|                           |                      |
|---------------------------|----------------------|
| प्रथमिका -१               | सकल प्रथम शीतलिका -१ |
| ( अथवा अथवा ) प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१          |
| प्रथमिका -१               | प्रथमिका -१          |
|                           | प्रथमिका -१          |

-: प्रथम शीतलिका -१  
अथवा अथवा अथवा अथवा

|             |             |
|-------------|-------------|
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |

-: प्रथम शीतलिका -१  
अथवा अथवा अथवा अथवा

|             |             |
|-------------|-------------|
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |
| प्रथमिका -१ | प्रथमिका -१ |

-: प्रथम शीतलिका -१  
अथवा अथवा अथवा अथवा

( अथवा अथवा प्रथमिका ) प्रथमिका -१

प्रथमिका प्रथमिका प्रथमिका प्रथमिका -१

प्रथमिका -१

प्रथमिका -१

प्रथमिका -१

प्रथमिका -१



६- वन्मज प्रदेह:-  
 ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

१- यावक( जो की खागू)या १- मुलहठी

२- सक्तु

२- विदारीकन्द

३- जो सक्तु

७- वलाचालेपन:-  
 ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

१- वला

२- नीलोत्पलकन्द

३- विदारीकन्द

४- जार

५- लालचन्दन

या इसमें कमल की जड़ खं कमल दण्ड भी मिला लें।

८- यवचूर्णादि प्रदेह:-  
 ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

|                 |      |             |
|-----------------|------|-------------|
| जो का जाटा      | } या | १ मगर       |
|                 |      | २ मसूर      |
| मुलहठी का चूर्ण |      | ३ मुंग      |
|                 |      | ४ श्वेतशालि |

९- पद्मिनी प्रलेप:-  
 ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पद्मिनी के जड़ पर लगा कीचड़ या मुंगा, रत्न, सीप,

गेरू का प्रलेप घृत मिश्रित करके लगाना चाहिये।

११- प्रपाण्डरीकाय प्रलेप:-  
 ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

१२ पुण्यरीकाकाष्ठ

२- मुलहठी







- ३- बला
- ४- कमलादिकाकन्द
- ५- नीलोत्पल
- ६- बट पत्र
- ७- दुग्धी

### १२- शैवालादि लेप:-

- १- जल में होने वाली हरियाली
- २- नदों की जड़
- ३- गावजवां ( गोजी )
- ४- मुसाकर्णी
- ५- इन्द्राणीरु ( सम्भालु पत्र )

### १३- न्यग्रोधादि प्रलेप:-

- १- बरगद
- २- गुलर
- ३- प्लास ( पिल्लन )
- ४- वेतस
- ५- पीपल
- ६- जामुन

### मुनिम्बादि क्वाथ:-

- १- विरायता २- अहसा ३- कुटकी ४- कड़वे फटोलपत्र
  - ५- हरड़ वहेड़ा जांवल ६- तातचन्द ७- नीम की छाल। इन द्रव्यों
- के क्वाथ को पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्डू, विस्फोट



1. ... ..  
2. ... ..  
3. ... ..  
4. ... ..  
5. ... ..  
6. ... ..  
7. ... ..  
8. ... ..  
9. ... ..  
10. ... ..  
11. ... ..  
12. ... ..  
13. ... ..  
14. ... ..  
15. ... ..  
16. ... ..  
17. ... ..  
18. ... ..  
19. ... ..  
20. ... ..  
21. ... ..  
22. ... ..  
23. ... ..  
24. ... ..  
25. ... ..  
26. ... ..  
27. ... ..  
28. ... ..  
29. ... ..  
30. ... ..  
31. ... ..  
32. ... ..  
33. ... ..  
34. ... ..  
35. ... ..  
36. ... ..  
37. ... ..  
38. ... ..  
39. ... ..  
40. ... ..  
41. ... ..  
42. ... ..  
43. ... ..  
44. ... ..  
45. ... ..  
46. ... ..  
47. ... ..  
48. ... ..  
49. ... ..  
50. ... ..  
51. ... ..  
52. ... ..  
53. ... ..  
54. ... ..  
55. ... ..  
56. ... ..  
57. ... ..  
58. ... ..  
59. ... ..  
60. ... ..  
61. ... ..  
62. ... ..  
63. ... ..  
64. ... ..  
65. ... ..  
66. ... ..  
67. ... ..  
68. ... ..  
69. ... ..  
70. ... ..  
71. ... ..  
72. ... ..  
73. ... ..  
74. ... ..  
75. ... ..  
76. ... ..  
77. ... ..  
78. ... ..  
79. ... ..  
80. ... ..  
81. ... ..  
82. ... ..  
83. ... ..  
84. ... ..  
85. ... ..  
86. ... ..  
87. ... ..  
88. ... ..  
89. ... ..  
90. ... ..  
91. ... ..  
92. ... ..  
93. ... ..  
94. ... ..  
95. ... ..  
96. ... ..  
97. ... ..  
98. ... ..  
99. ... ..  
100. ... ..



पिपासा और वमन को नष्ट करता है।

इन योगों को और अल्प रस रसायन आदि के योगों को प्रयोग में लाने से लाभ रहता है। जिनका वर्धन पहले किया जा-रह गया है। वायु और वाय्वन्तरीय दोनों प्रकार की चिकित्सा उचित रहती है।

## २- वैदिक विसर्प चिकित्सा:-

इस विसर्प में पित्त शामक शीत प्रधान चिकित्सा अधिक हितकारी रहती है। इसलिये जितने भी योग आदि इस चिकित्सा प्रयोग में लाये जायें उनमें पित्त शामक और शीतल प्रतिपादक गुण अधिक होने चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, यथोक्तम्:-

कुर्याच्चिकित्सादस्माच्छीतप्रायाणि पित्तं

रुक्ताप्रायाणि कफजे संहिकान्यनिलात्मके।

(च० चि० अ० २१ श्लोक ११५)

इसमें निम्नलिखित लेप हितकारी रहते हैं।

## योग नं० १ न्यग्रोधादिगण लेप:-

इस गण के समस्त द्रव्यों का लेप या जो उपलब्ध हों

उनका लेप हितकारी रहता है।

## घटक द्रव्य:-

- |            |           |
|------------|-----------|
| १- कट      | ५- मुतहठी |
| २- पिपल    | ६- कपीतन  |
| ३- उदुम्बर | ७- अर्जुन |
| ४- पोहकर   | ८- कदम्ब  |



१३ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

१४ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

१५ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

१६ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

१७

१८ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

१९ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२० तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२१ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२२ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२३ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२४ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

(२५) तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२६ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२७ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२८ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

२९ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३० तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३१ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३२ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३३ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३४ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३५ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३६ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३७ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत

३८ तबूत अह नि तबूत तबूत तबूत



|     |            |     |              |
|-----|------------|-----|--------------|
| ६-  | विदारी     | १७- | रोहिणी       |
| १०- | तिरुकी     | १८- | वैत          |
| ११- | शुक्ला     | १९- | मल्लिकार्जुन |
| १२- | सावर लोघ्न | २०- | पलाश         |
| १३- | जाम        | २१- | नन्दीवृक्ष   |
| १४- | चौरक पत्र  | २२- | प्रियाल      |
| १५- | जम्बू      |     |              |
| १६- | मधुर       |     |              |

#### योग नं० २ उत्पलादिगण लेप:-

यह भी विसर्प शामक एवं पित्त शामक है।

#### घटक द्रव्य:-

|    |           |    |          |
|----|-----------|----|----------|
| १- | उत्पल     | ५- | कुवलय    |
| २- | रक्तोत्पल | ६- | पौण्डरीक |
| ३- | कुमुद     | ७- | मुलहठी   |
| ४- | सांगंधिक  |    |          |

#### योग नं० ३

|    |                            |
|----|----------------------------|
| १- | न्यग्रोध वृक्ष के अंकुर    |
| २- | केला छुप के मध्यभाग का अंश |
| ३- | विसग्रन्थि                 |
| ४- | घृत                        |

इनको अच्छी तरह मिला कर लेप करने से लाभ रहता है।

#### योग नं० ४







- १- कमल की जड़ का कीचड़ का लेप करना चाहिये।  
 या २- मोतीपिष्टी  
 ३- शंखपिष्टी  
 ४- प्रवालपिष्टी  
 ५- गेरू

इन द्रव्यों में से <sup>एक</sup> एक को या इन समस्तों को  
 इकट्ठा करके भी लेप किया जा सकता है। लेप में धृत अवश्य मिला लेना  
 चाहिये।

#### योग नं० ५

- १- कसेरू  
 २- सिंगाड़े  
 ३- पद्मकाष्ठ  
 ४- गुन्द्र ( तृण विशेष )  
 ५- शेवाल  
 ६- कमल की जड़

इन द्रव्यों का लेप करते समय पहले पतले वस्त्र से विसर्प  
 के स्थान को जाच्छादित करें। फिर उस स्थान पर इस लेप को लगाने  
 से पित्तज विसर्प शान्त होता है।

#### योग नं० ६- गौर्यादि धृत:-

यह धृत पित्तज विसर्प के लिये अत्यन्त हितकारी है। इस  
 के अतिरिक्त इसका प्रयोग ग्रहग्रस्ति और शोष रोग से पीड़ित बालकों  
 के लिये भी हितकारी है। इस धृत को विसर्प पर लगाने के कार्य में



1. निम्नलिखित वाक्यों में कौन-कौन से अंग हैं ?

अङ्ग 1 - 1

अङ्ग 2 - 2

अङ्ग 3 - 3

अङ्ग 4 - 4

2. निम्नलिखित वाक्यों में कौन-कौन से अंग हैं ?

अङ्ग 1 - 1

अङ्ग 2 - 2

अङ्ग 3 - 3

अङ्ग 4 - 4

अङ्ग 5 - 5

अङ्ग 6 - 6

( अङ्ग 7 ) - 7

अङ्ग 8 - 8

अङ्ग 9 - 9

3. निम्नलिखित वाक्यों में कौन-कौन से अंग हैं ?

अङ्ग 1 - 1

अङ्ग 2 - 2

अङ्ग 3 - 3

4. निम्नलिखित वाक्यों में कौन-कौन से अंग हैं ?

अङ्ग 1 - 1

अङ्ग 2 - 2



लाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विस्फोट, नाड़ीव्रण दुष्ट व्रण, शीरो  
रोग-६ एवं मुखपाक आदि- रोगों को दूर करने के लिये इसका प्रयोग  
पानार्थ किया जाता है।

बालकों के रोगों में इसका वाइय और आम्यन्तरीय  
दोनों प्रकार का प्रयोग होता है।

#### घटक द्रव्य:-

|               |                      |
|---------------|----------------------|
| १- हल्दी      | ११- काकोली           |
| २- मुतहठी     | १२- मैदा             |
| ३- सालकमल     | १३- श्वेतकमल         |
| ४- लोघ्र      | १४- पृष्ठिपर्णी      |
| ५- सुगन्धवाला | १५- साँफ             |
| ६- तिरनी      | १६- कटादिकर्ण        |
| ७- गेरू       | १७- विदारिगन्धादि गण |
| ८- कृष्णम     | १८- बृहत्पत्रमूल     |
| ९- पद्माल     | १९- दुध              |
| १०- सारिवा    |                      |

इन द्रव्यों से शास्त्रीय विधि अनुसार कृत पाक करके  
प्रयोग में ला सकते हैं।

यदि पेक्कि विसर्प में पिप्सा उपद्रव हो तो दुरालभादि  
कषाय या हिम का प्रयोग करना चाहिये। या द्राव्यदि कषाय का प्रयोग  
करें।

#### दुरालभादि कषाय:-







- १- धमासा
- २- पित्तपापड़ा
- ३- गिलोय
- ४- सोंठ

इन का क्वाथोक्त विधि से क्वाथ बना कर प्रयोग में लाना चाहिये।

#### दाव्यादि कषाय:-

- १- दारु हल्दी
- २- पटोलपत्र
- ३- कुट
- ४- मसूर
- ५- त्रिफला
- ६- नीमझाल
- ७- मुलहठी
- ८- मुलहठी

६- धृत-- यथा विधि मिलाकर पान कराने से रोगी को लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त पित्तशामक जो प्रदेह प्रलेप आदि वात-शामक चिकित्सा प्रकरणों में लिखे हैं उनमें से जो रोगी की अवस्थानुसार ठीक बैठे उनका और रसरसायनों का प्रयोग, यथोचित मात्रा में अवस्था-यथा स्थान कराया जा सकता है।

#### ३- कफज रोग चिकित्सा:-

इस रोग की चिकित्सा रूढ़ प्राय होनी चाहिये इसमें



तुलना -१

तुलना -२

तुलना -३

तुलना -४

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

तुलना -५

तुलना -६

तुलना -७

तुलना -८

तुलना -९

तुलना -१०

तुलना -११

तुलना -१२

तुलना -१३

तुलना -१४

तुलना -१५

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥  
 ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥  
 ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

तुलना -१६

तुलना -१७



इसमें कफ दोबहर द्रव्यों का प्रयोग अधिक हितकारी है। इस निमित्त निम्नलिखित मुख्य मुख्य योग दिये जाते हैं उनका यथाचित प्रयोग चिकित्सक को रोगी के बलावल अनुसार करना चाहिये।

#### १- त्रिफलादि प्रलेपः-

- |           |               |
|-----------|---------------|
| १- हरड़   | ५- लस         |
| २- बहेड़ा | ६- ताजवन्ती   |
| ३- जांवल  | ७- कोर की जड़ |
| ४- पदमास  | ८- जन्तभूल    |

इन्हें रगड़ कर इसमें थोड़ा सा घृत मिलाकर जल डाल कर अच्छी तरह से लाने योग्य बनाकर विकृत स्थान पर लगाने से लाभ रहता है।

यत्तव्यः-

कफज प्रलेप आदि में घृत की मात्रा बहुत कम रखनी चाहिये। लाने के लिये भी इस विसर्प में विसर्पहर घृत आदि का प्रयोग लाभकारी नहीं रहता।

#### सदिराचालेपः-

- |                   |   |
|-------------------|---|
| १- कश्या          | ५- धव की छाल  |
| २- सप्तपर्णी      | ६- कुरण्टक ( पीली <sup>फिण्डी</sup> <del>मिण्डी</del> ) |
| ३- नागरमांथा      | ७- देवदारु  |
| ४- कमलतास के पत्र |   |

इसका लेप भी थोड़ा घृत मिला कर हितकारी रहता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पांच योगों का पुष्ट पुष्ट अथवा दो दो







को मिलाकर या सबको मिला प्रलेप रूप में प्रयोग करना हितकारी रहता है।

योग नं० १

- १- अमलतास पत्र
- २- लसुई की छाल।

योग नं० २

- १- सम्भालू पत्र
- २- मकोय पत्र
- ३- शिरीष के फूल

योग नं० ३

- १- शेवाल
- २- नलमुल
- ३- विदारीकन्द
- ४- गन्धप्रियंगु।

योग नं० ४

- |            |                    |
|------------|--------------------|
| १- त्रिफला | ३- विदारीकन्द      |
| २- मुलहठी  | ४- शिरीष के पुष्प। |

योग नं० ५

- १- पुण्डरीक काष्ठ
- २- सुगन्धवाला
- ३- दारुहल्ली



सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

13

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म

विद्यायां सर्वतः परमं हि ज्ञानं ब्रह्म



४- मुलहठी

५- बला।

इन सब योगों को प्रलेपार्थ प्रयोग करते समय बल्प घृत मिलाना चाहिये। यदि बात पित्त प्रधान विसर्प हो तो इनका प्रयोग अधिक घृत डाल कर ही करना चाहिये। बाग्मट के अनुसार प्रलेपों के द्रव्य जो इस विसर्प में हितकारी रहते हैं। वे इस प्रकार हैं।

प्रलेप योग १--

१- त्रिफला

४- कनेर

२- खस

५- मजीठ

३- पद्मस

६- सारिवा

७- नलमूल

इनका लेप कफज विसर्प में हितकारी रहता है।

प्रलेप योग नं० २

वच, सप्तपर्ण, देवदारु, कुरण्टक, मुनक्का, वमस्तास इनका या वरुणादि गण के द्रव्यों का लेप भी इसमें विशेष हितकारी रहता है।

वरुणादिगण को पानार्थ, अभ्यगार्थ एवं भोजनार्थ भी प्रयोग किया जा सकता है। इसका महत्त्व सुश्रुत ने भी बतलाया है।

गणस्तु योज्या वरुणप्रवृत्तः

क्रियासु सर्वासु विचक्षणैः ।

( सु० चि० अ० १० श्लोक १६ )

योग नं० ३

१- वनतुलसी



विष्णु -४  
ब्रह्मा -५

तुम्हारे पास जो भी है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है

|           |    |          |    |
|-----------|----|----------|----|
| विष्णु    | -४ | ब्रह्मा  | -५ |
| शिव       | -५ | महेश्वर  | -६ |
| पारमेश्वर | -६ | परमेश्वर | -७ |
| महेश्वर   | -७ |          |    |

मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है

५०१ विष्णु

महेश्वर, पारमेश्वर, परमेश्वर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव

मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है

महेश्वर, पारमेश्वर, परमेश्वर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव

मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है  
मैंने तुम्हें जो भी दे दिया है उसे मैंने दे दिया है

( ५०१ विष्णु ५०१ विष्णु )

५०१ विष्णु

विष्णु -४



२- बरगन्धा

३- निशोध

४- मंजीठ

५- शतावर

६- मेढासिंही

इन द्रव्यों को गोमूत्र में मिलाकर लेप करना हितकारी रहता है।

#### योग नं० ४

१- तगर

७- वच

२- कार

८- इन्द्रायण

३- दालचीनी

९- काली बनन्तमुल

४- गुग्गा

१०- भुज

५- सुरमा

११- गोरक्षमुण्डी

६- सोंफ

इनका प्रलेप भी जलमें या गोमूत्र में मिलाकर करना लाभ-  
प्रद रहता है।

#### योग नं० ५

इस रोग में दशांग लेप का भी प्रयोग अवस्थानुसार उचित

रहता है।

#### घटक द्रव्य:-

१- शिरस की हाल

५- लस

२- तगर

५- छोटीस्तायवी

३- मुलहठी

६- जामांसी



15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947

15 मई 1947



७- हल्दी

६- कुठ

८- दारुहल्दी

१०- सुगन्धवाता

इन दस द्रव्यों का लेप करने से विसर्प रोग नष्ट होता है। परन्तु इस लेप को विसर्प निमित्त उचित धृत में मिलाकर लेपन करना प्रशस्त है।

यथोक्तम्:-

लेपो दशांगं सधृत प्रयोज्यो

विसर्पं कुष्ठं ज्वरं शोथहारी

( भा० चि० अ० ५६ श्लोक ३२ )

इसके अतिरिक्त अन्य रस रसायनों में से अवस्थानुसार योगों का प्रयोग करना चाहिये।

वातपित्तोत्पण ( आग्नेय ) विसर्प चिकित्सा की चिकित्सा दोनों के अनुसार पूर्वोक्त प्रदेश प्रलेप जादि से की जाती है। परन्तु इस रोग में इन योगों में अधिक धृत मिला कर लगाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जो शास्त्रीय योगों की सूची दी है उसमें से जो योग उचित प्रतीत दे इसका प्रयोग रोगी की अवस्था के अनुसार कराना भी साथ साथ उपयोगी रहता है जैसे :-

प्रवालपिष्टी , मुक्तापिष्टी, त्रिफलाचूर्ण, केशोरवटी, शतावरी धृत और त्रिफला-धृत आरोग्यवर्द्धिनी जादि योगों को निर्भय पूर्वक सेवन कराया जा सकता है।

यदि विसर्प में वात और रक्तपित्त की दृष्टि अधिक हो तो वेध को निम्नलिखित योगों का प्रयोग कराना चाहिये।

योग न० १

शतपुत्र का शरीर पर लेप या केवल मात्र धृत का लेप भी



पृष्ठ - 3

दिनांक - 1911

प्राप्तकर्ता -

प्राप्तकाल -

महोदय जी, मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ कि

आपके पत्र पर मैंने बहुत ध्यान दिया है और मैंने

उत्तर दिया है

आपका उत्तर

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

( 10 मिनट में 100 वीं बार )

आपका उत्तर मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

आपका उत्तर मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है

मैंने बहुत ध्यान दिया है



हितकर है।

योग नं० २  
~~~~~

शीतल घी का ऊपर वाला स्वच्छ भाग २) दूध

३) मुलहठी के क्वाथ से अवसेवन।

योग नं० ३  
~~~~~

पंचांगीरी वृक्षा के क्वाथ का सेवन। पूर्वक कथित जितने भी प्रदेह एवं प्रलेप आदि के योग हैं उनके क्वाथों का भी यथादोष सेवन हितकर रहता है। और उन्हीं योगों के चुर्ण को व्रण पर अवचूर्णन ( बुरकाता ) करने के लिये प्रयोग में लिया जा सकता है।

योग नं० ४  
~~~~~

दुर्वा घृत का लेप भी इस अवस्था में हितकारी रहता है। इसके बाद , योग नं० ५, दाव्याधिव चुर्णन का प्रयोग यथावस्था करें।

घटक द्रव्यः#  
~~~~~

- |                      |            |
|----------------------|------------|
| १- दारुहल्दी का शिला | ३- लोघ्न   |
| २- मुलहठी            | ४- नागकेशर |

इनको एकत्र करकूट करके प्रयोग में लावे। दुर्वाघृत में केवल दुर्वा से ही घृत सिद्ध किया जाता है।

योग नं० ६:- फटोलादि क्वाथ विशेष प्रयोग:-  
~~~~~

- |               |             |
|---------------|-------------|
| १- फटोला      | ४- बहेड़ा   |
| २- नीम की छाल | ५- बावला    |
| ३- हरड़       | ६- मुलहठी   |
|               | ७- नीलोत्पल |



101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101

101



इन द्रव्यों के कषाय से व्रणों को अवसेकन या घोंना चाहिये।

इन्हीं द्रव्यों का प्रयोग प्रत्येक स्थ अवस्थान में भी किया जा सकता है।

जोर लामप्रद सिद्ध होता है।

५- कफ-पित्तज ( कर्दम ) विसर्प चिकित्सा

इस विसर्प की चिकित्सा कफ और पित्त शामक प्रलेप, प्रदेह, क्वाथ आदि द्वारा वाह्य रूप में और केशोर कटी, त्रिफला म गुग्गुल आदि द्वारा आन्तरिक रूप में प्रयोग कराने से की जाती है। वैद्य पूर्वकथित चिकित्सा योगों में से रोगी की अवस्थानुसार योगों की कल्पना का प्रयोग कर सकता है।

६- कफ पित्त जन्य ( ग्रन्थि ) विसर्प चिकित्सा

इस विसर्प में कफपित्त शामक द्रव्यों का प्रयोग करके रोगी की चिकित्सा बड़ी सावधानीपूर्वक करनी चाहिये। अतः इस निमित्त निम्न विधियों का अवलम्बन करना चाहिये क्योंकि इसमें रक्त पित्त प्रधान लक्षण भी होते हैं।

- १- ग्रन्थि विसर्प में रक्त पित्त नाशक द्रव्यों को प्रथम अवलम्बन करना चाहिये।
- २- इसके बाद कफ पित्त हर चिकित्सा उपनाह, पिण्ड स्वेद द्वारा करनी चाहिये।
- ३- रुक्ताण और संघ्न कर्म कराना चाहिये।
- ४- पंचवत्कल वृक्षां से प्रदेह और संक करने चाहिये।
- ५- सिरामोक्ष, जलोका द्वारा रक्त निर्हरण, वमन, विरेचन, कषाय और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों के ज्वार्यों द्वारा







द्वारा रोगी की चिकित्सा अवस्थानुसार करनी चाहिये।

६- शोधन आदि क्रियाओं द्वारा रोगी को शुद्ध करके फिर पूर्वोक्त रस, वटी आदि के योगों में से जो उचित हों उन्हें प्रयोग में लायें।

वाह्य प्रयोगार्थ निम्न ये उपनाह तेल आदि के योग हितकर हैं। इनसे ग्रन्थि में लाभ होता है।

यदि ग्रन्थि विसर्प में शूल की अधिकता हो गरम और स्निग्ध उपनाह ( पुल्लिस ) द्वारा सेक करना चाहिये।

१- दशमुलतेल:-  
 उज्जुज्जुज्जुज्जुज्जु

यह तेल दशमुल क्वाथ और कल्क से सिद्ध किया जाता है। इसको उष्णावस्था में लाकर ग्रन्थि विसर्प पर परिसेचन करना चाहिये।

२- कुष्ठतेल:-  
 उज्जुज्जुज्जुज्जुज्जु

यह तेल कुष्ठ और क्षारों के द्वारा निर्मित किया जाता है। इसमें क्षार सुशुत निर्देशित विधि से बनाये हुए डालने चाहिये। फिर इससे सेक दें।

३- गोमूत्रप्रयोग:-  
 उज्जुज्जुज्जुज्जुज्जु

इस गोमूत्र को गरम करके फिर इसमें जर्क, सम्भालू आदि के घत्र यथोचित मात्रा में उबालकर इस क्वाथ से सेचन करना चाहिये।

४- अश्वगन्धा प्रदेह:-  
 उज्जुज्जुज्जुज्जुज्जु

यह केवल अश्वगन्धा के कल्क द्वारा निर्मित होता है। फिर कल्क को उष्ण करके रुग्ण स्थान पर लायें।



ਮਿੱਥੀਆਂ ਵਿੱਚ ਸਾਧਨਾਂ ਤਰ੍ਹਾਂ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਜਿਹੇ ਹਨ ਜਿਹੇ ਹਨ ->

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ( ਜਿਹੇ ਹਨ ) ਜਿਹੇ ਹਨ

-ਜਿਹੇ ਹਨ -  
ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

-ਜਿਹੇ ਹਨ -  
ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ

-ਜਿਹੇ ਹਨ -  
ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

-ਜਿਹੇ ਹਨ -  
ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ

ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ ਤੇ ਜਿਹੇ ਹਨ



५- शुष्क मूली के कल्क या करंज हाल के कल्क को उष्ण करके भी प्रयोग में लाना-सकते हैं।

६- विभीतक के कल्क को गरम करके प्रयोग करने से भी ग्रन्थि बैठ जाती है।

### ७- वलाच प्रलेप:-

वला, नागवला, हरड़ भोजपत्र के वृक्ष की गांठ, बहेड़ा, बांस के पत्र वरणी की हाल इन के कल्क को उष्ण करके लेप करने से लाभ होता है।

जो ग्रन्थि चिरकालीन हो उस पर निम्न योग चिह्नकर रहते हैं।

### १- दन्त्यादि लेप:-

- १- दन्तीमूल की हाल
- २- चिक्क मूल की हाल
- ३- सेहुण्ड का दूध
- ४- भिलावे का बीज
- ५- हीराकसीस

इन सबको स्कन्धित करके पीसले फिर इसका लेप ग्रन्थि पर करदे रसा करने से ग्रन्थि टूट जाती है। यह रोग बड़ा भयंकर है। अतः रोगी की अवस्था आदि को देख कर ही वैद्य या डाक्टर को इसका प्रयोग करना चाहिये।

### आन्तरिक प्रयोगार्थ योग:-

योग नं० १

मूली, कूली इनका गुण बनाकर फिर उसमें चार







झार और जनार का रस मिलाकर पान करना हितकर है। इसके बाद भोजन से मधु और साण्ड आदि का प्रयोग करना चाहिये। और फिर ऐसा भोजन करने पर शीघ्र का प्रयोग भी आवश्यक है।

### योग नं० २

वारुणी में मधु और विजोरे नीम्बू का रस मिलाकर पीना हितकारी है। इस योग को भोजन के बाद ही प्रयोग किया जा सकता है। या जैसे रोगी उचित समझे जिससे यह योग असात्म्य न हो।

इसके अतिरिक्त त्रिफला प्रयोग मधु और पिपली को मिलाकर चूर्ण रूप में या क्वाथ रूप में किया जा सकता है। स्वर्णमादिक प्रयोग, देवदारु और गिलोय क्वाथ, शिलाजीत, शिरोविरेचनीय धूपपान मुस्ताय शक्तु, मत्स्यार्कय सुक्तु ये सब हितकारी रहते हैं।

इन ग्रन्थियों को बँटाने के लिये लोहा, नमक, पत्थर आदि द्रव्यों के द्वारा सेक करें। पहले इन द्रव्यों को कपड़े में लपेट लेना चाहिये नहीं तो रोगी को इन द्रव्यों का सीधा प्रयोग करने से त्वचा आदि की हानि होती है और पीड़ा सहन नहीं होती। अतः वस्त्र लगाकर सेक करना ही उचित है।

यदि इन क्रियाओं से भी यह ग्रन्थि न बँटे या न शान्त हो तो इस पर झारों द्वारा दाह या शक द्वारा अत्यन्त आवश्यकता अवस्था में करना चाहिये। शस्त्र को अग्नि में तपाकर रोगी के रुग्ण स्थान का उचित विधि से दाह करना चाहिये। या फकाने वाले द्रव्यों से ग्रन्थि को फका कर चीरा दे देना चाहिये। फिर उसमें से दुषित रक्त आदि निकालकर व्रण को जात्यादि तेल, घावहर तेल, करंजादि घृत एवं कम्पितलादि तेल द्वारा चिकित्सा करने से लाभ रहता है।







### कम्पित्कादि तेल:-

यह तेल विशेषकर ग्रन्थि विसर्प के लिये अत्यन्त उपयोगी है। अतः इसका वर्णन किया जाता है।

- १- कवीला
- २- वायविडंग
- ३- दारुहल्दी
- ४- करंजा

इनमें से तीन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर फिर उसमें कल्क रूप से कवीला डालकर तेल पाक विधि द्वारा तैयार करके प्रयोग में लाने से ग्रन्थि विसर्प में, इसके अतिरिक्त अन्य दुषित व्रणों नाड़ी व्रणों आदि में भी चमत्कारिक प्रभाव देता गया है। अन्य रस रसायन आदि उचित द्रव्यों का प्रयोग यथावस्था कर सकते हैं। जिनका वर्णन पीछे किया गया है।

### ७- सन्निपातज विसर्प की चिकित्सा:-

स्त-निसत्र-विसर्प-की-चिकित्सा इस विसर्प के बहु उपद्रव स्वरूप होने के कारण इसकी चिकित्सा बड़ी सावधानी से करनी चाहिये नहीं तो वंश कर्क को रोगी की चिकित्सा करते हुए सफलता नहीं प्राप्त होती। स्तदर्थ पूर्वकथित चिकित्सा के अनुसार त्रिदोषशामक द्रव्य प्रलेप, प्रदेह क्वाथ, घृत, तेल, रस रसायन आदि का प्रयोग करना चाहिये।

यदि इनमें से किसी योग से सफलता न प्राप्त हो तो अनुसन्धान पूर्ण 'अमलतास' के योगों द्वारा चिकित्सा विशेष विशेष अनुपानों द्वारा करें।



—: श्री गणेशाय नमः —  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीगुरुदेव गुरुदेव श्री गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

गुरुदेव -१

गुरुदेव -२

गुरुदेव -३

गुरुदेव -४

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

—: श्री गणेशाय नमः —  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



क्योंकि इस विसर्प को सुश्रुताचार्य ने असाध्य बतलाया है, यथा :-

‘ सर्वात्मक, ज्ञात कृतश्च न सिद्धिमेति । ’ आचार्य चरक ने भी इसे ‘ सन्निपात विसर्पं मधिकित्स्यं विधात् ’ इत्यादि श्लोक द्वारा अचिकित्स्य बतलाया है।

परन्तु आज ये सब विसर्प साध्य ही हैं। पाश्चात्य मतानुसार ये विसर्प पहले जब तक ‘ मेनि पेनसिलीन ’ और सल्फाद्रिंस का आविष्कार नहीं हुआ था, असाध्य माने जाते थे। परन्तु आज इनके आविष्कार से ये सब साध्य हो गये हैं।

आयुर्वेद में भी सर्व प्रकार के विसर्पों के लिये हितकारी अमलतास का अनुसन्धान पूर्ण योग तैयार कर दिया गया है। जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। जिससे रोगी को अनुपान भेद से सफलता मिलती है। नन्तु

ज्ञातज विसर्प चिकित्सा :-

सुश्रुत मतानुसार ज्ञातज विसर्प भी असाध्य ही हैं। परन्तु इन सब विसर्पों पर हितकारी पेनसिलीन और सल्फाद्रिंस आदि के होने पर आयुर्वेदीय अमलतास के योग होने पर चिन्ता की आवश्यकता नहीं। सावधानी पूर्वक रोगी की चिकित्सा करने पर वेब को सफलता अवश्य मिलती है।

ये विसर्प साध्य हो सकते हैं इसकी पुष्टि अष्टांग हृदय के इस वाक्य से भी होती है :-

संस्पृष्टदोषे संस्पृष्टमेतत्कर्म प्रशस्यते।

( अष्टांग हृदय चि० अ० १८ श्लोक २० )







विषय

विषय के अतिरिक्त त्वचा रोगों का वर्गीकरण

- |                                |                                                |
|--------------------------------|------------------------------------------------|
| १- कुष्ठ                       | Leprosy                                        |
| २- शीत पित्त                   | Urticaria                                      |
| ३- एकजीमा                      | Eczema                                         |
| ४- कौड़े फुन्सियां             | Boils frunculosis                              |
| ५- जुएं                        | Pediculosis                                    |
| ६- शय्या ज्वर                  | Bed Sores                                      |
| ७- अटून                        | Corn Callositis                                |
| ८- ल्यूपस एरिथि मैटोसस         | Lupus Erythematosus                            |
| ९- लूपस वल्गैरिस               | Lupus Vulgaris                                 |
| १०- सोरियासिस                  | Psoriasis                                      |
| ११- पेम्फीगरु                  | Pemphigus.                                     |
| १२- अमहौरिया पिरी              | Prickly Heat                                   |
| १३- हर्पिस जोस्टर              | Herpes Zoster                                  |
| १४- हर्पिस सिम्पलेक्स          | <del>Herpes</del> Herpes Simplex               |
| १५- फ्लेग्रा                   | Plagra                                         |
| १६- टीनिया सिरसीनेटा           | Tenia Circinata.                               |
| १७- डर्मेटाइटिस एक्सफोलियेटा   | <del>Dermatitis</del> Dermatitis Exfoliative   |
| १८- डर्मेटाइटिस हर्पेटोफॉर्मिस | <del>Dermatitis</del> Dermatitis Herpetiformis |
| १९- डर्मेटाइटिस सिबोरिया       | Dermatitis Seborrhoeic                         |
| २०- उतपीनक                     | Carbuncle                                      |
| २१- पानीवात                    | Impetigo Contagiosa                            |



100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100



२२- रोजिशिया

Rosacea

200

२३- देहली पिढिका

Delhi Boil - Oriental sore

२४- मदुरा पैरा

Madura Foot- Mycetoma

२५- चर्मकील मणक

Warts

२६- तिलकालक

Moles

२७- कुनसचिप्प

Whitlow

२८- प्लुस्ट और दग्ध

Scald and Burns

२९- खुजली

Pruritis

३०- शिवत्र

Leucoderma

३१- दट्ट

Ring Worm

३२- पामा

~~Manx~~ Scabies

३३- युवान पिढिका

Acne Vulgaris

३४- हन्द्र लुप्त

Alopecia

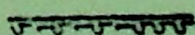
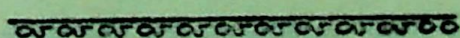
इस प्रकार कई एक अन्य त्वचा रोग हैं, जिन का अन्तर्भाव प्रायः

उपरोक्त रोगों में ही हो जाता है। अतः उन का वर्णन नहीं किया जाता ।

इन में से जो मुख्य २ रोग हैं और अपनी स्वतन्त्रता भी रखते हैं उन्हीं रोगों का

संक्षिप्त वर्णन त्वचा रोग जानार्थ किया जाता है । अन्य जो रोग किसी

अन्य रोग में अन्तर्हित हो सकते हैं उन का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।





पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११



शरीर को कुत्सित करने से इसे कुष्ठ कहा जाता है, यह भी त्वचा रोगों में से एक गम्भीर रोग है। आयुर्वेद में सात महाकुष्ठ और ग्यारह द्युद्रकुष्ठ माने गये हैं। उन में से महाकुष्ठ गम्भीर होते हैं, एवं द्युद्रकुष्ठ उत्तान रहते हैं। महा-कुष्ठों का संज्ञाकरण इन के व्रण, दाँग संस्थान की भिन्नता से किया गया है।

सप्तमहाकुण्ड

- १- कपालः:- <sup>व्रण</sup> जो काले, लाल व्रणों के समान, कठिन, अल्प त्वचा वाले, हृत् तथा तीव्र से युक्त हों उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं।
- २- श्रीदुम्बरः:- जिस व्रण में जलन, रक्तता, बुजली, पीड़ा कपिल वर्ण के होम एवं जिस का आकार गुलर के फल के समान हो उसे ही श्रीदुम्बर कुष्ठ कहा जाता है।
- ३- मण्डलः:- जो व्रण सफेद अथवा रक्तवर्ण के स्थिर, आर्द्र, चिकने, उठे हुए मण्डल वाले एवं एक दूसरे से मिल जाने वाले हों उन को मण्डल करुष्ठ कहते हैं।
- ४- श्लेष्मजिह्वः:- जिस व्रण का आकार श्लेष्म की जिह्वा के समान हो, जिस में कठोरता किनारों पर लालीपन, भीतर से थोड़ा सा काला एवं वेदना से युक्त हो उसे श्लेष्मजिह्व कुष्ठ कहते हैं।
- ५- पुण्डरीकः:- जो व्रण रक्त कमल के समान लाल किनारे वाले वा सफेद, उन्नत एवं मध्य भाग में श्वेत रक्त हो तो उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं।







६-

सिध्म:-

-----

जिस व्रण का आकार लौकी के पुष्प के समान हो,

सफेद या ताम्रवर्ण का एवं रगड़ने से जिस में से पसल निकलती

रहती है उसी प्रकार के कुष्ठ को सिध्म कुष्ठ कहते हैं।

७-

काकण:-

-----

जो व्रण त्रिदोष सद्भाण सहित हो, मध्य में काला अ

और हथर उधर से लाल अथवा मध्य में लाल हथर उधर से काला हो

वर्ण ताम्र या सफेद होता है, उसे ही काकण कुष्ठ कहते हैं। इस

प्रकार का कुष्ठ असाध्य हुआ करता है।

सकादश द्वादश कुष्ठ

o-o-o-o-o-o-o-o-o-o

0000000000

१-

एककुष्ठ:-

-----

जो व्रण अधिक स्थान तक फैले हो, जिस में से

सूँद न आती हो एवं जो मक्खी की त्वचा के समान काला हो

उसे ही एक कुष्ठ कहा जाता है।

२-

चर्म:-

=====

जिस व्रण की त्वचा हाथी की त्वचा के समान

मोटी हो उसे ही चर्म कुष्ठ कहते हैं।

३-

किटिम:-

-----

जो श्याव वर्ण का व्रण स्थान के समान सुरदरे स्पर्श

से युक्त एवं कठोर हो उसे किटिम कहते हैं।

४-

क्यादिक :-

=====

जिस व्रण में अधिक तीव्र वेदना हो और हाथ पर

फटते हो उस को क्यादिक कुष्ठ कहा जाता है।

५-

अलसक :-

o-o-o-o-o-o

जिस व्रण में फोड़ खुलती हो तो उसे अलसक कहते हैं।



1. यह प्रमाण है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का पता होना चाहिए - 1

2. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 2

3. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 3

4. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 4

5. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 5

6. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 6

7. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 7

8. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 8

9. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 9

10. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 10

11. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 11

12. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 12

13. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 13

14. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 14

15. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 15

16. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 16

17. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 17

18. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है - 18



६-

ददु मण्डल:-

जिस व्रण में लाल वर्ण की पिण्डिका सुजली से युक्त हो उसे ददु मण्डल कहते हैं।

७-

चर्मदल:-

जो व्रण रक्तवर्ण, शूल सुजली एवं स्फोटी से युक्त हो उसे चर्म दल कहते हैं।

८-

पामा :-

जिस व्रण में वस्त्र आदि के स्पर्श से अधिक कष्ट होती २ पिण्डिका <sup>स्त्राव</sup> युक्त हो, जो फटा जाता हो, जिस में अधिक सुजली एवं जल हो उसे पामा कहते हैं।

९-

कन्धु:-

इसी प्रकार की पिण्डिकाएं जब तीव्र दाह से युक्त फोड़ों के साथ २ और निम्न के प्रदेश में हो जाती हैं, तब उसे कन्धु कहते हैं।

१०-

विस्फोट:-

काला या रक्तवर्ण फली सी त्वचा युक्त स्फोटी को विस्फोट कहते हैं।

११-

शतारु:-

रक्त श्याव वर्ण एवं दाह युक्त बाल को शतारु कहते हैं।

१२-

क्विक्रिका:-

जो पिण्डिकां स्त्राव एवं सुजली से युक्त हो तथा श्याव वर्ण की हो उसे क्विक्रिका कहते हैं।

नोट:-

गंगा धर जी का मत है कि क्विक्रिका ही जब परी पर होती है तो उसे विषादिका कहते हैं। केवल स्थान मात्र का भेद है। कई आचार्य ऐसा मानते हैं कि पामा और कन्धु प्रायः एक ही होते हैं इस लिए कन्धु कष्ट ही







ठीक है क्योंकि चरक ने पाप्मा का वर्णन करते हुये कण्डू को पाप्मा का ही  
भेद बताया है। यथा:-

“सर्वे स्फोटिस्तीव्रदाहिक्ता ज्ञेया पाण्ड्योः कण्डूगा  
स्फोटिचोष्ण ।”

इस प्रकार कुष्ठ के १८ भेद हैं। कुष्ठ एवं उस के कारणी तथा  
हेतु की आदि के लक्षणों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है।

यह एक संक्रामक रोग है। इस में त्वचा और श्लेष्मिक कला  
में गण्ड या शरीर पर स्पर्श शून्य मण्डल या मण्डल तथा गण्ड में दोनों उत्पन्न  
हो जाते हैं और अन्त में फट कर व्रण के रूप को धारण कर के यह रोग  
अपना प्रसार करता है ।

#### कारण:-

यह रोग भारत में अधिकतर पाया जाता है,

प्रायः करके यह रोग अपना प्रभाव उष्ण प्रदेशों में दिखाता है। सम्पर्क  
द्वारा ही यह रोग रोगी से अन्य मनुष्य को हो जाता है, माता से कन्या  
को माई से बहन को, पति से पत्नि को प्रायः कर के एकत्रित बैठने के  
कारण से हो जाता है। वस्तुतः घनिष्ठ सम्बन्ध ही इस के प्रसार का  
वास्तविक कारण है। इस का कीटाणु-जाय कीठ के समान दण्डाकार है,  
जिस को ( बैसिलस लेप्रा ) *Bacillus Leprae* कहते हैं। यह कीटाणु  
स्थान नासा या कण्ठ की श्लेष्मिक कला एवं व्रणों से उत्पन्न होने वाले  
स्त्राव में पाया जाता है आगे यह स्पर्श के द्वारा फैल जाता है। इस रोग  
के सहायक कारण दम्रिता दुधातृता एवं संकुचित स्थान ( निविड ) आदि  
हैं।

#### सम्प्राप्ति:-

इस का कीटाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर के







चाय कीट की मान्ति गण्ड उत्पन्न करता है। प्रायः यह गण्ड श्लेष्मिक कला एवं वात तन्तुओं में से ही बना करता है। इन के केन्द्रों में सेल के भीतर और बाहर कीटाणु एक समूह रूप में रहते हैं सेलों के कर्षण स्तर हुआ करते हैं। इन के बाहर के स्तर सौत्रिक तन्तु के होते हैं, इस के बाद यह गण्ड धीरे २ मीटर ही गल जाते हैं। फटने के पश्चात् एक उस स्थान पर व्रण सा बन जाता है जिस में प्य का स्राव प्रारम्भ हो जाता है, इस प्रकार के व्रण नासा, शाखाओं के बाह्य पार्श्व एवं मुख में हुआ करते हैं। इस के पश्चात् दीर्घ काल के बाद यह गण्ड एवं व्रण प्लीहा यकृत एवं वृषण आदि में भी पैदा हो सकते हैं। यह कीटाणु जब वात तन्तुओं में प्रवेश करते हैं उस स्थान पर सौत्रिक तन्तु उत्पन्न कर देते हैं। उस स्थान से वात तन्तु का नाश भी प्रायः हो जाता है। उन नष्ट हुए वात तन्तुओं के स्थान पर स्पर्श शून्य मण्डल व्रण एवं काले बनते हैं और बाद में क कर सह जाया करते हैं।

इस रोग का प्रसार एवं प्रभाव प्रायः करके समस्त शरीर पर लगभग दो वर्षों में हो जाता है।

इस के तीन भेद होते हैं जिन का वर्णन निम्न प्रकार से

है:-

१- ग्रन्थिक कुष्ठ

-----:- ग्रन्थियाँ उत्पन्न होने से पहले कुछ

कुछ समय पश्चात् ~~अत्यन्त~~ ग्रन्थिमीत ज्वर चढ़ता उतरता

रहता है। तन्द्रा, अतिसार, गौरक्षा, अतिसार एवं

आधिक त्वक आदि उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ समय के बाद

शरीर ताम्र वर्ण के मण्डल उत्पन्न होते हैं,







ये थोड़े उभरे हुए तथा कमकदार होते हैं। जब ज्वर-

शान्त हो जाता है ये भी उस के बाद लुप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार ज्वर के दो या चार वेग हो कर त्वचा का वर्ण घुसर हो जाता है। प्रत्येक ज्वर के पश्चात् नये २ मण्डल उत्पन्न होते हैं, तब उन्हीं स्थानों पर गण्ड से प्रकट होते हैं। कुछ काल के लिये यह गण्ड भी मिट जाते हैं लेकिन पुनः ज्वर के कारण निकल आते हैं। तब यह स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। जब रोग बढ जाता है तब रोगी की आकृति बेटील सी प्रायः कर के हो जाती है। श्वास शीघ्र स्थूल, मुँह की त्वचा फूली हुई मीठे फट जाती है एवं रोगी का चेहरा बहुत प्रतीत होने लगता है। प्रायः कर के इस प्रकार के गण्ड मुख, स्वरयन्त्र, कण्ठ, अक्षि एवं नासा आदि में उत्पन्न हो जाते हैं। कटने के पश्चात् कृष्णी, गन्ध और दृष्टि पर अपना प्रभाव दिवालाकर नाश कर लेते हैं। इन गण्डों के उत्पन्न होने के उपरान्त ज्वर का पुनः २ होना प्रायः बन्द हो जाता है, कमजोरी अत्याधिक हो जाती है। इस प्रकार का रोग चिरकालीन होता है और कितनी अन्य राज्यक्षमा ( टी०बी० ) आदि से पीडित हो कर मर जाया करता है।

२-

वातिक :-

इस में वातिक लक्षण पाये जाते हैं ज्वर आदि लक्षण

नहीं हुआ करते इस में वात तन्तुओं के भीतर परिवर्तन हुआ करता है। वातिक लक्षण यथा हाथ, पांव, कमी चेहरे पर तथा प्रभावित नाड़ी के अधीन प्रदेश में स्पर्श असहिष्णुता हो जाती है, अथवा वहाँ पर सरसराहट चिमाचिमाहट आदि की वेदना प्रतीत होती है। कभी २ वहाँ पर सूक्ष्म सी पीड़िकायें या चकती निकल आते हैं। इस में कभी २ बुद्बुद का भी संशय हो जाता है। इस से अन्तः प्रकीर्णता नाड़ी विशेषकर प्रभावित हुआ करती है स्पर्श करने पर नाड़ी







रस्सी के समान प्रतीत होती है। प्रारम्भ में यह इस रोग की पहचान का मुख्य साधन है। यही लक्षण कुछ काल के पश्चात् समाप्त हो कर कुछ सप्ताह के पश्चात् पुनः उत्पन्न होती है। ३-४ दिनों के बाद नाड़ी प्रदेश में स्थायी मण्डल हो जाते हैं। यह मण्डल अधिकतर शाखाओं के पीछे और बाहर की तरफ एवं मुख पर हो जाया करते हैं वह मण्डल प्रथम तो स्पर्श असहिष्णु परन्तु पश्चात् वहाँ पर स्पर्श शक्ति कम हो जाती है। अन्त में नाश हो जाती है। अन्त में नाश हो जाता है। इस के पश्चात् प्रभावित नाड़ी प्रदेश का सर्व-स्थान स्पर्श शून्य हुआ करता है। मांस पेशिये ( Muscles ) चैष्टा रहित हो जाते हैं, कुछ उन स्थानों पर काले वन कर व्रण बन जाते हैं। इसी प्रकार हाथ पाँव की अंगुलियाँ प्रायः करके गलकर रह जाती हैं। कभी २ इस का प्रभाव कानों पर भी हो जाता है। अतः कान विकृत हो जाते हैं। वर्तमान कुष्ठ रोगी, ग्रन्थिक कुष्ठ की अपेक्षा चिरकाल तक जीवित रहता है। अन्त में यह भी किसी अन्य रोग से आक्रान्त हो कर मृत्यु कर जाता है।

३-

### मिश्रित कुष्ठ:-

इस में प्रायः कर के दोनों प्रकार के लक्षण मिलते हैं। कभी २ वातिक कभी २ ग्रन्थिक लक्षण प्रथम उत्पन्न हो जाते हैं।

### रोग प्रभाव काल अवधि :-

जिस को एक बार यह रोग हो जाये तो उसे जीवन् मर कुष्ठ रहता है। ग्रन्थिक में रोगी २ से १० वर्ष तक प्रभाव कर जाता है, साधारणतया अरुक्त समय ६ वर्ष होती है। वातिक कुष्ठ का रोगी १०-२० वर्ष तक भी जीवित रह सकता है। पश्चात्य चिकित्सानुसार रोगी भुक्ति अधि-क्तर होने को आशा रहती है।









## चिकित्सा:-

यह एक गम्भीर एवं सम्पर्कजन्य रोग है। इस लिये नगरों के के बाहर एकान्त स्थान पर पृथक् ही आशुपथ होने चाहिये। उन के साथ किसी का घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। गवर्नमेन्ट की तरफ से रेसोसिएशन बनी हुई है एवं सब बड़े २ नगरों के स्थानों में गवर्नमेन्ट की ओर चिकित्सालय बने हुए हैं। इस लिये रोगी के रोग की परीक्षा कर के शीघ्र ही उन्हें चिकित्सालयों में प्रवेश करा देना चाहिये। रोगियों के लिए स्वस्थ के नियमों का पालन एवं पीष्टिक आहार अत्यन्त आवश्यक है ताकि यह रोग अधिक न फैल सके।

कुष्ठ रोग में प्रायः कर के निम्नलिखित औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। इस की चिकित्सा चिकित्सालय में ही करानी चाहिये। इस के लिये विशेष कर सल्लोनाल ( ) चाल - मोगरा आयल या हिटनी का पूर्ण आयल लाभकारी है। इस की १० बुँद प्रति मात्रा खाने के लिए दें, अथवा इस का सूचि वेध प्रति सप्ताह के बाद एक मास तक प्रयोग कर सकते हैं। अतः धीरे २ मात्रा बढ़ानी चाहिये। एक मास चिकित्सा रोक कर फिर प्रारम्भ कर देते हैं। सूचिवेधन के लिये ( मोगराल) oogrol हतिपाल (Alepol ) लाभकारी होता है।

इन के अतिरिक्त यह औषधियाँ भी हितकारी रहती हैं।

Betaxin

विटेक्सिन

मेफीना इह प्रोटील्विन Maphenide Protalbin

सल्फोन रिलाग Sulphone Cilag

सल्फोवियान Sulfadione

सायीकावाजाने Siocarbozone







६- सायोसल्फोन

SioSulphone

७- नोवोफोन

Novophone Tablets

८- टिविफोन गोलियाँ Tibione -  
Tablets

९-

Sulphetrons Tablets

१०- E.C.C.O.

११- एक्सोसल्फोन

Exosulphone

आयुर्वेद मतानुसार चिकित्सा:-

इस रोग में खदिर का प्रयोग अन्तः एवं बाह्य दोनों विधिपूर्वक से किया जाता है। पानी के स्थान पर खदिर कषाय दिया दिया जाता है। ज्वर विरचन रक्तमोक्षण दाहना का स्वादन करना आवश्यक है। प्रायः सब कुष्ठ त्रिदोषजन्य होते हैं। इस लिये सब चिकित्सा सामान्य रूप से ही सकती है।

आभ्यागार्थ:-

०-०-०-०-०-०-०-०-०-०

सौमराजी तेल

मरिचादि तेल

कन्दर्पसार तेल

बासा गुह्य तेल का उपयोग होता है।

अन्तः प्रयोग:-

०-०-०-०-०-०-०-०-०-०

महापल्लताक गुह्य

पंचतिक्त गुग्गुल एवं धृत

अमृताक्षर लोह

ताल केशवर

महातिक्त धृत



श्री गुरुदेव - १

श्री गुरुदेव - २

श्री गुरुदेव - ३

श्री गुरुदेव - ४

श्री गुरुदेव - ५

श्री गुरुदेव - ६

श्री गुरुदेव - ७

श्री गुरुदेव - ८

श्री गुरुदेव - ९

श्री गुरुदेव - १०

श्री गुरुदेव - ११

श्री गुरुदेव - १२

श्री गुरुदेव - १३

श्री गुरुदेव - १४

श्री गुरुदेव - १५

श्री गुरुदेव - १६

श्री गुरुदेव - १७

श्री गुरुदेव - १८

श्री गुरुदेव - १९

श्री गुरुदेव - २०

श्री गुरुदेव - २१

श्री गुरुदेव - २२

श्री गुरुदेव - २३

श्री गुरुदेव - २४

श्री गुरुदेव - २५

श्री गुरुदेव - २६

श्री गुरुदेव - २७

श्री गुरुदेव - २८

श्री गुरुदेव - २९



पञ्चनिम्ब वृक्ष

महा खदिर वृक्ष

तिक्त शटफल वृक्ष

सोमराजी वृक्ष

नवकाष्ठीका ववाथ

अमृतादि कषाय

इन का प्रयोग किया जाता है।

बाजरी और तिल का सेवन अति लाभकारी रहता है यथा "तीव्रेण कुष्ठन परित देहोय सोमराजी नियमेन सादेत्।"

संवत्सर कृष्णतिल द्वितीया स सोमराजी वष्नुपातिशेत्।।

पथ्य :-

मकोय का शक,

मूंग

नीम के पत्र

पनवाह

पुराने चावल एवं अरहर की दाल

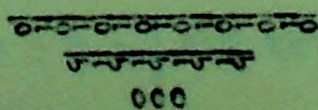
इन का प्रयोग करना चाहिये।

आपथ्य :-

विरोधि द्रव्य यथा मक्खली तथा दुध आदि भोजन से

हमेशा बचना चाहिये। इस के अतिरिक्त तोषाण विदार्ह तथा गीष्टान्न युक्त

भोजन नहीं करना चाहिये।





•



शीत पित्त:- ( URTICARIA )

-----

वरटीदष्टसंस्थानः शीथः संजायते वहिः

सकण्डूस्तौदव हृतशुद्धिज्वरविदाहवान्

उददमिति तं विधाच्छुद्धीतपित्तमथापर

वाताधिकं शीतपित्तमुददस्तु कफाधिक ( मा

( माधव नि० )

इस रोग की उत्पत्ति त्वचा पर मिण्डिया तत्वे के काटने

से उत्पन्न संजन के समान जो शीथ उत्पन्न हो जाता है तथा जिस में खुजली

खुर्र के चुर्मी जैसी पीड़ा की अधिकता, वमन, ज्वर तथा जलन होती है

उसे आर्चा शीतपित्त कहते हैं।

इस रोग में त्वचा का वर्ण प्रकृत रूप से न रह कर लाल

वर्ण का हो जाता है। इस में किसी भी आगन्तुक उत्तेजक पदार्थों त्वचा

के वर्ण में परिवर्तन आ जाता है। इस ( Allergic Diseases )

भी मा नही है। त्वचा के प्रतिकूल किसी भी आगन्तुक पदार्थ के सम्पर्क से शरीर

पर खुजली होती है। बुरकने से त्वचा पर लाल वर्ण के चकते से बन जाते

हैं। इसे ही शीतपित्त कहते हैं। यह चकते कुछ समय रह कर फिर स्वयं ही

नष्ट हो जाते हैं।

यह दो प्रकार के होते हैं:-

१- तीव्र Acute

२- दीर्घ Chronic

तीव्र:- ACUTE

इस में चकते २ से २-१/२ घण्टे अर्थात् कुछ समय के पश्चात्

फिर सर्वदा के लिए समाप्त हो जाते हैं।







२-

जीर्ण CHRONIC

इस में शीत पित्त के आक्रमण आते रहते

हैं तथा यह कई महीनों वर्षों तक रहते हैं। जिस से रोगी अपने को दुःखित अनुभव करता है। इस के अतिरिक्त अन्य भी शीत पित्त के भेद पाये जाते हैं।

( GIANT URTICARIA ) इस प्रकार का शीत पित्त

शरीर के कोमल तथा ढीले स्थानों पर होता है। शीथ के साथ इन चकनों का रंग गुलाबी हो जाता है। यह शीथ कुछ समय के पश्चात् स्वयं ही मिट जाती है। इस प्रकार का शीतपित्त स्वरयन्त्र जिह्वा गले में होता है। यदि यह स्वरयन्त्र की शैथिल्य कला पर आक्रमण कर जाए तो रोगी की मृत्यु का कारण बनता है। इस से स्वाभाविक ही

जाता है।

सीरम शीत पित्त (SERUM URTICARIA)

यह सीरम का ज्वराग करने से हो जाता है। पहले प्रायः 5-7 मिनों में हाथ पांव और चेहरा आदि नग्न स्थानों पर होते हैं। यह चकने उमरे हुए न होकर लवचा के (Pepel) के होते हैं। इन पर खुजली अधिक होती है। लवके के लवचा लाल भी हो जाती है। इस के पश्चात् उदर गूला वमन जी गचलाना तथा अविचार और हृदय विकृति होने लगती है।

पपुलर अर्टिकरिया  
(Papular urticaria)

इस में अधिक मात्रा में Papules होते हैं जो पर खुजली अधिक मात्रा में होती है। यह Papules अर्द्धगोली की आन्ति होती है। यह खुजली कई दिन तक होती रहती है। इस प्रकार —



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



शीत पित्त बूँटे कच्ची में होती है।

चिकित्सा:-  
०-०-०-०-०

शीत पित्त के रोगी को विरचन देना चाहिए। उस के संक्रमण युक्त स्थान का उपचार करना चाहिये। दुष्ट आहार का परित्याग कर देना चाहिए और ग्रन्थियाँ से उत्पन्न होने वाला ज्ञोमात्मक पदार्थ को नष्ट करना चाहिये। शीत पित्त के लिये पारचात्य मतानुसार निम्नवर्गीकृतियाँ प्रयोग की जाती हैं:-

१- Calamine lotion

२- Adrenaline (एड्रेनलीन) ०-५ से १ सी०सी० का सूचिवेधन करना चाहिये।

३- एन्टीस्टीन Antistine 'Ciba' दिन में २-३ बार प्रयोग करें। आशयक्तानुसार क्रीम भी इस की प्रयोग कर सकती हैं।

४- १५ सेर जल में १५ ग्राम सोडावाटर कार्ब (Soda bi carb) डाल कर स्नान करना चाहिये।

५- मेथाल (Menthel) या काफूर को मिला कर स्नान करें।

६- बेनाड्रिल Benadryl, P.D. and <sup>८०</sup> १० ग्राम की जिन में ३ गोलिएँ देनी चाहिये।

७- पौर सार्ददास ३० ग्रेन की मात्रा दिन में तीन बार दें। इस के साथ कैल्शियम, विटामिन सी० और विटामिन पी का सूचि वेधन करना चाहिये।

८- कच्ची के लिये :-

१- रुबार्व पाउडर Rubarv Powder १० ग्रेन







- २- सोडा बाई कार्ब      Soda Bi Carb      ४० ग्रैन  
 ३- सीरप जिंजर      Syrup Zinger      ४० ग्रैन  
 ४- क्लोरोफार्मी      Aquacholoroformi      १ आंस

इन सब को मिला कर आठ मात्रा बना कर कच्चे को १ चाय वाला चम्मच दिन में तीन बार बार दें । कच्चे को मिटठार्ह आदि बन्द कर देनी चाहिये ।

६-      रोगी में उसी के रक्त का सूचिवैध मांसान्तर्गत चुतनी में प्रत्येक ४-४ दिन बाद देना चाहिये।

१०-      ईविल ( Avil Hoechst ) एक गोली रात्रि को विश्राम के समय अथवा अवस्थानुसार दिन में १-२ गोली ६-६ घण्टे के बाद दे सकते हैं।

११-      एन्टिस्टीन ( Antistne ) की गोली या इन्जेक्शन देना चाहिये।

१२-      पाईरिबेन्जेमीन ( Pyribenzamine- Ciba ) की १-१ गोली ४-५ बार दें।

आयुर्वेदिक मतानुसार चिकित्सा

१- अजवायन

२- गैरु

दोनों का चूर्ण बना कर ३-३ मासे दिन में २-३ बार जल

के साथ रोगी की अवस्था अनुसार प्रयोग कराये।

इस के अतिरिक्त निम्नलिखित औषधाध्यां भी श्रेष्ठ हैं:-

योग:- २

वाक्ची      १ रु०

शुद्ध गन्धक      १ रु०



7- अथवा 7-1

8- अथवा 8-1

9- अथवा 9-1

10- अथवा 10-1

11- अथवा 11-1

12- अथवा 12-1

13- अथवा 13-1

14- अथवा 14-1

15- अथवा 15-1

16- अथवा 16-1

17- अथवा 17-1

18- अथवा 18-1

19- अथवा 19-1

20- अथवा 20-1

21- अथवा 21-1

22- अथवा 22-1

23- अथवा 23-1

24- अथवा 24-1

25- अथवा 25-1

26- अथवा 26-1

27- अथवा 27-1

28- अथवा 28-1

29- अथवा 29-1



३- गेहूँ १ ढो

इन सब का चूर्ण बना कर २ मास तक दिन में २-३ बार

जल से दें ।

योग नं० -३

अजवायन

समभाग

शुद्ध गन्धक

इन का चूर्ण १-१ मास मधु के साथ प्रयोग कराना चाहिये।

योग नं० -४

हरिद्रा खण्ड २-३ मास दिन में २-३ बार जल से

दे।

योग नं० ५-

बाह्य प्रयोग :-

१- गेहूँ

२- अजवायन

३- सैधव लवण

इन तीनों को पीस पानी मिला कर सारे शरीर पर मालिश

करना चाहिये। तत्पश्चात् कपड़ा लें कर आराम करना चाहिये। २-३ कण्टे बाद

जब पसीना सूख जाये तो जोकर १ माग पानी १६ माग लें कर उबाल लें

तत्पश्चात् उसे मसल कर छान लें फिर रोगी को जोकर के पानी से स्नान

कराना चाहिए।

योग नं० ६-

अजवायन की चुप दे



अ. १ प्र. १

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

१. १. १. १

१-१ अ. १

प्र. १-१

प्र. १-१

प्र. १-१

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

१-१ अ. १

१. १. १. १ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

१. १. १. १

१-१ अ. १

१-१ अ. १

१-१

प्र. १-१

प्र. १-१

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

प्र. १-१ में प्र. १ के अंश १ के अन्तर्गत प्र. १ के अन्तर्गत

प्र. १-१

१-१ अ. १

प्र. १-१



एक्जीमा ( Eczema )

यह त्वक् रोग शरीर में किसी भी प्रकार के कीटाणु चाहे वह शरीरगत हों या आगन्तुक हों के विकार से नहीं होता बल्कि शरीरगत तथा आगन्तुक अन्य अज्ञात कारण हैं, जो इस रोग की उत्पत्ति में सहायता देते हैं। आगन्तुक कारणों की अधिक धूम का सेवन अर्थात् सूर्य की किरणों तथा उत्तेजक और दायिमक पदार्थ जो कि रक्त में जा कर परिधिक रक्त वाहिनियों द्वारा या सीधा ही त्वना पर अपना प्रभाव डालते हैं। जिससे Eczema रोग उत्पन्न होता है। यह अधिकतर वाह्य कारणों से होता है। इस रोग में Allegry or Sensitiveness भी मानते हैं। जिस के कारण यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग में कई बार Streptococcus & Staphylococcus आक्रमण कर के रोग को और तीव्र कर देते हैं। कई बार त्वना सूखी रहती है और ऊपर छिलके उतरते रहते हैं त्वना का रंग विवर्ण हो जाता है। परन्तु विशेष कर के इस रोग में लालिमा Erythema विस्फोट (बाले) Vesication स्त्राव गीलापन सा बने रहना, पपड़ी का बनना ) formation of Crust and Scales ) इस रोग में वह रुग्ण स्थान चमड़े की मांति मोटा हो जाता है और इस में गुजली तीव्र रूप से होती है। यह पीड़िकाएं सप्ताहों महीनों तथा वर्षों तक चलती हैं। और उचित प्रकार से ध्यान न देने पर या फिर हो जाती है। पुनः उत्पन्न होना इन की विशेष प्रवृत्ति है।



( )

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...



**Eczema** की निम्न लिखित कुछ अवस्थाएं ( **Stages** ) हैं

जिन के द्वारा हमें यह ज्ञान होता है कि रोगी में इस रोग की कौन सी अवस्था चल रही है। ताकि उसकी उस अवस्था के अनुसार उचित चिकित्सा की जा सके।

#### **1st Stage Erythema**

१- त्वचा की रक्त वाहिनियाँ फैल कर वहाँ पर रक्त रक्त एकत्रित कर लेती हैं जिस से वह स्थान लालिमा युक्त दिखाई देता है और चक्के से भी दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात् यह लालिमा आदि नष्ट हो कर त्वचा की उपर की स्तर उतरने लगती है।

#### **2nd Stage:-**

२- इस अवस्था में अधिक मात्रा में छोटे २ छाले से उत्पन्न होते हैं। वह समीप २ पड़े होने के कारण एक बड़ा छाला बन जाता है।

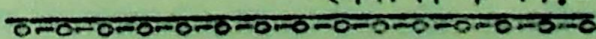
#### **३- 3rd Stage**

उस अवस्था में वह छाले विस्फोट फट जाते हैं। उस में से गाढ़ा तरल स्राव रहता है। इसे सस्त्रावी एकजीमा **Weeping Eczema** कहते हैं।

#### **४- 4th Stage**

जब स्राव कुछ तो निकल जाता है और कुछ वहाँ पर जम जाता है। वहाँ की त्वचा भी चिपक जाती है और एक प्रकार के खुरद्रे का रूप धारण कर लेता है।

#### **एकजीमा के भेद:- Varieties of Eczema**



१- स्थानिक एकजीमा:- इस प्रकार का एकजीमा भिन्न भिन्न स्थानों पर होने के कारण वहाँ का ही ( **Eczema** )

कहलाता है जैसे यदि योनि द्वारा पर होगा तो ( **Eczema Vulva**

कहलाएगा इसी प्रकार भिन्न स्थानों पर होने के कारण यह स्थानिक

**Eczema Polmaris** कहलाता है।







तथा गुदा स्थान का Eczema ani कहलाता है। इस प्रकार कुछ

मिन्न २ स्थानों पर होने के कारण यह स्थानिक ( Local Eczema ) कहलाता है।

२- शिशुव एकजीमा:- Eczema Infancy

इस प्रकार का Eczema प्रायः उन बच्चों को होता

है। जिन्होंने किसी भी कारण से माता का दुध सेवन न करके दूसरा

दुध सेवन किया हो। इस भेद में Eczema की चारों Stages

लालिमा चकत्ते काले स्त्राव बुरण्ड आदि एक ही स्थान पर आजाते हैं।

खुजली अधिक मात्रा में होने से बुरकाता है। बुरकाने से बुरण्ड उत्तरने पर

उन के नीचे से रोम रक्त स्त्राव वन रक्त कण ज में मिलते हैं। कुछ समय

पश्चात् त्वचा मोटी हो जाती है, वहां पर दरारें सी बन जाती हैं।

उस स्थान पर Pyogenic Vacteria वहां आक्रमण कर के पूय उत्पन्न

कर के फोड़े उत्पन्न कर देते हैं।

३- शुष्क एकजीमा ( Dryeczema )

इस में त्वचा शुष्क होती है और इस में से कोई स्त्राव नहीं

निकलता केवल ललिमा खुजली आदि लक्षण होते हैं।

४- स्त्राव युक्त एकजीमा:- Weeping Eczema

इस में लालिमा फफोले आदि के बाद जब वह फुटते हैं

तो उन से स्त्राव निकलता है। वह स्त्राव कमी २ जलीप वर्ण का होता है।

कई बार पूयोत्पादक जीवाणु आक्रमण करते हैं तो पूय युक्त स्त्रीव

निकलता है। इसी लिए इसे Weeping Eczema कहते हैं।

५- चरियुक्त एकजीमा:- इस भेद में त्वचा मोटी हो जाती है

और इस प्रकार की त्वचा हाथ और पांव पर एकजीमा होने से होती है।



THE STATE OF NEW YORK

IN SENATE

January 1, 1890

REPORT OF THE

-2-

COMMISSIONERS OF THE LAND OFFICE

IN RESPONSE TO A RESOLUTION PASSED BY THE SENATE

ON JANUARY 1, 1889

ALBANY: PUBLISHED BY THE STATE OF NEW YORK, 1890.

PRINTED BY THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

-3-

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

-4-

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

THE STATE OF NEW YORK, 1890.

-5-

THE STATE OF NEW YORK, 1890.



इस में विचर्चिका या विपादिका के समान चौर पड़ जाते हैं और नरवीं पर रेखाएं पड़ जाती हैं।

### खुजली युक्त एक्जीमा ( Prurigo )

इस में खुजली नहीं मिटती इसीलिये **Prurigo** का तात्पर्य न मिटने वाली खुजली है। यह शैशव एक्जीमा के बाद ही होता है। विशेष करके चेहरे की कूपर सन्धि जानु सन्धि की त्वचा **Eczema** के कारण मोटी हो जाती है। खुजली देर तक तथा कष्ट दायक होती है।

### पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

#### स्थानीय :-

- १- नमक का पानी                      Normal Salin Water
- २- जीकर का पानी
- ३- नीम पत्र पानी

इन में से किसी एक के साथ रुग्ण स्थान को साफ करना चाहिये। रौंती को कदापि साबुन का प्रयोग न कराये। रुग्ण स्थान को साफ करने के पश्चात् पराफिन लिक्वीड लगाना चाहिये ताकि शरीर को साफ करते हुये जल अपना प्रभाव न कर सके।

जिस समय रुग्ण स्थान पर लालिमा, बारीक २ छाले अथवा चकत्ते होते हैं। उस समय उस स्थान पर न्मून पोउडर का प्रयोग करना चाहिये।

१- बाल्फोर्ड Dilute Alcohol ४ घिस

२- एसिड सेलिसिलिक लीसन Dilute Alcohol ४ घिस







३- पानी Water

४- डस्टिंग पाउडर स्टार्च Starch समभाग

५- टैल्कम Talcum

या जिंक आक्साइड Zinc Oxide

बोरिक एसिड Boric Acid समभाग

स्टार्च Starch

जिस समय रुग्ण स्थान पर लातिमा ही ती उस समय  
निम्न योगी का प्रयोग करना चाहिये।

- (१)
- |                    |            |       |
|--------------------|------------|-------|
| १- जिंक आक्साइड    | Zinc Oxide |       |
| २- स्टार्च         | Starch     | समभाग |
| ३- ग्लिसरीन        | Glycerine  |       |
| ४- एक्वा डिस्टिल्ड | Aq. Dist.  |       |

- (२)
- |                         |           |
|-------------------------|-----------|
| १- जिंक आक्साइड ४ ग्राम | Zinc Oxid |
| २- टैल्कम ४ ग्राम       | Talcum    |
| ३- पैराफीन १ ग्राम      |           |

इन दोनों महल्मी का रुग्ण स्थान पर लेप करना चाहिये।

जिस समय स्त्राव बह रहा ही उस समय निम्न योग  
करने चाहिये।

- (क)
- |                                     |                           |         |
|-------------------------------------|---------------------------|---------|
| १- स्ट्रॉंग साल्युशन आफ लेड एससीटेट | Strong Sol of lead Acetat | २ ग्राम |
| जिंक आक्साइड                        | Zinc Oxide                | ४ ग्राम |
| ग्लिसरीन                            | Glycerine                 | ४ ग्राम |
| जल                                  | Water Aqua                | ४ बीस   |

- (ख)
- |                     |              |         |
|---------------------|--------------|---------|
| १- कैल्मीन प्रेपरेट | Calmine Prep | १ ग्राम |
|---------------------|--------------|---------|



पृष्ठ - 1

पृष्ठ - 2

पृष्ठ - 3

पृष्ठ - 4

पृष्ठ - 5

पृष्ठ - 6

पृष्ठ - 7

पृष्ठ - 8

पृष्ठ - 9 (9)

पृष्ठ - 10

पृष्ठ - 11

पृष्ठ - 12

पृष्ठ - 13 (5)

पृष्ठ - 14

पृष्ठ - 15

पृष्ठ - 16

पृष्ठ - 17

पृष्ठ - 18

पृष्ठ - 19 (8)

पृष्ठ - 20

पृष्ठ - 21

पृष्ठ - 22

पृष्ठ - 23 (7)



२- जिंक आक्साइड Zinc Oxide १ द्राम

३- लाईकर स्लम्बाई सर्वसीटास Lig. Plumbi Subacutus १ द्राम

४- ग्लिसरीन Glycerine १ द्राम

५- एक्वा कैलिस Aqua Calcis १ द्राम

गाज ले कर किसी एक औषध को लिप्त कर के ४ घण्टे तक रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये । फिर अन्य गाज बदलना चाहिये स्त्राव का शोधन करने के लिये निम्न लोशन प्रयोग करने चाहिये।

क) इक्थियाल लोशन Ichthyol १ माग १०० माग पानी में मिला कर रखें।

(ख) जेनशियन लोशन ( Genion Lotion )

इस में सैकितों की दूध १५ , १५ मिन्ट के बाद रखनी चाहिये

जीर्ण एक्जिमा ( Chronic Eczema )

जब छुरह उतरने लगे चीर पड़ जाय त्वचा मोटी , स्त्राव थोड़ा होने लगे एवं उस रुग्ण स्थान पर बारिश हो तो निम्न महलम प्रयोग में करने चाहिये।

इक्थियाल Ichthyol १ द्राम

लाईकर पिस्सु कार्बोनिस् Lig. Picis Carbonis १ द्राम  
लाईकर स्लम्बाई सर्वसीटास Lig. Plumbi/ २० ग्रैन

हाई ड्राग्सि एमोनियाटा Hydragysis Ammon २० ग्रैन

वैसलीन Vesaline १ द्राम बीस

इस महलम का प्रयोग रुग्ण स्थान पर दिन में दो तीन

बार करे







### आभ्यान्तरीय प्रयोग

-----

पेनसिलिन      Penicillin

सल्फा द्रव      Sulpha Drugs

स्टैनी मैन्नीज

इन के अतिरिक्त रोग का रक्त निकाल उस की मात्रा  
 ५ से १० सी०सी० में देने से भी प्रायः लाभ होता है।

इन सब औषधियों के अतिरिक्त निम्न लिखित औषधियाँ  
 भी **Eczema** में लाभकारी रहती हैं।

#### १- कैल्शियम के योग

-----

क- काला जाना      Kalazana

ख- कैल्सीमा      Calcima Ciba यदि

२- टाईरोथ्रीसीन क्रीम      Tyrothri-cin Cream Lederly

३- विटामीन बी कम्प्लेक्स      ~~Maxiplex-Gelgy~~

४- यूरेक्स      Eurax-Gelgy

फलीडोल आर्यन्मेन्ट      Pelidol Ointment -Hoescht

५- एन्थ्रसाल      Antharsal Knoll

६- वायोक्राम क्रीम      Vioform Cream Ciba

७- कल्सी ब्रोमेट      Calci Bromate 'Sandoz'

८- एन्टीस्टीन      Antistim - Ciba



भारत-विदेशी व्यापार

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण

वस्तु-विवरण



आयुर्वेदीय मतानुसार चिकित्सा

- १- आर्कादि तेल
- २- निशादि तेल
- ३- सुजली लेप
- ४- पामाहर लेप
- ५- जात्यादि तेल
- ६- मनःशिलादि तेल
- ७- महा सिन्धुध तेल
- ८- ट्रेसिंग तेल
- ९- पन्वतिक्त घृत

आदि को रुग्ण स्थान पर लगाना चाहिये।

१- पन्वतिक्त घृत

२- केशोर कटी

३- आरोग्य वर्द्धनी

४- बृहत् मन्त्रिष्ठादि क्वाथ

५- रसन्जनादि कटी

६- पन्वनिम्ब त्रुण

७- तदिरा रिष्ट

८- तदिराष्टक क्वाथ

९- सारिवासव

१०- फटीलादि क्वाथ

११- महातिक्त घृत



उत्तरी गंगा नदी

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा नदी का नाम उत्तरी गंगा

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १

उत्तरी गंगा - १



१२- त्रिफला चूर्ण

१३- रस माणिक्य

१४- गन्धक रसायन

१५- शु० गन्धक प्रवाल दिष्टी दोनों को मिला

कर ।

१६- सत्यानाशी अर्क

इन सब औषधीयों का प्रयोग यदाणार्थ करना

चाहिये।

### फोड़े फुन्सीया Boils Franculosis

यह वार २ होने वाला गंभीर Deep Staphy lococcal Infaction है। यह रोग कुपी अथवा स्वेद ग्रन्थि के मुह में संक्रमण पहुँचा कर फोड़े उत्पन्न करते हैं यह सदा संक्रमण सदा Staphylococcus के ही कारण होता है। यह रोग प्रायः करके उन लोगों या कच्चों को होता है जो अधिक मिठाई खाते हैं यह विशेषतया बर्णा ऋतु में बहुत होते हैं। बाल तोड़ने तथा काँटे आदि के चुमने के बाद भी हो सकते हैं। एक आध फोड़े की विशेष चिन्ता नहीं होती जब अधिक संख्या में तथा वार २ हो तो विशेष चिकित्सा करनी पड़ती है। ऐसे व्यक्तियों की मूत्र परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि मधुमेह में फोड़े फुन्सीया अधिक निकलती है मूत्र में शर्करा मिलती है। ऐसे रोगियों के फोड़े शीघ्रता से निवृत्त नहीं होते जो कच्चे गन्ध पानी में सेती हैं उन को भी फोड़े फुन्सीया अधिक होते हैं।

### पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

इस रोग में

Sulphadrugs

का प्रयोग अधिकार होता है।



पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

1 34

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

1 34

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११

पृष्ठ संख्या - ११



३-

पेनसिलीन आदि का प्रयोग होता है।

लगाने के लिये

परह

एवं वायसलीन

मलहम का प्रयोग अवस्थानुसार किया जाता है इस के अतिरिक्त बलाढीना का प्रयोग भी हितकारी रहता है।

## आयुर्वेदीय मतानुसार चिकित्सा

- १- मज्झिमादि क्वाथ
- २- मज्झिमादि चरिष्ट
- ३- आरोग्य वर्धनी
- ४- शु० गन्धक
- ५- गन्धक रसायन
- ६- सारिवासव
- ७- लदिरारिष्ट
- ८- रसज्ज्वल तदि वटि

इन का प्रयोग मृदाणार्य किया जाता है।

लगाने के लिए निम्न शीर्षाधियाँ का प्रयोग करें।:-

- १- जांत्यादि तैल
- २- काली मरहम
- ३- दशांग तैल
- ४- मनःशिला तैल
- ५- घाव हर तैल
- ६- करन्धवादि फृत
- ७- गन्धा विरोजा का मरहम

- ८- जी रीत नासिक तैत      इन का बयस्थान अनुसार प्रयोग







## जुएं ( Podiculosis )

जुएं सारे शरीर पर होती हैं परन्तु पृष्ठ २ स्थानों पर पृष्ठ २ जाति की होती हैं। सिर और शरीर पर रहने वाली की प्राकृति भिन्न होती है। गुप्त स्थानों पर रहने वाली जूओं की प्राकृति भिन्न होती है।

जुएं दुर्गन्धित स्थान पर पैदा होती हैं जो व्यक्ति अधिक गन्धे वस्त्र तथा दूषित शरीर रखते हैं उन के शरीर में जुएं पड़ जाती हैं। यह विशेष कर सिर के बालों में होती हैं। जब व्यक्ति विशेष कर लम्बे केशों की स्त्रियां अपने केशों को साफ नहीं रखती तो वहां दुर्गन्धित स्वेद के कारण मैल भर जाने के कारण वहां जुएं पैदा हो जाती हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति दूषित तथा मैले वस्त्र पहनते हैं धोते नहीं उन के भी शरीर में तथा वस्त्रों में यह रोग हो जाता है। यदि इस प्रकार के व्यक्ति के वस्त्र कोई अन्य व्यक्ति प्रयोग कर लेता है तो उस के भी शरीर में चली जाती हैं। इस रोग का केवल लक्षण खुजली ही है।

यह रोग त्वचा पर शरीर पर तथा नाखों पर भी हो जाता है। जब नाखों पर यह रोग होता है तो वहां भी खुजली आरम्भ हो जाती है। जब इन की अधिकता होती है, तो रोगी अपने शरीर को, नाखों तथा सिर को खुजला डालता है तथा खुरचने से वहां पर ब्रण से बन जाते हैं। यदि सिर में खुजली हो तो वहां फोड़े से बन जाते हैं। यदि नाखों की सुजाएं तो वहां ब्रण से बन जाते हैं और वहां बन कर

Scar      ~~Scar~~ Eye

बन्दर को पड़ जाते हैं जिस से      यदि रोग हो जाते हैं। ~~Shah~~

Trichiasis

इन के कारण नाखों से स्राव स्रवता रहता है। तथा इस प्रकार अन्य चक्षुगत रोग हो जाते हैं। गुप्त स्थानों की जूएं रक्त में प्रवेश कर विष







को फेंकाकर *Typhus and Tricho fever* जादि रोगों को फेंकाने में सहायक होती हैं।

### चिकित्सा

१- बन्जाइल बन्जोपेट एमलशन *Benzyl Benzoate Emulsion* से बालों को तथा उन के मुलों में अच्छी तरह से मलना चाहिये। तत्पश्चात् २४ घण्टे के बाद में साबुन के साथ साफ कर लेना चाहिये। बालों को साफ करने के बाद ही बारीक कंधी को फेर कर बुरं खं तीसों जादि को निकाल देना चाहिये। इस प्रकार १-२ बार आवश्यक करना चाहिये।

२- डी०डी०टी० एमलशन २ बालों में लगाकर कुछ समय के बाद सिर को साफ कर देना चाहिये। इस प्रकार बुरं नष्ट हो जाती हैं।

इन के अतिरिक्त जुओं का नाश करने के लिये निम्नलिखित पेटेंट मुख्य जोगविया हैं।

२- बोर्नाट *Bornata Lysol*

इस लोशन को सिर के बालों में अच्छी तरह से मल ले ताकी यह लोशन बालों की जाड़ों तक पहुँच सके। २०-२५ मिन्ट बाद कंधी से बालों को साफ कर- कर तीसों निकाल दें। तत्पश्चात् साबुन से बालों को साफ कर लेना चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि यह लोशन बालों के ब्रूओं जादि स्थानों पर न ला सके।

३- क्युप्रैस *Cupress Merck*

३-४ चमच चाय वाले ले बोर सिर पर अच्छी तरह मर्दन करें। २ घण्टे के बाद साबुन खं सीतोष्ण जल से बालों को साफ कर दे तत्पश्चात् बारीक कंधी से बालों को साफ कर तीसों जादि निकाल दे।



विषय :- विष्णु जी

पृष्ठ संख्या :-

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी

विष्णु जी का नाम

-१

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

-२

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

-३

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

-४

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम

विष्णु जी का नाम



### सावधानीयां ०-०-०-०-०:-

इस औषध का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:-

- १- औषध आँखों एवं उन के बालों पर नहीं लगानी चाहिये।
- २- आग के निकट नहीं रखनी चाहिये।
- ३- १२-१२ घण्टे पश्चात् दो बार प्रयोग करनी चाहिये अधिक प्रयोग न करें।

४- Ascabil -M&B.                      इसे इमत्यन भी कहते हैं

इसी का प्रयोग विधि पहले लिख दी है।

५- Lorrexane Head इस का भी उसी प्रकार से  
Lotion

प्रयोग करना चाहिये।

आयुर्वेद मतानुसार निम्नलिखित औषधियां चिकित्सार्थ प्रयुक्त होती हैं।

१- त्रिफला चूर्ण ( मज्जनार्थ )

२- नीम तेल                      सिरपर लगाने के लिए

३- क-त्रिफला                      बालों को धोने के लिये ।

स- दहि

४- क- मन्जीठा क्वाथ

स- क्षीर वृक्षा क्वाथ

दोनों को मिला कर स्नान कराना चाहिये । इस के अतिरिक्त नीम की निमोली के चूर्ण को दही में मिला कर भी रोगाश्रान्त स्थान प्रयोग करना हितकारी है।

वक्तः शिला तेल का प्रयोग बू का लीलादि को मारने के लिए



परिचय

यह किताब श्रीमद्भगवद्गीता के अष्टाध्यायों में से एक अध्याय है

अथ योगसूत्रम्

योगश्चेतना शान्तिः - १

योगो नाम ध्यानात्मकः - २

योगो नाम ध्यानात्मकः - ३

योगो नाम ध्यानात्मकः - ४

योगो नाम ध्यानात्मकः - ५

योगो नाम ध्यानात्मकः - ६

योगो नाम ध्यानात्मकः - ७

योगो नाम ध्यानात्मकः - ८

योगो नाम ध्यानात्मकः - ९

योगो नाम ध्यानात्मकः - १०

योगो नाम ध्यानात्मकः - ११

योगो नाम ध्यानात्मकः - १२

योगो नाम ध्यानात्मकः - १३

योगो नाम ध्यानात्मकः - १४

योगो नाम ध्यानात्मकः - १५

योगो नाम ध्यानात्मकः - १६

योगो नाम ध्यानात्मकः - १७

योगो नाम ध्यानात्मकः - १८

योगो नाम ध्यानात्मकः - १९

योगो नाम ध्यानात्मकः - २०



हितकारी रहता है।

शरीर पर अम्यगार्थ निम्न तेलों का प्रयोग करने से यह रोग नहीं होता है।

१- त्रिफलादि तेल।

२- मृगराज तेल।

३- महा लाक्षादि तेल।

४- ब्रसी जावला तेल।

५- जामला तेल।

६- लाक्षादि तेल।

७- शिक्काकाई का तेल

रीठे के पानी से सिर धोकर जाय घण्टे के बाद कंधा कर लेनी चाहिये फिर इन तेलों का प्रयोग करना चाहिये।

### शय्या व्रण Bed Sores

चाहे किसी भी प्रकार का रोग हो उस के कारण जब रोगी अधिक देर तक शय्या पर पड़ा रहे तथा उस को करवट ठीक प्रकार से न दिलाई जाए और उसके शरीर की शुद्धि तथा उसके विस्तार की शुद्धि न की जाए और रोगी की शक्ति क्षीण होती जाए तो शय्या से अस्थि की रगड़ लगने से व्रण बन जाते हैं। इन व्रणों को ही व्रण **Bed Sores** कहते हैं।

यह व्रण पीठ में रीढ़ की हड्डी, त्रि, **Trochanters Heel & Ankle** (गुल्फ) जादि पर कुशा **Splint** (प्लैट) के ठीक तरह से प्रयोग न करने

से सर्व प्रथम वहां त्वचा पर तात चम-दो से बन जाते हैं। फिर व्रण और

तत्पश्चात् उन पर **Sculp** **Sculp** वा जाती है। यह अधिकतर पक्षाघात, रक्त-

विणता, **Myelitis** कोय जादि रोगों में जब कि मल मुत्रेन्द्रियों का



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥



नियन्त्रण ठीक प्रकार से न हो कर मूत्र स्वयं ही बाहर २ जाता रहता है तथा उस की सफाई का ध्यान नहीं दिया जाता तो रोगी की जंघाओं पर तथा पीठ पर यह व्रण बन जाते हैं जो कि रोगी को कष्ट का कारण बनते हैं।

### चिकित्सा

सर्व प्रथम रोगी की शय्या वस्त्र तथा शरीर की सफाई का ध्यान रखना जति आवश्यक है। यदि कोई ऐसा रोग हो तो उस में स्वयं ही अच्छे उपचारक को चाहिए, कि इन चीजों का ध्यान रखें इस से शय्या व्रण नहीं बनते। यदि यह व्रण बन भी जाएं तो यदि व्रणों में से स्राव रक्त पुरादि निकलें तो तुरन्त उस वस्त्र को बदल देना चाहिए। व्रण स्थान की कीटाणु नाशक Dettol, Potassium Permanganat Spirit आदि से साफ करके उस पर Powder लगा देना चाहिए Sulphonamide Ointment, Powder का प्रयोग करना चाहिए। Antibiotics का प्रयोग करना चाहिये। इन से व्रण अधिक दूषित नहीं होता। प्रत्येक घण्टे के पश्चात् रोगी की स्थिति बदल देनी चाहिए। रोगी की शय्या नरम तथा कम दबाव युक्त हो तो Ring Pads का प्रयोग करना चाहिए यदि व्रण तीव्र रूप धारण कर ले तो उस पर Adhesive Plaster लगाना चाहिए तथा Acriflavin Penicillin आदि का प्रयोग करना चाहिए तथा यदि व्रण पर Dead Tissue अधिक जा गए हों तो उन की निकास देना चाहिए। रोगों को मल पुरा अच्छी प्रकार से कराना चाहिए। इस प्रकार करने से शय्या व्रण ठीक हो जाते हैं। परन्तु वातिक रोग, अधिक जायु वाले तथा क्षीरम व्यक्ति का शय्या व्रण आसानी से होता जाता है।







वायुवैद्य ससुमाव्रण

०-०-०-०-०-०-०-०:- के लिए जात्यादि तेल, मरिचादि तेल,

आरोग्यावर्द्धनी चतुःगन्धक, मरिचादि तेल, सारिवादासव

मनःशिलादि तेल, यक्षद फुला का प्रयोग करने से रोगी को लाभ

होते देखा गया है।

कदर-कटन ( Corn )  
०-०-०-०-०-०-०-०

शर्करोन्मथिते पादे ज्ञाते वा कण्टकादिभिः।

मैदोरक्तनुगैरखेव दोषे वा जायते नृणां॥

सकीलकठिनो ग्रन्थिनिम्नमध्योन्मथोऽपि वा(

कोलमात्रः सरुस् स्त्रावी जायते कदरस्तु सः॥

(सु० निदान अ० १३ शु० २६-३०)

ज्याति कदर चलते फिरते समय सरकरा (रेत, कंकर,

पत्थर ) आदि से बार बार चोट या टक्कर लाने पर जव्वा काटे

आदि से ज्ञात होने पर मेघ और रक्त का अनुसरण करते हुए कुपित

दोषों से मनुष्यों के पाम में कील युक्त तथा स्पर्श में कठिन एवं

चारों ओर से निम्न और मध्य भाग में उन्नित, बेर के समान उठी

हुई पीड़ादायक गांठ उत्पन्न होती है। उस के फटने एवं काटने पर

स्त्रावी भी होता है। ऐसे उत्थान को ज्याति कील रूप मन्त्रि मांस

वृद्धि को कदर कहते हैं।

मौजाचार्य इस की उत्पत्ति हाथों में मानते हैं और शंकरा

तथा वात कंटक, कदर ये भी शब्द इस 'कटन' के ही बोधक हैं।



... ..

... ..

... ..

... ..

( ... ) ...

... ..

... ..

... ..

... ..

( ... ) ...

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..



हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं क्षरम्।

मांसकीलं जनयतः कुपितो कफमारुतः॥

ससत्यमिव तं देशं मन्यते तेन पीडितः।

क्षीरा कदरं केचिन्मन्यन्ते वातकृष्टकम्॥

किसी भी स्थान पर अधिक दवा पड़ने से वहाँ की त्वचा की सेलों में वृद्धि हो कर उस की उत्पत्ति होती है।

इस से सिद्ध है कि इस रोग की उत्पत्ति हाथ तथा पाँव की जगुलियों पर होती है। जहाँ कि हर रोज कठोर वस्तु, जैसे जुता पाने पत्थर आदि की रगड़ लगने से जगुलियों पर कठोर कट्टन से पड़ जाते हैं, उस स्थान के बीच में एक <sup>Plug</sup> सा बना जाता है। तथा वहाँ का मध्य भाग कठोर तथा बीच से कुछ दवा सा होता है। उस स्थान के चारों ओर के किनारे कठोर तथा उपर को ऊँचे उठे होते हैं।

### चिकित्सा

#### पारम्प्रात्य मतानुसार

सर्व प्रथम कट्टन को विधि अनुसार निकाल देना चाहिए

#### कट्टन निकालने की विधि:-

थोड़े २ दिनों के बाद कट्टन को काट देना चाहिये, और उस के नीचे चमड़े का गोस छिद्र युक्त टुकड़ा रखना चाहिये ताकि कट्टन पर अधिक दबाव न पड़े। जानसन कॉर्न पैड (Johnson, Cornpads) को रख कर फिर बुरावे आदि पहन कर कुट डालने चाहिये। कट्टन को नर्म रखने के लिए निम्न योग प्रयोग में लाये जाते हैं:-



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥





योग नं०-१  
०-०-०-०-०

- १- सैलिसिलिक एसिड ६० ग्रैम  
Salicylic acid  
२- एक्स्टेंडर कॅनेक्स इन्डिका १०१ ग्रैम  
Ext. Canvis  
३- फ्लेक्सिबल कोलोडियम १ ऑंस  
Flexible Collodion

इसे रात्रि के समय प्रयोग करना चाहिये। अटन के नर्म होने के बाद उस के नर्म भाग को काट देना चाहिये। इस प्रकार ४-१० बार करने से अटन ~~कठोर~~ बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

इस के अतिरिक्त निम्नलिखित योग भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

योग नं० -२

- १- सैलिसिलिक एसिड ६० ग्रैम  
Salicylic acid  
२- जिंक क्लोराइड १५ ग्रैम  
Zinc Chloride  
३- कोलोडियम फ्लेक्सिबल १ ऑंस  
Collodion Flexible

योग नं० -३  
०-०-०-०-०

- १- सैलिसिलिक एसिड ६६ ग्राम  
Salicylic acid  
२- कोलोडियम कुल एक ऑंस  
Collodion

इन के अतिरिक्त प्लास्टर का भी प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा  
०-०-०-०-०-०-०

सर्व प्रथम आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से इसे काट कर निम्न औषधियों प्रयोग में ला सकते हैं।

- १- जात्यादि तेल  
२- जात्यादि घृत





२-११-१९३६

१-११-१९३६

२-११-१९३६

३-११-१९३६

४-११-१९३६

५-११-१९३६

६-११-१९३६

७-११-१९३६

८-११-१९३६

९-११-१९३६

१०-११-१९३६

११-११-१९३६

१२-११-१९३६

१३-११-१९३६

१४-११-१९३६

१५-११-१९३६

१६-११-१९३६

१७-११-१९३६

१८-११-१९३६

१९-११-१९३६

२०-११-१९३६

२१-११-१९३६





३- करंजादि घृत

४- गोय्यादि घृत

५- घाव तेल

६- नाडी वर्ण हर तेल

जादि तेल एवं घृतों का पितु क्योक्ति स्थान पर लगाने से विशेष लाभ होता है और उस वर्णित मांस को भी कभी धीरे २ घुरचते रहें।

ल्युपस इरीथिमाटोसस Lupus Erythematosus

यह त्वचा पर लाल रंग के चकचे से होते हैं। यह चकचे उर्ध्व जङ्घत नाक, कान, सिर और मुँह पर होते हैं। यह शरीर पर समान होते हैं। यह चकचे रक्त वर्ण के होते हैं जोकि अन्दर को धसे होते हैं। इन पर से छिलकों को हटाने से सस्त कील के समान वस्तु होती है। सिर पर होने से बाल नष्ट हो जाते हैं। इस में शरीरिक लक्षण नहीं होते परन्तु रोगी की शक्ति क्षीण हो जाती है। मानसिक शक्ति का ह्रास भी होता है, इन चकचों में से रक्त स्राव होता है, जबकि यह विस्फोट का रूप धारण करते हैं।

चिकित्सा:-

स्थानीय:-

१- कैलोमिन लोशन Calomine Lotion

२- लोशियो एल्वा Lotion alvo

३- Tarsalycilic Ointment

इन औषधियों का लेप करने से छिलके शीघ्रता से उतर जाते हैं।

इस के अतिरिक्त बल्टावायोलेट रेज Ultraviolet Rays

२- एक्स रे

X-Ray



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



## ३- Carbon Dioxide Snow

इन सब का प्रयोग किया जाता है इस के अतिरिक्त  
पायरोगैतिक एसिड ५ से १० प्रतिशत भी प्रयोग करते हैं

अन्तः प्रयोग:-

माक्रोसीन

साईनोफ्राई

सोलेग्नाल

कुनीन

इन सब का प्रयोग किया जाता है ।

आयुर्वेद मतानुसार चिकित्सा :-अन्तः प्रयोग

स्वर्ण के योग का प्रयोग इस रोग में विशेष

हितकारी रहता है। यथा-

१- वृहत् कस्तूरी मंत्र

२- चतुर्भुज रस

३- वसन्त कुसुमाकर

४- महालक्ष्मी विलास रस

इन सब को प्रयोग बहुत लाभकारी है।

स्थानीय प्रयोग :-

अंजीर की बड़ एवं आम की गुटती को घिसा कर लेप

करने से विशेष रूपेण लाभ होता है।



संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



### ल्युप्स बलोरिस *Lupus Vulgaris*

यद्यपि यह रोग शरीर के किसी भी भाग पर होता है, परन्तु फिर भी चेहरे और नाक पर बहुत होता है। जब यह किसी स्थान पर होता है तो समान रूप से होता है जैसे चेहरे के दोनों ओर। यह प्रायः २० वर्ष की आयु के बाद होता है और बढ़ती हुई आयु के साथ साथ रोग भी बढ़ता जाता है फिर यह व्रण का रूप धारण कर लेता है। यह रोग त्वचा के कीटाणुओं के कारण *Pin Head* पिन के सिर के समान पिड़िकाय होती हैं। इन में *Pus* भर जाती है। यह पीले रंग की होती हैं। उखाड़ने पर नीचे कीलें के गढ़ने के निशान होते हैं। यह मुँह की श्लेष्मिक कला में भी हो जाता है। अस्थियों में न हो कर तरुणास्थि में रोग होता है। उपेक्षा करने पर कैंसर का भय रहता है।

### चिकित्सा पश्चात्य मतानुसार

इस रोग की चिकित्सा करते समय रोगी को सूर्य प्रकाश एवं शुद्धी वायु में रहना चाहिये उसे शक्ति वर्द्धक भोजन देना चाहिये। उसे अतिरिक्त विटामीन डी विशेषकर स्कंधरी सब्जियाँ फलादि का प्रयोग करना चाहिये

### स्थानीय चिकित्सा:-

रोगी को शल्य अथवा चर्मरोग चिकित्साके पास भेज देना चाहिये, कृष्ण स्थान के विकृत भाग को सुरक्षित अथवा काट कर निकाल देना पड़ता है तथा बाद में नया चमड़ा लगाना चाहिये। अथवा ऑक्जिथियों द्वारा भी गला दिया जाता है। बाद में उस पीक जादि को निकाल देते हैं।







फिन्सेनलइट *Finsonlight* एवं सूर्य की किरणें अधिक लाभकारी हैं।  
 इस प्रकार की चिकित्सा उस समय ही लाभ करती है, जब कि रोग अधिक  
 पुराना न हो ।

इस के अतिरिक्त कभी २ डायथर्म *Ditherm*

जबकि कार्स्टिक *Caustic* के रूप में मारी त्रिक्ल नाइट्रेट को  
 रगड़ने से भी लाभ होता है। आज कल किसी स्थान की बदसूरती को  
 नष्ट करने के लिए *Plastic Surgery* का भी प्रयोग बहुत किया जाता है।

आभ्यन्त्रीय प्रयोग ~~*Streptomycin and P.A.S.*~~

१- स्ट्रेप्टोमायसीन *Streptomycin* १ ग्राम  
 प्रतिदिन सूजीवेय

२- पी०ए०एस० *P.A.S.* १२ ग्राम

३- आइसोनिकोटिनि हायड्राजाइड १०० ग्राम

*Isonicotinic Hydrazide*

यह नक़्सा लगभग एक मास तक प्रयोग करना पड़ता है।

इस रोग की चिकित्सा में ज्वर रोगोंके नियमों का अवलम्बन  
 करना चाहिये। यद्यपि ज्वर रोग हितकारी बांणधियों से विशेष लाभ नहीं  
 होता। परन्तु फिर भी ये रोगी के लिये हितकारी रहती हैं। स्थानीय और  
 आभ्यन्त्रीय चिकित्सा ये दोनों साथ २ चालू रखने से लाभ होता है।

~~०-०-०-०-०~~







सीरायसिस Psoriasis

यह बार बार होने वाला एक सामान्य रोग है इस की

**Etiology** अभी अज्ञात है। इस में त्वचा पर अनियमित क्षेत्र पर

थीने से उभरे हुए धब्बे हो जाते हैं। इन पर यह धब्बे कुपेर **Elbow Scalp**

सिर तथा शरीर के दूसरे भागों पर निक्षल आते हैं।

इन से कौई स्त्राव नहीं निक्षलता। इस रोग का आरम्भ एक पिठिका

से आरम्भ होता है। इस पर एक परत सा होता है, यह धीरे २ चढ़ कर

रुपस की तरह रूप धारण कर लेता है। यह कुछ सप्ताहों तक रुक कर फिर चढ़

बढ़ने लगता है यह रोग कई बार आजीवन बना रहता है। यह रोग बचपन से

होता है। और स्त्री पुरुष दोनों को समान रूप से होता है। आयुर्वेद

की दृष्टि से शरद काल से यह रोग विशेष कर होता है क्योंकि हम ऋतु

से पित्त का कीप होता है। कई बार **Septic Tox** के कारण भी हो

जाता है। इस लिए रोगी के दान्त, **Tonsils** विशेष ध्यान

देना चाहिए अधिक आयु वाले रोगी में **Bacillus Cali** संक्रमण

करता है। यदि सिर पर की पिठिकाओं को नोच दिया जाए तो वहाँ

से रक्त निक्षलने लगता है। इस रोग में खुजली नहीं होती जब तक

**Streptococcus**

जीवाणु का आक्रमण न हो। यह रोग

बेहरे हाथ पैरों पर बहुत कम होता है। नाखूनों पर रोग के होने से

गठ्ठे पड़ जाते हैं किनारे ऊँचे हो जाते हैं।







## संक्षिप्त चिकित्सा

रोगी को आराम देना चाहिए

Sodium Salicylate

सेवन कराना चाहिए। मुक्त द्वारा ५ मिलीग्राम

Undecylenic

acid के ५ Pearls<sup>3</sup> बार देने चाहिए धीरे धीरे १०-१५

ग्राम बढ़ा कर <sup>Pessims</sup> सुजली सन्धि विकृति दूर हो जाती है।

आयुर्वेद तिलक घृत तथा पंचतिलक घृत का प्रयोग कराना चाहिए।

स्थानिक प्रयोग के लिए यदि रोगी सहन करने योग्य हो

तो सब से प्रभावशाली औषध <sup>Chrysarodin</sup> १५ से ६० ग्रेन का

प्रलेप कराना चाहिए परन्तु इस से त्वचा शोथ हो जाती है साथ ही

वस्त्र सराव हो जाते हैं। इस औषध की सिर के लिए प्रयुक्त नहीं करना

चाहिए और इस से दांतों की बधना चाहिए नहीं तो मयानक

Conjuncti

रोग हो जाता है।

vitis

आयुर्वेद में

रसाजिजनं सप्रमुखाङ्गीजं युक्तं कपित्थस्यरसेन लेपः

करन्जबीजैर्दण्डजं सृष्टं गो मूत्र पिष्ट्वा पराः प्रदेहः

अर्थात् रसात, पुंवाङ्ग के बीज कपित्थ के रस से इन का लेप करना

विशेष हितकारी है।

दूसरे करंजीव, लडगज ( पुंवाङ्गीठा ) कुछ इन का गो

मूत्र मिला कर लेप करना चाहिए।

क्राइसोरविन २० प्रतिशत क्लोरोफार्म में बना कर सप्ताह में

एक बार लगाना चाहिए।

नारियल की कचरी तथा शीशम का सार भाग का तेल और

सेलिसिलिक ऐसिड बहुत उत्तम है।



संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश

संस्कृत-शब्द-कोश



आयुर्वेद में तद्विर का प्रयोग करना चाहिए।

का प्रयोग करना चाहिए। चिरकासीन पद्यों में Ultra Violet Rays  
X-Ray चिकित्सा  
 करनी चाहिये।

आयुर्वेद में रक्त परीक्षण तथा रक्त शोधन एक उत्तम  
 उपाय है। इन निम्न कुछ औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

१- तद्विरारिष्ट

२- रक्त भाणिक्य

३- त्तिकत घृत

४- नक्काणिकि क्याय उत्तम है।

लाने के लिए खड़क, कुष्ठ सेन्धव, चरसों, विडंग

इन को कांजी में पीस कर लेप हितकर है या चीड़ का तेल लाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
 ०००००







## पेम्फिगस (Pemphigus)

इस रोग का कारण अज्ञात है, परन्तु कई विद्वान् इसे जन्य मानते हैं। यह एक विरला सा रोग है। जो कच्ची की हाँता है वह *Strepto coccus* जीवाणुओं के संक्रमण द्वारा होता है।

इस में त्वचा की शैलिक कला में मोटे २ फफोले से कल जाती है। यह फफोले बनेक आकार के होते हैं। इन का Size एक मटर के दाने से लेकर मर्गी के बड़े तक के आकार के होते हैं। यह रोग शरीर के किसी भी अंग मुख नाक कान अंत तथा बाह्य जननेन्द्रिय संस्थान त्वचा से ~~कुछ समय तक रह सकता है।~~ पर ही सकता है। यह कुछ सप्ताह से कुछ मास तक रह सकता है इस के फफोलों में से प्युन स गन्धला स्राव निकलता रहता है। इन पर शुष्क छुरण्ड से खा जाती है। यह ठीक हो कर फिर जीर्ण रूप धारण कर के पुनः प्रपङ्गुप्ति हो जाता है। जिस से रोगी का स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है जिस से अन्त में रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

### चिकित्सा-

इस की चिकित्सा बाह्य स्थानिक तथा आन्तरिक दो प्रकार की होती है।

इस रोग में *Fowler's Solution* के रूप में संश्लिष्ट चीन मुख द्वारा सेवन कराया जाता है इस के हलाकत *A.B.* का *Intravenous-ly injection* २ से ५ ड्रॉ की मात्रा में दिन में दो बार पानी से दिया जाता है। जितने भी *Asclepi* के जोग ही दिए जा सकते हैं।







कुछ अन्य योग निम्न लिखित हैं:-

१- क्विनीन

२- टिपासिमाइड      Triparasamide

३- कुग्गुलीन सीवा      Coagulin Giba

४- सैलिसिन      Salicyn.

इसके अतिरिक्त रोगी की स्थानिक सफाई करने के लिए  
Potassium Permanganate (Kanoy) Solution.

बना कर उस में रोगी को Tub Bath स्नान कराना चाहिए। या

Acriflavin 1000:1 Solution बना कर वस्त्र Gauge मिला कर

फफौली पर रचना चाहिए Silver Nitrate 2% के घोल में गण्डुषा

करना चाहिए तथा Cocoin का घोल मुँह में लगाते हैं। इस के हलाका

Sulpha Thizol 5% गिलसरीन में मिला कर प्रयोग

किया जाता है। Pencilline, wax, Brilliant Green.

आदि भी लाभकर होते हैं। यदि आवश्यकता हो तो blood Transfusion

भी किया जाता है तथा पोष्टिक मोजन किया जाता है।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से यथादीर्घ चिकित्सा करनी चाहिए।

निदान का परिणाम आदि निम्नों को अपनाना चाहिए।

यदि रोगी में अन्य उपद्रव भी हों तो उन उपद्रवों की

चिकित्सा करनी चाहिए। विशेष कर लीणाता नाशक उचित आयुर्वेदीय

योगों का अवलम्बन यथा वस्था निश्चित किया जा सकता है। इस में विशेष

मल्लवटी शिला सिन्दूर आदि योग हितकर रह सकते हैं।



सर्वप्रथम यह बात ध्यान में रखनी चाहिए :-

1- प्रस्ताव

2- प्रस्ताविका

3- प्रस्ताविका

4- प्रस्ताविका

5- प्रस्ताविका

6- प्रस्ताविका

7- प्रस्ताविका

8- प्रस्ताविका

9- प्रस्ताविका

10- प्रस्ताविका

11- प्रस्ताविका

12- प्रस्ताविका

13- प्रस्ताविका

14- प्रस्ताविका

15- प्रस्ताविका

16- प्रस्ताविका

17- प्रस्ताविका

18- प्रस्ताविका

19- प्रस्ताविका



### अमहोरिण Prickly Heat

ग्रीष्म ऋतु में जब अधिक स्वेद आता है तो उस के दुष्प्रभाव होने के कारण छोटी २ रक्त वर्णयुक्त पिण्डिकाएँ सारे शरीर पर निकलने लगती हैं। यदि पसीने की सफाई की जाए तथा उस को दूर किया जाए तथा स्नान आदि से सफाई की जाए तथा शुद्ध वायु का सेवन किया जाए तो यह रोग नहीं होता।

### चिकित्सा

इस रोग में सर्व प्रथम स्वेद की सफाई का ध्यान रखना चाहिए इस के लिए स्नान करते रहना चाहिए फिर Dusting Powder का प्रयोग करना चाहिए या Prickly Heat Powder लगाना चाहिए इस के अतिरिक्त कुछ अन्य Lotions प्रयोग करने चाहिए

|    |                 |         |
|----|-----------------|---------|
| १- | Creso sublimate | 3 gram  |
| २  | Camphor Powder  | 10 gram |
| ३- | Boric Acid      | 2 gram  |
| ४- | Starch          | 4 dram  |
| ५- | Glycerine       | 4 "     |
| ६- | Olive oil       | 4 "     |
| ७- | Aqoua           | 4"      |

इस की चिकित्सा विभिन्न आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से निदान का परित्याग स्नान एवं शीतल द्रव्य शर्करा, प्रवाल, पिष्टी का प्रयोग आदि हितकारी है।







## हर्पीस जोस्टर (Herpes Zoster)

यह रोग वात नाड़ी जन्य रोग है। यह रोग एक प्रकार के Virus के द्वारा होता है। यह Virus Sensory Spinal ganglia जा कर Inflammatory Lesion

बनाता है जिस से इस रोग की उत्पत्ति होती है। कभी २ यह Meningitis शुष्कप्लावुह शीर्षावरण शीथ या स्थानिक बाधात Local Trauma के कारण प्रान्तस्थ नाड़ीयों के मार्ग में

विस्फोट होने से होता है। उस स्थान पर दर्द पीड़िका के पहले या बाद में भी होता है। यह रोग Tabes Dorsalis संक्रिया विष Arsenic Poisoning स्थायित्व कैरिस् Spinal careis Chécken Fox (मसूरिका) के उपद्रव रूप में होता है।

इस रोग के प्रारम्भ में ज्वर होता है तथा नाड़ी की विकृति के कारण तीव्र वेदना होती है। कुफुसावरण शीथ Pleurisy की संका रहती है। रोग प्रारम्भ होने से २-६ दिन के अन्दर रक्त वर्ण की पिण्डिकाई दिताई देती है। जिन में स्वाव भर जाता है और विस्फोट का रूप धारण कर लेते हैं। इन में दाह वेदना तथा बुज्जी इतनी बढ़ जाती है। यह लक्षण २-३ सप्ताह तक रहते हैं। उपचार न करने से फटाघात सन्धि शीथ बादि लक्षण और होजाते हैं।

### चिकित्सा

#### स्थानिक चिकित्सा-

Talcum Powder टैलकम पाउडर की लम्पण स्थान पर छिड़ कर बाद में

हमें से बन्धन कर दें। दुरण्ड जब उतरने लगे तब उस स्थान पर



(संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची

विषय-सूची (संस्कृत-भाषा) विषय-सूची



Amoniated 25

पारद महलम की लगाना चाहिये। इस के

अतिरिक्त संक्रामित भाग पर कोलाय्डीन ( Collodion ) का भी प्रयोग  
लेपार्थ कर सकते हैं।

जब नेत्र की श्लिष्मिक कला में शीथ आ जाती है तो उस समय

उस स्थान पर Atropene Drop एवं ठंडी सैक बार २ देना चाहिये।

Deep-x-Ray Ultra Violet Rays से चाराम होता हुआ भी प्राणः

कर देखा गया है।

अन्तर्गामी प्रयोग  
o-o-o-o-o-o-o-o

वेदना हर औषधियों का प्रयोग करना चाहिये यथा

१- सरिडोन (Saridon)

२- कोडोपिरिन (Codopyrin)

३- ऐस्प्रीन (Asprin)

४- मोर्फीन (Morphine)

५- एक्रोमायसिन (Aureomycin)

६- ओरिलोमायसीन (Aureomycin)

७- Vilamin B1 or B2

८- पिटुट्रिन ( Pitutrin )

इन औषधियों का अन्तर्गामी प्रयोग प्राणः करके इस रोग

के लिये हितकारी रहता है।

इस रोग की चिकित्सा बाहुर्वेदीय दृष्टि-कोण से दीवनी के

अनुसार जैसे लगाना हो उन्हें जांच कर तत्सुदीर्घात्मक योग या प्रक्रिया का

प्रयोग करा कर ताम उठाया जा सकता है।







### हर्पिस सिम्प्लेक्स (Herpes Simplex)

इस रोग में शरीर में छोटी २ तथा रक्त वर्ण की

चमकदार Eruptions फफोले से उत्पन्न हो जाते हैं। यह रोग

Virus के कारण होता है परन्तु यह Virus Herpes Zoster

रोग के Virus से भिन्न होता है। यह पिठिकाएं विशेष कर

नाक, मुँह, गाल, हाँठ तथा कभी २ गुल्लिकां यर्वात जननेन्द्रिया

संस्थान पर भी पाई जाती हैं। इन पिठिकाओं में अधिक दाह होती है।

यह रोग निमोनिया, मलेरिया या Meningites

आदि रोगों के उपद्रव से भी हो जाता है।

### चिकित्सा :-

इस की चिकित्सा करने के लिये शामक (Soothing)

पदार्थ Starch (जिंको) अथवा कोलोडियम Colodian

का लेप करना चाहिये। या अन्य किसी अवसादक लेप करें। पुनः न हो

इस लिये Small Pox वैक्सीन के इन्जेक्शन कराने चाहिये

हालों पर स्पष्ट शुद्ध वारिक पाल्स्टर की लगाने से लाभ

होता है।

### अपमन्त्रीन :-

एस्परीन

फिट्रुटी एकस्त्रिक

क्लोरोमासिटोइन आदि नवीन औषध का प्रयोग इस प्रकार

के रोग में विशेष लाभकारी रहता है।







### पेलैग्रा (Pellagra)

यह रोग किसी भी शायद में हो सकता है। स्त्री तथा पुरुषों में समान रूप से होता है। यह रोग पोषण प्रभाव जन्य विशेष कर (Vitamins, Riboflavin) तथा (Nicobanic Acid) की कमी से यह रोग होता है। इस अवस्था में मूत्र में Porphyrin अधिक मात्रा में निकलने लगता है। यह रोग मनकी का अधिक प्रयोग करने वालों को होता है।

इस रोग में रोगी की अग्नि मन्द हो जाती है। त्वचा पर शीथ होने लगती है। अतिसार मानसिक शक्ति ह्रास Dementia आदि लक्षण बढ़ जाते हैं। इस में निम्नाना Loss of weight मार में कभी हृदय की गति अधिक, अजीर्ण, उदासीनता आदि उपद्रव हो जाते हैं। यह रोग बसन्त ऋतु में अधिक होता है। यह रोग दो स्थानों पर प्रभाव डालता है:-

१- त्वचा पर प्रभाव डालता है इस में जो स्थान हाथ पैर, गर्दन मुख आदि नग्न होते हैं और उस पर सूर्य की किरणों सीधी पड़ती है। वहाँ पर कोठ उत्पन्न हो कर दाह कण्डू आदि हो कर फफोले से बन जाते हैं। त्वचा मोटी सी हो जाती है।

२- पाचन संस्थान पर प्रभाव डालता है इस में आमाशय तथा जिह्वा की श्लैष्मिक कला पर शीथ हो जाती है। अन्न नलिका में दाह, वमन पुष्ट से तात्प्रास्राव निस्तता है। धैर्य रहती है अतिसार रक्त मूत्रता अम्लीयता हो जाते हैं। शरीर शीथ तथा मूत्र मार्ग शीथ हस्त जोड़ दाह तथा शिरा रक्त भी पाया जाता है।







### चिकित्सा ०-०-०-०:-

इस रोग में/उन रोगियों को प्रयोग करना चाहिए जिन की कमी से यह रोग होता है। इस लिए Nicotanic Acid तथा Ribolavin तथा ~~Riboflavin~~ Vitanien B की मात्रा अधिक ही ऐसे पदार्थों का सेवन कराना <sup>Tablets</sup> Nicotanic Acid मुँह के द्वारा भी दे सकते हैं।

त्वचा मार्ग द्वारा ५० मिलीग्राम की मात्रा में दे सकते हैं। यदि मानसिक <sup>Dementia</sup> हो तब <sup>Interavenous</sup> ~~Interavenous~~ <sup>Rest</sup> ~~Rest~~ द्वारा <sup>1000</sup> ~~1000~~ मिलीग्राम की मात्रा में देना चाहिए इस <sup>1000</sup> ~~1000~~ सप्ताह के लगभग करके बन्द कर देना चाहिए क्योंकि अधिक मात्रा में प्रयोग करने से जी मचलने लगता है कमन जाती है और त्वचा में दाह तथा कण्टू प्रारम्भ हो जाती है। इस के स्थान पर <sup>Riboflavin</sup> १-३ मिलीग्राम तुरन्त देनी चाहिए।

इस के अतिरिक्त प्रोटीन युक्त मौज्जा पदार्थ दें। मौजन में तथा संकुचित धान्य देने चाहिए। मांस मछली, सब्जी ताजे फल, हरी सब्जी <sup>Carbohydrates,</sup> <sup>fat</sup> ताजा दूध, टमाटर आदि देना चाहिए। रोगी को <sup>complete</sup> <sup>Rest</sup> करवाना चाहिए <sup>Intra muscular</sup> तथा मुँह द्वारा Vitamin B 1 १०० मिलीग्राम की मात्रा प्रयोग कराना चाहिए।

### आयुर्वेद में

:-१- गोक्षुमाला प्लुत

२- नवानस तीह

३- आरीय वर्यनी

४- मूत्र यदि देने चाहिए।



विषय

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

विषय

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

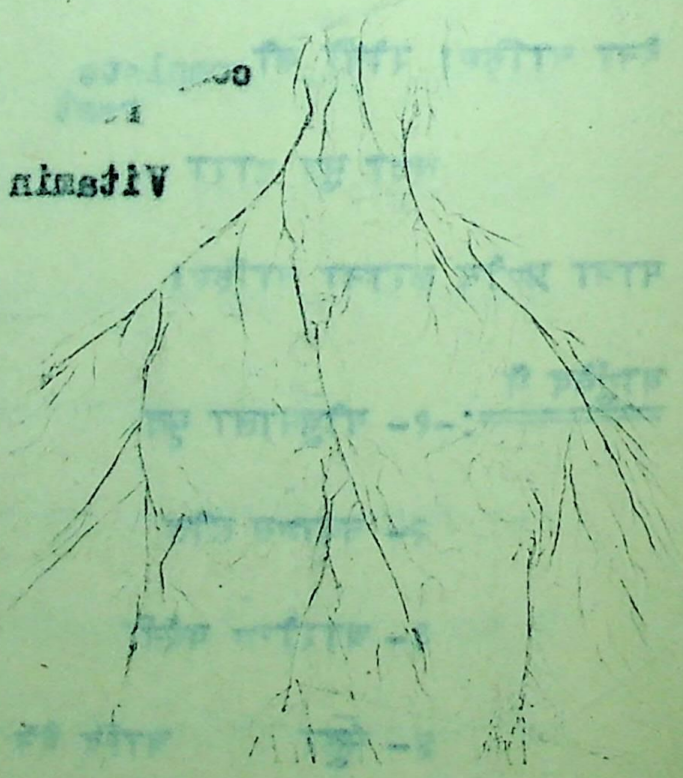
यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है जो कि विषयों पर लिखी है

यह किताब है

Vitamin B 1





# टीनिया सिरसीनेटा Tinea Circinata

यह रोग एक प्रकार के <sup>fungus</sup> द्वारा उत्पन्न होता है।

*Streptococcus lymphangitis*

इस में जीवाणु भी रोगोत्पत्ति

में सहायक है। गर्दन सिर कन्धी पर *ring worm* के रूप में दिखाई

देती है। उन *ring*s पर से पपड़ी सी छूटती है। इस की *tinea Cruris*

भी कहते हैं। इस में उस स्थान पर विशेष कर सिर पर लाल २ चकटें से

पड़ जाते हैं। जब यह परस्पर मिल जाते हैं। तो वह बहुत मिल जाते हैं।

तो वह बहुत बड़ा स्थान घेर लेता है। यह रोग अधिकतर जनैत्रिक स्थान

जंघा, कटांग, स्तनों पर पाया जाता है।

## चिकित्सा

०-०-०-०-०:- निम्न औषधियाँ लाभकर हैं:-

- १- *LIQUID IODINE PAST* भाग १
- २- *SALYCITIC ACID* भाग २
- ३- *BENZOIC ACID*
- ४- *ALCOHOL*
- ५- *FUNGICIDAL OINTMENT*
- ६- *MULTI FUNGIN POWDER*
- ७- *TENNA FAN OINTMENT*
- ८- *PHENYL MERCURIC NITRATE*

आदि का प्रयोग करना चाहिए।



विषय सूची

१. विषय सूची

२. विषय सूची

३. विषय सूची

४. विषय सूची

५. विषय सूची

६. विषय सूची

७. विषय सूची

८. विषय सूची

९. विषय सूची

१०. विषय सूची

११. विषय सूची

१२. विषय सूची

१३. विषय सूची

१४. विषय सूची

१५. विषय सूची

१६. विषय सूची

१७. विषय सूची

१८. विषय सूची



आयुर्वेद में  
०-०-०-०-०:-

दावीं रसाज्जन वा गो मूत्रेण प्रयाक्तं कुष्ठम्।

अर्थात् हल्दी तथा रसाज्जन की गो मंत्र के साथ मिला कर प्रयोग करना उत्तम माना गया है। अमलतास मत्त, मकीर पत्र की तन्त्र में पीस कर लेप करना चाहिए। फिनातबीज, मुलहठी तथा कुठ सैद्यव आदि की कांजी में पीस कर लेप करना चाहिए त्रिहरिद्राक्षत, गुंजा तैल का प्रयोग भी लाभ कर है।

Exfoliative - Dermatitis.

इस में त्वचा पर शीथ आ जाती है। पहले त्वचा लाल हो जाती है फिर वह तीली दूर हो कर त्वचा के उपरी तल पर त्वचा का कुछ भाग उतरने लगता है वहाँ से स्राव निकल कर जम जाता है इस के कारण निम्न है:-

१- कई ऐसी औषधियाँ ऐसी प्रयोग में लाई जाती हैं, जिन से विपरीत अन्य उपद्रव हो जाते हैं। जैसे Sulpha drugs वाल रगने वाली औषधिका परद के योग आदि के प्रयोग से त्वचा पर शीथ आ जाती है।

२- दूसरे कई बार पौनसलिन कुनीन सैल्युला आदि को उचित प्रयोग न करने से भी त्वचा पर शीथ हो जाती है।

३- कई अन्य त्वचा रोगों के उपद्रव होने पर भी यह त्वचा शीथ हो जाता है (४) कई अज्ञात कारणाँ से भी होता है।



प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया  
- 18 -

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

- 18 -

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया

है कि यह प्रमाणित किया जाता है कि यह प्रमाणित किया



### बायुनिक मतानुसार चिकित्सा

१- वीरिक एसिड १ ग्राम जल में १२ ग्रेन डाल कर  
फट्टी कर।

२- पीटोसिलियम पर्मेनेंट ( १०००० में १ )

की फट्टी करने लाभ होता है।

इस २-३ घण्टे पर फट्टी बदलते रहना चाहिये जब लग्ना  
स्थान से लालिया समाप्त हो जाये तो उस स्थान पर निम्न मरहम का  
तेल लगानी चा हिये।

१- कैलमिन लोशन

२- वीरिक मलहम

३- जिंक मलहम

४- बलिव बाल

५- ग्लिसरीन

इन सब का प्रयोग लग्ना स्थान पर करना चाहिये।

रोग रोगी को निम्न लिखित द्रव्यों से युक्त भोजन देना चाहिये।

जिस में अधिकतर प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट विटामिन हो। यथा मांस अण्डा  
दूध आदि का प्रयोग कराने।

जदि लग्ना स्थान से पानी बहने लग जाये तो उस समय

उस स्थान पर तार्कर बल्यूनिम एसिडेट १ में १ माग (

की लगाना चाहिये।

Aluminium Acelate

बायुनिक मतानुसार चिकित्सा

नारिल तेल

बीम पत्र



संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 1

संस्कृत

( १०००० ) संस्कृत-विश्वकोश - 2

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 3

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 4

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 5

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 6

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 7

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 8

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 9

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 10

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 11

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 12

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 13

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 14

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 15

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 16

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 17

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 18

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 19

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 20

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 21

संस्कृत-विश्वकोश-प्रस्तावना - 22



तेल में जला कर तेल को उस स्थान पर लगाते।

इस के अतिरिक्त मलाणार्थ निम्न प्रयोग करने चाहिये :-

१- केशोर गुग्गुल

२- चारोम वदनी

३- सारिवासव

४- मदिराष्टि

इन सब का प्रयोग करने से लाभ होता है।

हर्पेटाईटिस हर्पेटोफार्मिस (Herpetiformis)

यह कभी २ तथा बार २ होने वाला रोग है। इस की

(Etiology) निदान (कारण) अभी तक नहीं पता चला। यह

गुल्मों के रूप में कौण मुक्त तारों की तरह Semicircular अर्ध

चन्द्राकार या वृद्धाकार होते हैं। यह शरीर में कदा कुहनी ज्वाला घुटनों

आदि में अन्दर की तरफ छोट २ छालों से पड़ जाते हैं। यह छालें सात तथा

शीघ्र मुक्त होते हैं। इस के आक्रमण

प्रायः वर्षों तक आते रहते हैं। परन्तु स्वास्थ्य पर उनका

विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। यह Buccal Cavity में भी हो सकती

है।

चिकित्सा:- पारम्परिक मतानुसार

इस रोग की चिकित्सा में अधिकतर लाभ कर पारा मुक्त

रोग ही रहते हैं।

फोल्डर सॉल्यूशन (Fowler's Solution & Assenic  
lis

या लाहकर आसिनी केसिस २-५ मिनिम मात्रा में।







एशियाटिक पिल Asiatic Pill के रूप में देनी  
चाहिए।

सल्फासायनि या अर्से फिनेमीन की सूचि भेद के रूप में  
देना चाहिए Sulphapyridine सल्फापायरीडिनी की २-४ गीली  
दिन में ३ बार देने से लाभ होता है।

स्नान:-

गैहू के बिलके को जल में उबाल लें फिर उस जल से हम्प  
स्थान को साफ करें। फिर निम्न रोग का प्रयोग करना चाहिए।

कार्बालिक एसिड २-३ प्रतिशत

लाहकर पोटैस हाइड्रॉक्स (Potas Hydrox) 2.5%

लाहकर पिसिज कार्बोनिक्स Lig picis corboxis इन क

लेप के रूप में इस रोग का प्रयोग हितकर रहता है।

आयुर्वेद मतानुसार चिकित्सा

पामाह लेप वा २

पामाह लेप का प्रयोग हितकारी रहता है।

डर्मेटाइटिस सेबोर्रॉइक (Dermatitis seborrhoeic)

यह एक Scaly affections कहते हैं। यह शिर

alp मूसी Daud काफि Strenel शिर तथा कान  
ruff

के पीके होता है। बालों की जड़ों में से मुर-कने पर यह विष्पट से बासानी  
से पृथक् उतरते रहते हैं। बालों की जड़ों में ताल २ दाने हो जाते हैं। कभी  
कभी इन पर शीथ हो जाती है तो यह बुढ़ जाते हैं और स्निग्ध पीले दाने  
से बन जाते हैं। स्निग्धता का कारण स्नेह ग्रन्थियों में से निकलने वाला  
प्राय है इस रोग में यही ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं।







कमीर Staphylococcus और Streptococcus  
+us

कद कर वहाँ संक्रमण का देते हैं जिस से मुँह की तथा फोड़े कुन्डली बन जाती हैं यह अवस्था बहुत कष्ट दार हो जाती है।

यह रोग कमीर सिर के बालों के साथ २ सफाई का ध्यान न रखने से कदा कदा पीठ भाग स्थान पर भी हो जाता है। यहाँ व जहाँ बालों में स्नेह ग्रन्थियाँ अधिक पाई जाती वहाँ यह रोग होता है।

पारंपरिक मतानुसार चिकित्सा :-

१- गन्धक

२- साबुन

३- सर साबुन

४- कावोसिक

इन में किसी एक कृमिघ्न औषध के बालों को साफ कर लेना चाहिये। सिर के बालों को शुष्क धाके इन औषधियों का प्रयोग हितकारी रहता है। इन सब औषधियों का प्रयोग रात्रि समय करना चाहिये।

१- सैलिसिलिक एसिड (Salicylic Acid) १८ ग्रैन

२- हेडेन एम्पुसिफाइंग वेस (Heden's Emulsifying)

३- बथवा सोप का तेल (Base or coconut २ बसिल  
oil)

३- सल्फर प्रसीपीटेट (Sulphur Acid) २० ग्रैन

योग नं० -२

सल्फर प्रसीपीटेट (Sulphur Acid) २० ग्रैन

सैलिसिलिक एसिड (Salicylic Acid) १८ ग्रैन

टार ऑयल (Tar oil) ५ मिनिम







पिक्सलिब वट (Pix Oil)

५ मिनिट

क्रीम

(Cream)

२ ग्राम

एमल्सीफाइंग बेस (Emulsifying base)

इस का प्रयोग

सिर पर करने से लाभ होता है।

योग - नं० ३

सल्फर प्रेसी पीटेटिड (Sulphur Presip)

२० ग्राम

एसिड कार्बोलिक (Acid Carbolic)

४ ग्राम

वैसलीन बथवा ह्येडन'स Heden's

Emules: Baseo Vaseline

२ ग्राम

इस योग का प्रयोग सिर के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर कर

सकते हैं।

आयुर्वेदी-मतानुसार निम्नलिखित

१- धतूरे तेल का प्रयोग करने से लाभ होता है।

२- गुलाबी मरहम का भी प्रयोग लाभकारी है।

कभी २ रोग अधिक बढ़ जाता है तो उस अवस्था में रोगी को

वरिव (Exema)

का प्रयोग करने से लाभ होता है।

शतपीनक (Carbuncle)

कण्डू ह्येस्त्वतिकीप्ति गैन्ग्लिस्त्व पानि देश - पिंड का करोति

राम्।

उपेक्षाणात् पाण्डुपेति दाहणी रज्जा च भिन्ना-रज्जाफिनवाहिनी  
तत्रागमो मत्र पुरीष रेतसां प्रणाले कः श तपीनकं वदेत्।।

अर्थात्:- कण्डू और रज्जा पदार्थों के सेवन से अत्यधिक प्रकृति

हुआ वात गुदाप्रदेश में एक पिण्डिका की उत्पन्न कर देता है जो कि उपेक्षा



प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

(प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)

प्रमाणित (प्रमाणित)



करने ( चिकित्सा न करवाने ) पर पक जाता है, उस में बहुत दुःख दाह पीड़िकारं होती है फटने पर उन में से रक्त वर्ण का फेन युक्त द्राव होता है। इस के अनेक मुत्र वाले ब्रणों से मूत्र मल तथा शुक्र निकलता है अतः इसे शतपीनक कहते हैं।

सूचना :- जब पूरा कर्ं दिशावर्ती में फल कर और अनेक नाड़ी ब्रणों की उत्पन्न हो करता है। तो उसे शतपीनक या मेल्टीपल फिस्चुली कहा जा सकता है।

इस रोग की उत्पत्ति मधुमेह के रोगियों में गर्दन पीठ पर शीघ्र हो जाती है। वहां पर लाली आ जाती है फिर वह स्थान सूखी करने पर मृदु सा लगता है। इन के फटने पर पीप निकलती है।

#### पारम्परिक मतानुसार चिकित्सा

सर्व प्रथम इस की चिकित्सा करते मधुमेह की चिकित्सा करनी चाहिये। मूत्र की परीक्षा कराते रहना चाहिये। इन्सुलीन अथवा प्रोटमीन जिक इन्सुलीन आदि प्रयोग में कराने चाहिये। मे गसल्फ वोरिक ग्लिसरीन की पट्टी प्रति ६-६ घण्टे बाद करनी चाहिये।

|                            |          |
|----------------------------|----------|
| १- मगसल्फ (Meg Sulph)      | २४ ग्राम |
| २- बोरिक एसिड (Boric Acid) | २ ग्राम  |
| ग्लिसरीन (Glycerine)       | १२ ग्राम |

मगसल्फ का चूर्ण वारिक कर ले फिर इस में ग्लिसरीन मिला कर १०० डिग्री तक गर्म कर ले गर्म होने के बाद इस में धीरे २ दोनी बन्ध पीठ मिला देनी चाहिये। इसे गर्म पट्टी पर लगा कर प्रयोग करना चाहिये। यदि सम्पन्न होने लगे तो उसे कार्बोसिक लीज्वर द्वारा साफ कर लेना चाहिये।







●

पैगनीज

२- प्रोपिडिक्स Propidex mg B. इस परहम

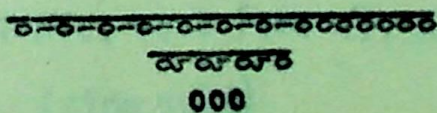
का प्रयोग करना चाहिये।

### ३- कार्वाणिक वीरिक्त ग्लिसरीन की पट्टी में सामक़ारी

रहती है।

इस प्रकार के रोगी को शल्य चिकित्सक के पास भेजना चाहिए। और मधुमेह की आन्तरिक चिकित्सा के साथ ही बाह्य चिकित्सा भी करनी चाहिए।

रक्त शोधक द्रव्यों को शिलाजीत आदि के साथ आन्तरिक  
प्रयोग में लाना चाहिये या लगाने के लिये कर-जवाब घृत जात्यादि  
तेल आदि द्रव्यों का प्रयोग करते रहना चाहिये।









पानी धाल Impetigo Contagiosa

यह रोग Streptococcus and staphylococcus

जीवाणु के संक्रमण से होता है तथा कमजोर कन्वी को होता है यह रोग

प्रायः कन्वी को होता है और इस में कन्वी के Fore Head chin and

face

माथे, ठोड़ी और चेहरे पर बचक त्वचा के नीचे किसी एक

स्थान पर लाल रंग की पिडिकाएँ सी बन जाती हैं। इन विस्फोटों में

पूय भर जाती है फिर यह पय सूखने लगती है। बुरण्ड गिरने लगते हैं।

परन्तु जब इन में से जहाँ दूसरे स्थान पर लगता है वहाँ यह रोग का कारण

बनता है। इसी लिए जब कन्वी में दूसरे स्थान पर लगता है वहाँ यह रोग

का कारण बनता है। इसी लिए जब कन्वी में दूसरे कन्वी सेलते हैं तो वहाँ

यह एक कन्वी से दूसरी कन्वी में रोग संक्रमण द्वारा प्रसारित होता है। यह

रोग २-४ सप्ताह के अन्दर स्वयं ही शान्त हो जाता है। जब इन के बुरण्ड

गिर जाते हैं तो वहाँ कोई चिन्ह शेष न रह कर स्थान साफ हो जाता

है इस में सुजली नहीं होती, यह रोग उत्पन्न में होने वाला है।

इस रोग पर प्रायः कर के निम्न योग प्रयुक्त होते हैं।

|                |                |         |
|----------------|----------------|---------|
| जिंकसल्फ       | (Zinc Sulf)    | २ ग्रैन |
| का पर सःफ      | (Copper Sulph) | १ ग्रैन |
| डिस्टिल्ड वाटर | (Aq. Dist.)    | १ बांस  |

कभी २ बुरण्ड भी जम जाते हैं तो इस समय वीरिक स्टार्च

पुल्टिस से बलग कर देना चाहिये।

पुल्टिस:-

वीरिक स्टार्च १ भाग

निशास्त गैर

१५ भाग



संस्कृत-विभाग  
वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी

संस्कृत-विभाग, वाराणसी



ता जा जल

तीन चमच

विधि:-

सर्व प्रथम उपरोक्त दोनों औषधियाँ को मिला कर उस में ठंडा जल मिल कर उलाते जायें फिर उबलता २ पानी डालें, जब बुल्लिस बन जायें ती ठण्डी कर लें। फिर उस को गाँज बंधवा मलमल के कपड़े पर रख कर हल्का स्थान लगा दें। हम के अतिरिक्त इस प्रकार की फुंसियाँ पर निम्न औषधियाँ भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

१- सल्फाथाय जाल ब्राह्मेटमेट

२- ब्राह्मेटमेट

३- पेन्सिलीन क्रोम

इन का भी प्रयोग होता है।

आयुर्वेदीय औषधियों के अनुसार चिकित्सा:-

|                  |          |
|------------------|----------|
| महेन्दी पत्र सूत | २ तीला   |
| नीम पत्र सूत     | २ तीला   |
| कटथा             | १ तीला   |
| कटूर             | १ तीला   |
| मुद्गसिं         | १ तीला   |
| नीला सुतिथा      | १ मात्ता |

विधि:-

इन सब औषधियों को कपड़ें डाल कर के घाँसीक चूर्ण बना लें। परभाव

फोड़े फुन्सीयों पर इस का प्रयोग करें।







योग:-

२

रसोत्त कोपानी के साथ रगड़ ले फिर उसे हल्का स्थान पर लगा  
ले तब भी लाभ होता है।

### रौबेसिया Rosacea

यह रोग प्रायः स्त्रियों को होता है परन्तु स्त्रियों के अतिरिक्त  
पुरुषों को भी देखा गया है। उग्र रूप में रौबेसिया में गर्दन तथा चेहरा में  
विक्षुब्धता पाई जाती है। अपभ्रंश इस रोग का मुख्य कारण माना जाता है।  
नाक, गला की विक्षुब्धता तथा प्रतिशयाय आदि भी देते जाते हैं।

यह रोग चिरकालीन रोग है जिस के कारण नाक गले तथा चेहरे  
पर लालिमा सी पाई जाती है। नाक में पिट्टिकाओं के कारण चर्बी की  
त्वचा सुरचरी तथा मोटी हो जाती है। इस में पिट्टिकाएं बहुत निकलती हैं।

### चिकित्सा

इस रोग में गुलाब जल उत्तम है विशेषता गैर, फर्सा , पलहठी  
की गुलाब जल या घी में मिला कर लगाना चाहिए। इस रोग में कैप्सीन  
का घोल लगाना चाहिए। यदि सिर के बाल गिरने लगे तब इस में गन्धक भी  
मिला देनी चाहिए। कटु तथा तिक्ता रस प्रधान द्रव्य उत्तम माने गए हैं।

• कटुको रसः वस्त्रं शोधयति , अग्निं दीपयति मुक्तं शोणयति।

टिक्ता रसः स्वयमरीणिष्ठुरत्थरीचको विपाचनः ॥ •

अर्थात् कटुरस छुन की शुद्धि करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता  
है और चाये हुए अन्न आदि का शोणक है। तिक्ता रस स्वयं स्वादु न होती  
है भी अचिनाशक एवं पाचक है। इस पाचन के द्वारा विभिन्न लक्षण और







अर्द्धक की भी मौजबंद है पूरे देना उस में हितकर है। यदि जल की कमी  
हो तो जमलीय पदार्थ देने चाहिए और धी तेल में तले पदार्थ, मिठाई  
आदि बन्द कर देना चाहिए कैल्शियम के योग से भी लाभ देना गया  
है। त्वचा की सिराजों को संकुचित करने के लिए स्क्वैरी का प्रयोग करने  
से भी लाभ होता है।

(Delhi Boil-oriental Sore)  
देहली पिडिका

यह रोग शरीर के उन अंगों पर होता है, जो अंग नीचे रहते  
हैं जैसे हाथ, पैर मुख आदि। इन अंगों पर एक प्रकार की मक्की जिसे  
(sand fly) (Leishman Tropica)  
कहते हैं काट कर होड़ देती है।

उस स्थान पर चिड़िका सी बन जाती है वह पिडिका पहले मृदु होती  
है तथा छोट्टी होती है। फिर बढ़ती जाती है और कुछ समय के पश्चात्  
ग्रन्थ का रूप धारण कर लेती है इस में है द्रुषित गन्ध युक्त पीत वर्ण का  
स्त्राव निरस्तता रहता है। जब इस का रोगन हो जाता है तब वहाँ पर  
एक चिन्ह सा रह जाता है। इस रोग का पूरा निश्चय करने के लिए  
(Leishman Tropica)  
ग्रन्थ में से स्त्राव लेकर परीक्षा करने पर यदि पार  
जाएँ तो यह रोग माना जाता है यदि नहीं तो कोई अन्य रोग हो सकता  
है।

चिकित्सा - पारम्परिक मतानुसार

इस रोग में यदि कोई दूसरा संक्रमण हो तो उस पर

acriflavin

Mercuric Iodide

लगाना चाहिए। इस के अतिरिक्त







मी लगाना चाहिए। लेबन कर के एन्टीमनी टाटारका लेप करना चाहिए।

सप्ताह में ३ बार टार्टार एमेटिक की Intra Venous लगाये से लाभ होता है। इस की थोड़ी मात्रा से प्रारम्भ कर धीरे २ मात्रा बढ़ानी चाहिए।

स्थानिक उपचार Locally ) के लिए १-२ प्रतिशत  
Pottasium Antimony Tarbar या Signolin का लेप करना  
बाहिर Pellidol, Destin, Carbon dioxide  
snow का प्रयोग करना  
बाहिर।

इस प्रकार करने से लाभ होते देखा गया है।

वायुर्वेदीय दृष्टिकोण से सारीवायासव के साथ प्रवाल-  
पिण्टी का प्रयोग हितकर ।

वाह्य प्रयोगार्थः

पञ्चगिरि वृक्षा के उष्ण त्वाथ और गुत्तर के उष्ण  
 व त्वाथ आदि से स्नान करना हितकर है। तत्पश्चात् अन्य कृमिहर द्रव्यों  
 का अब पूर्ण न करना चाहिए।

मदुरापाषाण      Madura Foot-Mycetoma

यह रोग बटुरा के कृणकी में देखा जाता है, हसी से यह नाम रखा गया है। यह पंजाब कश्मीर में भी होता है। इस रोग का प्रारम्भ सामान्यता पेर या हाथ में कांटा आदि के चुमने से होता है। कांटे के चुमने से उस स्थान पर एक विशेष प्रकार का <sup>fungus</sup> उत्पन्न हो जाता है जो इस रोग की उत्पत्ति का मुख्य कारण बनता है। उस स्थान पर बँडुरी की उत्पत्ति हो जाती है। नाड़ी प्रण बन जाती है बिन में से स्वास स्वयता







रहता है।

इस रोग के प्रारम्भ में कठोरता तथा ध्वर्ण्य युक्त तथा वेदना रहित शीथ हो जाती है। जब हाथ तथा पैर पर यह लक्षण हो जाते हैं तो वह फूट कर नाड़ी ग्रण का रूप धारण कर लेते हैं। जिन में से रक्त मूत्र आदि निस्सृत होती है। उस स्थान पर मृत्यु तन्तु एकत्रित हो जाते हैं। अंगुष्ठा आदि की अस्थियाँ नष्ट हो जाती हैं। पैर पर शीथ के कारण गति होन हो जाता है तथा कभी २ तीव्र रूप धारण करने से रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

चिकित्सा - पारम्परिक मतानुसार

रोगी की सर्व प्रथम चिकित्सा के लिए उस पर पैर बन रही fungus की दूर करना चाहिए तथा antibiotics तथा Sulpha group, Sulphonamide, Acriflavin, Penicillin

आदि का प्रयोग करना चाहिए। यदि इस से कोई लाभ होता प्रतीत न हो तो उस स्थान पर बन रहे dead Tissue को उच्च कर्म द्वारा दूर करना चाहिए। यदि फिर भी ठीक न हो तो उस अंग का केंदन कर देना चाहिए।

आयुर्वेद में  
उपचार:-

नाड़ी ग्रण हर मलहम नाड़ी ग्रण हर तैल, जात्यादि तैल, आरोग्य वर्ह कटी, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, घाव हर तैल, सारिवाचासव आदि का प्रयोग करना चाहिए।



१० मार्च

आज का दिन हमें बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

और हमें यह भी पता चला कि हमारे जीवन में

कौन से चीजें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

और हमें यह भी पता चला कि हमारे जीवन में

कौन से चीजें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

और हमें यह भी पता चला कि हमारे जीवन में

कौन से चीजें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

और हमें यह भी पता चला कि हमारे जीवन में

कौन से चीजें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं

और हमें यह भी पता चला कि हमारे जीवन में

कौन से चीजें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं

हमने अपने गुरुजी से बहुत सी बातें सीखीं



2- Varruca Vulgaris

2- Seborrhoeic- wart.

3- Juveinile flat- wart.

4- Veruca Necrogenica

## आयुर्वेदीय मतानुसार चिकित्सा

- CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri



विषय सूची

इस किताब में विषय सूची के अन्तर्गत विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।

|                     |     |
|---------------------|-----|
| Vaccines            | 1-2 |
| Scorbutic acid      | 3-4 |
| Juvenile flat-wart  | 5-6 |
| Vaccine Neostrophus | 7-8 |

विषय सूची (Continued)

इस किताब में विषय सूची के अन्तर्गत विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।  
प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उसके अन्वय में विषयों का वर्णन किया गया है।

विषय सूची (Continued)

- 1- विषय
- 2- विषय
- 3- विषय



४- महापथक घृत की विशेषप्रयोग करते हैं।

अर्श की तरह इन को काट कर भी चिकित्सा की जाती है।

### तिलकालक (Males.)

‘ कृष्णानि तिलमात्राणि निजानि समानि  
वातपित्त कफौद्रिकात् तान् विधातिलकालकान् ’

( सु०नि० अ० ३ श्लोक-४२ )

इस रोग में रंग ही सकता है। ~~इस रोग में रंग ही सकता है।~~ तथा नहीं भी  
ही सकता इस में त्वचा कुछ उमरी हुई तथा प्राया शीघ्र युक्त होती है। ये  
छोटे तथा बड़े आकार के हो सकते हैं।

### चिकित्सा (Treatment)

प्राया इन की चिकित्सा की इतनी आवश्यकता नहीं होती ।

चिकित्सा तभी की जाती है कि जब यह अधिक फैलने लग जाय।

ऐसी अवस्था में एक्स-रे से और आयोडीन के इन्जेक्शन द्वारा  
भी लाभ रहता है।

### कुनव और चिप्प Whiblow

‘ नखमांसमधिष्ठाय पित्तं वातरश्च वेदनाम् ।

करोति दाहपाकी चतं व्याधि चिप्पमादिशेत् ॥

तदेव चातरीनाख्यं तथोपनखमित्यपि ॥ २

अभिधातात् प्रदुष्टो यो नखो ह्यस्ति स्तिः तरः ।

मवेतं कुनवं विधात् कुलीनमिति संज्ञितम् ॥

(सु०नि० अ० २३ श्लो० १६ से २१)



॥ किंवा लीलावती किंवा लीलावती -१

॥ किंवा लीलावती किंवा लीलावती किंवा लीलावती किंवा लीलावती

(१०६/१०६) लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

(१०६-लीलावती १०६ लीलावती)

॥ किंवा लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

॥ किंवा लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

॥ किंवा लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

(१०६/१०६) लीलावती

॥ किंवा लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

॥ किंवा लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

(१०६/१०६) लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

लीलावती लीलावती लीलावती लीलावती

(१०६-लीलावती १०६ लीलावती)



जब नख की मांस और सन्धि के बीच में किसी भी संक्रमण के कारण या कांटा आदि चुबने के कारण शीश हो जाती है तो उस को कुल या विष्य रोग कहते हैं। इस रोग में पहले यह शीश उपत्वना में (superficially) होती है। फिर यह संक्रमण धीरे २ गहरा बढ़ता ज जाता है। कभी २ यह अस्थि तक गहरा चला जाता है और रोगी को कष्ट देता है। रोगी को इस में भर जाने पर वेदना इतनी तीव्र होती है कि रोगी व्याकुल हो जाता है तथा वह अपनी शय्या पर करवट बदलता रह जाता है वेदना के कारण उसे स्वेद बहुत आता है। कभी २ इतनी शीत लगती है कि रोगी को कांपने लगता है तथा उस के दांत बजने लगते हैं।

यह ४ प्रकार का पाया जाता है।

#### चिकित्सा - पारम्परिक मतानुसार

रोगी के नख में Incision देना चाहिए तथा Incision इस प्रकार Side में देना चाहिए कि अंगुली के मध्य में न हो व योंकि यह Scar बन कर कार्य में बाधा डालता है। और वस्तु पकड़ने में बाधा पड़ती है। इस लिए Incision देने के पश्चात् उस में से Pus निकाल कर उस Acriflavin की पट्टी करनी चाहिए। Antibiotics का प्रयोग करें Penicillin Injection Sulphonamide का प्रयोग करना चाहिए।

#### आयुर्वेदीय मतानुसार चिकित्सा

१- जात्यादि तैल

२- नाडी ग्रण हर तैल

३- घाव हर तैल



THE UNIVERSITY OF CHICAGO

1. The first part of the document is a list of names and titles, including "The Hon. Mr. Justice" and "The Hon. Mr. Justice".

THE NEW YORK PUBLIC LIBRARY  
ASTOR LENOX TILDEN FOUNDATION  
500 FIFTH AVENUE  
NEW YORK 17, N. Y.

1944

Antibiotik

[illegible]

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

of 1910-1911.

सं. १००० दिनांक - ०५



४- कृष्ण प्रलेप

५- आरोग्यावदनी

६- शु० गन्धक

७- सारिवाचासव

आदि का प्रयोग करना हितकर है।

### प्लुष्ट दग्ध Scalds or Burns

-----

इस में त्वचा जल जाती है। पहली स्टेज Stage में त्वचा फूल जाती है। तथा दूसरी अवस्था में त्वचा पर काले पट जाते हैं, इसी लिये इसे दग्ध या प्लुष्ट कहते हैं।

### आधुनिक मतानुसार चिकित्सा

-----

१- टेनाफलेवीन जेली (Tanna flavin Jelly B.D.H.)

जब हाला फूट जाये तो इस का प्रयोग करें।

२- बर्नाल Burnol Boots क्रीम

३- जलन युक्त स्थान पर निम्न औषधियाँ लगा सकते हैं।

एनीथीन (Anethaine Glaxo)

न्यूपर्कैनाल (Nupercainal Ciba)

साईक लौफार्म साइक्लोफॉर्म (Cycloform ointment; Bayes)

उपरोक्त यह औषध लगा सकते हैं।

४- एमरटान (Amertan Lilly)

-----

यदि काट दिये गये हों तथा दग्ध स्थान फल जाये तो

उस समय निम्न योग लगाना चाहिए।



8- 1947

9- 1947

10- 1947

11- 1947

12- 1947

13- 1947

14- 1947

15- 1947

16- 1947

17- 1947

18- 1947

19- 1947

20- 1947

21- 1947

22- 1947

23- 1947

24- 1947

25- 1947

26- 1947

27- 1947

28- 1947

29- 1947

30- 1947



टेनिक एसिड ५ से १० प्रतिशत की कपड़ा से या वैसे ही लगा देना चाहिए। इस अवस्था में शीत अवस्था ही कर मृत्यु का मय ही जाता है, इस अवस्था की रोकने के लिये उसी समय माफिया १ कि से १।४ ग्राम का सूचि वैध देना चाहिये। इस चिकित्सा के साथ साथ रोगी को दृढ्य उत्तेजक औषधाधियां देने से लाभ होती है।

५- विटामीन- सी का प्रयोग भी लाभकारी है।

~~मौखिक चिकित्सा के अनुसार निम्न यौग भी सफल रहते हैं।~~

कुछ पाश्चात्य मतानुसार निम्न यौग भी सफल रहते हैं।

६- जिंक आक् साईड

केस्टायल क्रीम

दोनों की कपड़े पर लगा कर प्रयोग करें।

७- एफ्रीफलेवीन :- इन नाम सेवाहन १००० माग में

एक माग लग गये।

८- दध्य स्थान नामेल स्लाईन से साफ कर के पेनिसिलीन

क्रीम अथवा आइन्टमेन्ट लगायें।

यदि स्थान विस्तृत न हो तो सल्फासायेजीन आइन्टमेन्ट

प्रतिशत का प्रयोग करना चाहिए।

आयुर्वेदीय मतानुसार चिकित्सा

योग न० -१

१- रात तृण

२- नारियल तेल अथवा मीठा तेल

इन को गैम कर के पुनः शीत कर के उस स्थान पर लगाना

चाहिये।

योग न० -२







योग नं०-२

-----

आलू को पीस कर लेप करें।

योग नं०-३

-----

१- बनार

२- वैर

३- नीम

हन को पीस कर लगा सकते हैं।

योग नं०-४

-----

सरसौ का तेल

योग नं० ५-

-----

१- जौ की राल

२- भीठा तेल

अथवा नारियल तेल

दोनों को मिला कर प्रयोग करें ।

योग नं० -६

६-----

१- नारियल तेल

२- चुने का पानी

दोनों मिला कर दर घ स्थान पर लेप लगाये।

०-०-०-०-०-०-०

000000



६-११ प्रति

। कि प्रति १० ३० कि प्रति

६-११ प्रति

प्रति -१

प्रति -२

प्रति -३

। कि प्रति १० ३० कि प्रति

६-११ प्रति

प्रति १० प्रति

-११ प्रति

प्रति कि प्रति -१

प्रति प्रति -२

प्रति प्रति प्रति

। कि प्रति १० ३० कि प्रति

६-११ प्रति

प्रति प्रति प्रति -१

प्रति प्रति प्रति -२

। कि प्रति १० ३० कि प्रति



## जुझती Pruritis

Latin पाषाण के अनुसार Pruritis को जुझती कहते

हैं। यह रोग स्वतन्त्र रोग न होना एक त्वचागत रोगों का लक्षण माना है। इस रोग के निम्न लिखित कारण माने गये हैं।

१- शरीर की स्वच्छता की और विशेष ध्यान न देना तथा मैले कपड़ों को पहनना स्नान आदि न करना ।

२- रासायनिक (Chemical) या यान्त्रिक (Mechanical)

प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्पन्न हो जाता है। जिस से त्वचा पर जुझती उत्पन्न हो जाती है।

३- किसी विषाले वातस्फटिक तथा पार्श्विक पदार्थों के सम्पर्क मात्र से ।

४- मधुमेह (Diabetes ) कामला (Zandice)

हाजकिन रोग (Hodgkin's disease) Hypertrophism आदि आदि रोगों में भी जुझती हो जाती है।

५- प्रणाली विहीन ग्रन्थियों के विकार के कारण।

६- कई बार मानसिक तथा स्नायुगत रोगों के कारण (Psychogenic)

भी यह रोग होता है।

Toxaemia तथा अन्य के सेवन करने से ।

८- कई विशेष प्रकार के कृमियों के कारण यथा कुँ, पामा के क्रमि, गुदा की जुझती के कीटाणु आदि के कारण भी जुझती आरंभ हो जाती है।



संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची

संस्कृत-विज्ञान-सूची



पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

१- क्रेमकाल (Creamacal- Numotizine) यह निम्न द्रव्यो का मिश्रण होता है।

१- फिनाल

२- वेन्जोक्न

मेन्थोल

४- कैलोमीन

इस का लेप करें।

२- यूरेज स (Eurax-Geigy) का लेप।

३- थैफोरीन (Thephorin Orinment) प्रतिशत

४- बेनाड्रिल आयेटमेंट (Benadry oint- P.D. & Cp.)

५- रेसिनाल आयरमेंट (Resinol oint.)

इस का प्रयोग अधिक गुदा के लिए लाभकारी रहता है।

६- प्रग्मेटार (Pragmatar-Menly James) इस मलहम को लगाकर

मालिश करें। कभी यह लालिमा उत्पन्न कर देती है। इस लिये छोटे स्थान

२४ घण्टे तक लगाकर इस प्रभाव देख लेना चाहिये। इस को जाँत और छोटे

बालों पर नहीं लगाना चाहिये।

इन सब के अतिरिक्त निम्नलिखित योग भी लाभकारी रहते हैं।

उपग एवं गुदा के लिये :-

१- हाइड्रार्जराह अमोनियर (Hydrargri Ammon) १० ग्रैन

२- लहिका पिसिज कार्ब (Liq. Picis Carb) १५ ग्राम

३- साफ्ट पैराफीन (Soft Parafin) एकास



संस्कृत-विज्ञान-संस्थान

प्रमाण (Greenough - Greenough)

प्रमाण-संख्या

1- प्रमाण

2- प्रमाण

3- प्रमाण

4- प्रमाण

5- प्रमाण

6- प्रमाण

7- प्रमाण

8- प्रमाण

9- प्रमाण

10- प्रमाण

11- प्रमाण

12- प्रमाण

13- प्रमाण

14- प्रमाण

15- प्रमाण

16- प्रमाण

17- प्रमाण

18- प्रमाण

19- प्रमाण

20- प्रमाण

21- प्रमाण

22- प्रमाण

23- प्रमाण

24- प्रमाण



गुदा को साफ कर इस का प्रयोग करें।

८- भग के लिये ओवरियन सबस्टेंस (Ovarian Substance) का प्रयोग करें।

९- निम्न लोशन ४ दिन बाद बीच में क्लोमीन मिला कर प्रयोग करें।

फिनाल- (Phenol) ६० ग्रैन

२- ग्लिसरीन (Glycerine) ६० मिनिम

३- लहिकर पिसिज कार्ब (Liq. Picis Carb) ६० मिनिम

४- एक्वा (Aqua) २ बॉस

६- यदि बुजली अधिक पुरानी हो तो निम्न लोशन के थोड़े २ कतरे हल्का स्थान पर लगाये।

क्लोराल हाईड्रेट (Chloral Hydras) माग

मेण्टाल (Menthol) १ माग

थाई माल (Thymol) १ माग

कैम्फर (Camphor) ३ माग

१०- जब बुजली रात्री के समय अधिक होने लगे तो फिनीवाकीटीन

१-५ ग्रैन अथवा लूपमीना की गोतियां दे और महलम चादि रीनीथेन बायटमेर का प्रयोग करें।

११- जब त्वचा फट जाती है तो उस समय निम्न लोशन का प्रयोग हित कर रहता है।

लाइका फ्लम्बाह सबेस्टास कोट (Liq. Plumbi Subacetas fort)

(Lotio Calomine) ६० मिनिम

लोशी क्लोमीन ४ बॉस

कपड़े का तर कर के हल्का स्थान पर प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है।







## वायुवैद्य मतानुसार चिकित्सा

१- हिंगुलादि मलहम

२- धरतूरादि तैल

३- बर्फीदि तैल

४- कमीलादि तैल

५- गुलाबी महलम

६- जाल्यादि तैल

७- दामाहा लेप

८- दशांग लेप

९- मनः शिला तैल

इन का लेस करने से लाभ होता है।

१- केशोर

२- आरोग्य वर्द्धनी

३- गन्धक रसायण

४- स्वर्ण क्षीरी चूर्ण

५- शु० गन्धक

६- १० वावली

७- गन्धक

सामान मात्रा

इन का शुष्क समाश्रित दिन में २ उलवार जानी चादि के साथ दे।

देने से लाभ होता है।

७- सारिवासन



पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः - १

पञ्चमोऽध्यायः - २

पञ्चमोऽध्यायः - ३

पञ्चमोऽध्यायः - ४

पञ्चमोऽध्यायः - ५

पञ्चमोऽध्यायः - ६

पञ्चमोऽध्यायः - ७

पञ्चमोऽध्यायः - ८

पञ्चमोऽध्यायः - ९

पञ्चमोऽध्यायः - १०

पञ्चमोऽध्यायः - ११

पञ्चमोऽध्यायः - १२

पञ्चमोऽध्यायः - १३

पञ्चमोऽध्यायः - १४

पञ्चमोऽध्यायः - १५

पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः - १६

पञ्चमोऽध्यायः - १७

पञ्चमोऽध्यायः - १८

पञ्चमोऽध्यायः - १९



## ८- तदिरारिष्ट

इन का प्रयोग मलाणार्थ करने से लाभ होता है।

कुछ अन्य बीजाधियाँ भी निम्नलिखित हैं, जिन के लेप करने से लाभ प्राप्त होता है।

१०- कमीलादि मलहम

११- रस कपर

--- - -----

## शिवत्र (Leucoderma)

जब त्वचा का प्राकृतिक वर्ण न रह कर सफेद रंग के धब्बे हो बन जाते हैं। तो उस को शिवत्र रोग कहते हैं। इस के कई कारण माने जाते हैं। कई तो मानते हैं, कि जब त्वचा में (Melanin) की मात्रा कम हो जाती है तो त्वचा का रंग श्वेत हो जाता है। कई विद्वान् पूर्व जन्म का प्रकोप मानते हैं। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से इस का कारण क्षीरिण, स्कलेरोडर्मा, Grave's disease तथा नागरी ग्रन्थ विकार जिस में रीठ की हड्डी सराब हो जाती है। Septic focus के कारण भी यह रोग माना गया है।

यह धब्बे मिन २ चाकर के तथा मित्तर size के होते हैं। इन से मुख तथा शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। यह दाग प्रायः मुख ग्रीवा, उर्ध्व शरीर पर तथा गात्र पर होते हैं। बची शरीर पर बहुत कम देखने में आते हैं। इन का रोगी को कोई कष्ट नहीं होता। यह निर्वक्त तथा क्षयान व्यक्तियों सब में एक समान है।



प्रमाणित - ३

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

प्रमाणित - ०९

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

प्रमाणित - ०९

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः

१९ तमिः मास ११ तमिः मासमासक हस्तिर १९ तमिः



## पश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

पश्चात्य मतानुसार इस रोग में निम्न औषधियाँ सफल रहती

हैं।

१- Babchi oil- Smith stanistseet.

इस तेल से बनी हुई दवाई अधिक लाभकारी रहती है।

२- ल्युकोर्माल:- (Leucodermal)

१- बाबची

२- हुलहुल

३- सत्यानाशी

आदि औषधियाँ से बनाया जाता है।

३- ल्युकोर्मिन (Leucodermine)

४- ल्युकोर्माल इस में निम्न लिखित औषधियाँ मिलती हैं।  
(Indermol-smith Stanistseet)

१- एक्स्ट्रेक्ट बाबची २० प्रतिशत

२- बाल मींगरा आयल ४० प्रतिशत

लेनीलीन में मलहम बनाता है। कई बार घबरी पर काता रंग

लगा कर इस की शक्तिमा कम करते हैं। वेरगमोट आयल १० प्रतिशत का

अलकोहल मिला कर फिर अल्हावायलेट किरणों का प्रकाश देने पर लाभ

होता है।

सक्रामक सीमित स्त्रोत की चिकित्सा करनी चाहिये एवं

स्वास्थ्य सुधार करना चाहिये।

इस रोग में विटामिन

लाभकारी

रहता है।







### आयुर्वेद मतानुसार चिकित्सा

स्थानीय रक्त संचार को लाने के लिये हात उठाने चाहिये जब हाता ही जाये तब फीद कर रीहण का कार्य करना चाहिये। फिर इसी प्रकार करना चाहिये जिस से की रक्त संचार बढ़ जाये। फिर इस निम्नलिखित लेप को करना चाहिए।

१- मकोय

२- पनवाट

३- कुष्ठ

४- पिच्छली

५- बकरे का मूत्र

चारों बीजाधियाँ का चूर्ण बना कर बकरे के मूत्र में मर्दन कर बलिया बना कर सुखा ले फिर इस बलिया बना कर सुखा ले फिर इस बलिया को बकरे के मूत्र में रगड़ कर रुग्ण स्थान पर लगाये।

२- फूँतीकीट को पीस कर लेप करें

३- (क) बावली बीज ४ भाग

(ख) हड़ताल १ भाग

दोनों को गी मूत्र में मिला कर लेप करें।

४- (क) मैनस्ति

(ख) अपामार्गलातार

इन का लेप करें।

५- १- मैनसील

२- विन्ग







३- गौरीबना

४- कासीस

५- सैन्धव

६- स्वर्णलपिरी

इन का लेप करें।

#### योग नं० ६

१- शुद्ध वावची

२- मल्लातक

३- आमलासार शुद्ध गन्धक

इन का चूर्ण बना कर के १- १- $\frac{१}{२}$  माशा तक प्रयोग

कर सकते हैं।

#### योग नं० ७

वावची बीज को १२ दिन तक गोमूत्र रोज़ना बदलते हुए

रहें। बाद में वावची को निकाल कर धी ले इस का तिलका रतार ले और

शुष्क कर लें। फिर इस में शु गन्धक को पीस कर मिला लें फिर इस को

गंगा जल के साथ ३ माशे से १ तोला तक दिन में तीन बार दे सकते हैं।

#### योग नं० ८

शंक्ला

खदिर क्वाय

वावची

इन तीनों को पीस कर क्वाय बना कर प्रयोग करायें।



प्रमाणित - ६

प्रमाणित - ४

प्रमाणित - ५

प्रमाणित - ३

प्रमाणित - २

२. ०१ प्रति

प्रमाणित - १

प्रमाणित - ७

प्रमाणित - ८

प्रमाणित - ९

३. ०१ प्रति

४. ०१ प्रति

प्रमाणित - १०

प्रमाणित - ११

प्रमाणित - १२

प्रमाणित - १३

५. ०१ प्रति

प्रमाणित

प्रमाणित

प्रमाणित

प्रमाणित - १४



### दह (Ring-worm)

यह भी एक त्वचा रोग है। इस में रोगी की अधिक खुजली होती है। इस रोग की यह एक है कि इस में त्वचा पर खुजली के साथ साथ चक्र (Circles) से पड़ जाते हैं तथा उन के किनारे Irregular होते हैं और इसी लिए इसे Ring-worm कहते हैं, उन पर Circles परस्पर पड़ती सी आ जाती है।

इस रोग का कारण एक प्रकार का Fungus होता है। जिस से यह रोग संचरित होता है इस के अतिरिक्त इस का प्रसार किसी के दूषित वस्त्र या अन्य द्रव्य वंशा आदि के प्रयोग करने से या परिवार में एक Member को यह रोग हो गया तो फिर उस के लिए Precautions न करने पर अन्य व्यक्तियों को भी यह रोग हो जाता है।

दह शरीर के पृथक् २ रंग पर तथा सर्वगत शरीर पर हो जाता है। पृथक् २ रंग पर होने से इस का पृथक्, २ नाम रखा जाता है। इस प्रकार नाम रखने से इस के भेद किये जाते हैं।

### दह के प्रकार:-

जो दह हाथ पैरों की अंगुलियों तथा तलवों पर होती है, इसे Vesicular or Scaling कहते हैं।

२- दह के रक्तों पर तथा उन के मध्य स्थान पर होने से इसे Macerated कहते हैं। इस स्थान पर दह होने से इयत्त वर्ण के तथा कुछ घुरीदार संकुचित निशान दिखाई देता है।

३- कर्कों के सिर पर इस रोग के होने से इसे कहते हैं। इस में त्वचा की Layers उतरती रहती है।











ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



११- अनोसिलिनेट आर्येटमैक ५ प्रतिशत

यह मरहम इस रोग में प्रायः कर के प्रयुक्त होती है।

### १- दाढ़ी के दन्त की चिकित्सा

बालों को हटो कर के साफ कर लें बाद में निम्न

अनुपाद लगायें:-

१२- पोटेशियम पेरमैंगनेट Potassium Permanganate Solution

४००० जल में १ माग या एक्कीफलेवीन १ ग्रैन की ४० ग्रैस में घोल लें।

फिर सहर का टुकड़ा ले कर उसे हल्का स्थान पर मिंगी कर लें। फिर

उस स्थान पर निम्नोक्त मलहम लगा सकते हैं।

१३- १- अनोसिलोनिक एसिड Undecylenic Acid १५ ग्रैन

२- सादी मलहम Simple Ointment १ ग्रैस

या ८-६ नो मलहम का भी प्रयोग कर सकते हैं।

१४- १- सैलिसिलिक एसिड Salicylic Acid १५ ग्रैन

२- एसिड बेन्जोईक Acid Benzoic ३० ग्रैन

३- वार्ट वेस्लीन White Vaseline १ ग्रैस

### नख दन्त की चिकित्सा

नख को उतार कर निम्नोक्त मलहम प्रयोग कर सकते हैं।

नो ८ मलहम का प्रयोग करें।

१५- १- सैलिसिलिक एसिड Salicylic Acid १०८ ग्रैन

२- बेन्जोईक एसिड Benzoic Acid १०८ ग्रैन

३- स्प्रिट साधारण Spirit Methyl १ ग्रैस

४- एसिटोन Acetone १ ग्रैस



११. विभिन्न प्रकार के तेलों के गुण

१११

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

- १११ -

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १

अध्याय ११ के अन्तर्गत - १



नी चमड़े पर दिन में २-३ बार प्रयोग करना चाहिये।

### ३- गात्र दह की चिकित्सा

|      |                |                |          |
|------|----------------|----------------|----------|
| १६ - | सैलिसिलिक एसिड | Salicylic Acid | १५ ग्रैन |
| २ -  | एसिड बेन्जोइक  | Acid Benzoic   | ३० ग्रैन |
| ३ -  | वाइट वेशेलीन   | White Vesaline | १ ग्रैन  |

इस मलहम का प्रयोग करना, सिर एवं शरीर को दह

की नष्ट कर देती है।

६-८-६-१३ नं० मलहमों का प्रयोग भी हितकर है।

इस के अतिरिक्त टिंचर आयोडीन भी लाभ करती है।

४- हाथ एवं पैर दहू की चिकित्सा:-

इस रोग १२ नं० मलहम हितकर है।

|    |                  |                |                        |
|----|------------------|----------------|------------------------|
| १७ | १- सलिसिलिक एसिड | Salicylic Acid | ३० ग्रैन               |
|    | २- बेंजोइक एसिड  | Benzoic Acid   | ६० ग्रैन               |
|    | ३- बोरिक एसिड    | Boric Acid     | २- $\frac{१}{२}$ ग्राम |
|    | ४- टैलकम         | Talcum Powder  | ४- $\frac{१}{२}$ ग्राम |

५- खोपड़ी के कद की चिकित्सा

इस रोग में १०-११ मलहमों की कपड़े की टोपी से बना

कर सिर पर रखे और उस को नित्य प्रति साफ करना जायि! प्रतिदिन

क्रमिधुन यथा कार्वाणिक सौप नीकी सौप का प्रयोग कर।

## आयुर्वेदीय चिकित्सा

(१) १- आर्क पुष्प १ तोला  
२- पुष्पाट बीज १ तोला



1. विशेष विज्ञापन - 1-1-19

2. विशेष विज्ञापन - 2-2-19

3. विशेष विज्ञापन - 3-3-19

4. विशेष विज्ञापन - 4-4-19

5. विशेष विज्ञापन - 5-5-19

6. विशेष विज्ञापन - 6-6-19

7. विशेष विज्ञापन - 7-7-19

8. विशेष विज्ञापन - 8-8-19

9. विशेष विज्ञापन - 9-9-19

10. विशेष विज्ञापन - 10-10-19

11. विशेष विज्ञापन - 11-11-19

12. विशेष विज्ञापन - 12-12-19

13. विशेष विज्ञापन - 13-1-20

14. विशेष विज्ञापन - 14-2-20

15. विशेष विज्ञापन - 15-3-20

16. विशेष विज्ञापन - 16-4-20

17. विशेष विज्ञापन - 17-5-20

18. विशेष विज्ञापन - 18-6-20

19. विशेष विज्ञापन - 19-7-20

20. विशेष विज्ञापन - 20-8-20

21. विशेष विज्ञापन - 21-9-20

22. विशेष विज्ञापन - 22-10-20

23. विशेष विज्ञापन - 23-11-20



(२)

पन्वाः बीज २ भाग

आमला १ भाग

थोहर १ भाग

राल १ भाग

राल १ भाग

काजी या हिलका

इन सब को ठूण बना कर कांजी से लेप करें।

(३)

१- पुन्वाः बीज

२- सीरांजन

३- अजीर की जड़

इन को कांजी, सिरका या पानी में मिला कर प्रयोग

करें।

(४)

१- पुन्वाः बीज २ तौला

२- कृथा २ तौला

३- सरसों २ तौला

४- बावली २ तौला

५- हल्दी १ तौला

६- आमलासार गन्धक १ तौला

इन सब को कूट कर निम्बू रस में रगड़ कर प्रयोग करें।

(५)

कमीलादि महलम



(६)

पायाहर लेप

१- रस (यारस)

२- मन्धक

३- मेनःशिल

४- सफेद जीरा

५- काला जीरा

६- दाहल्दी

७- हल्दी

८- काली मिर्च

९- सिन्दूर

१०- घी

इन को बारीक चूर्ण बना कर शतघीत घृत में मिला कर  
 बहु मुक्त स्थान पर प्रयोग कर और प्रातः काल उसे बिटाणु नाशक  
 साबुन द्वारा साफ कर दे । यदि साबुन किसी को उपयोगी न रहे  
 तो प्रयोग करे।

(७)

१- हिगुलादि महलम

(८)

२- भीलादि महलम

बहु के लिये रक्त मीठाणा विशेष लाभकारी रहता है।  
 इस लिये रक्त शोधक द्रव्य प्रयोग भी हितकारी है।

९- तिव त कृत

१०- लदिरा शिष्ट



(A)

कलकत्ता मुद्राशाला की मुद्रा : भारत की मुद्रा का नाम रुपया है

1. 1. 1. 1. 1.



११- सारिवासव

१२- अमृतादिकषाय

१३- नवकार्यिक कषाय इन का अभ्यन्तरीय प्रयोग करें।

१४- (१) सैन्धव

(२) पन्नावाह पन्नावाह

(३) गुड

(४) केशर

(५) रसौत

(६) कैथ रस

इन को कट कर कैथ रस में मिला कर लेप करें।

१५- मरिचादि तैल

तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त लेपों को कौमल स्थान जैसे

अग्नि, घाति आदि गुप्तेन्द्रिय स्थानों पर इन का प्रयोग सम्पन्न कर  
करना चाहिये व यों कि हल्के द्रव्यों से मृदु मांस पर तीव्र पीडा होन  
लग जाती है।

०-०-०-०-०-०-०-०

गङ्गागङ्गागङ्गा

०००



अध्याय - ११

अध्याय - ११

१११ अध्याय - ११

अध्याय (१) - ४१

अध्याय (२)

अध्याय (३)

अध्याय (४)

अध्याय (५)

अध्याय (६)

११२ अध्याय - ११

अध्याय - ४१

११३ अध्याय - ११

११४ अध्याय - ११

११५ अध्याय - ११

११६ अध्याय - ११

अध्याय - ११

अध्याय - ११



सूक्ष्मा वहवः पिङ्काः स्वाववत्यः ।

पामेत्युक्ताः कण्टमुत्थः सदाहाः ॥

( माधव नि० )

यह भी त्वना गत रोग है। इस में शरीर पर किसी अंग पर कौटी २ पीड़िकाएं हो जाती हैं। इन पीड़िकाओं में स्त्राव मरा रहता है। खुजली बहुत अधिक होती है। घुरकने से इन में से स्त्राव निकलता है। यह स्त्राव समीप किसी स्थान पर लगता है। तो वहाँ पर यह रोग और भी बढ़ जाता है इस में दाह खुजली स्त्राव विशेष लक्षण है।

यह रोग हूत का रोग है इस का स्त्राव जिस व्यक्ति के सम्पर्क में आता है तो उस के उसी अंग पर खुजली हो कर पामा रोग हो जाता है। यह दूषित वस्त्रों के प्रयोग से भी हो जाता है।

इन के फैलाने का कारण एक प्रकार का कीटाणु है। इस की  
 दैसन के लिए पोषा गत स्थान से स्त्राव की (Slime) काँनप्ट  
 बनाते है। उस की सूक्ष्म वक्षिण यन्त्र में लगा कर इन कीटाणुओं का  
 पता लग जाता है। इस कीटाणु का नाम *Acanth Scabies* है।

पाश्चात्य मतानुसार चिकित्सा

- १- Tetmosal Soap I.C. Co.
- २- अथवा टेटमोसाल लीशन ५ प्रतिशत  
इन में से किसी एक को मल कर स्नान करना चाहिये।
- ३- गन्धक Sulphur (४) वैजाईल वैजीफ्ट



I : 1000000 : 1000000 : 1000000

II : 1000000 : 1000000 : 1000000

(1000000)

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 (1000000) 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000 1000000

1000000 1000000 (2)

1000000 1000000



रात्रि के समय क्षीतोष्ण जल के द्वारा उस स्थान को साफ कर कपड़े से शुष्क कर लें फिर १० प्रतिशत गन्धक की महलम लगावें। प्रातः काल साबुन से स्नान कर लें। इस प्रकार तीन दिन तक करें। यदि आराम न आये तो फिर ५-७ दिन बाद इस का प्रयोग करें। प्रतिदिन स्थान की शुष्क करने के लिये नया कपड़ा लेना चाहिये।

४- वेजाईल वेजापेट Benzyl Benzoate २५ प्रतिशत घोल

Emulsion

को शरीर पर उसी प्रकार स्नान कराये जैसे की पहले बतलाया गया है तत्पश्चात् घोल को हृग्ण स्थान पर ब्रुश आदि से लगा दें। इस के सूख जाने पर फिर और घोल की उसी प्रकार लगायें दूसरे दिन उष्ण जल एवं साबुन से स्नान करना चाहिये। इस प्रकार करने से ३-४ दिन में रोग शान्त हो जाता है। ६-७ दिन बाद फिर इसी प्रकार हृग्ण स्थान पर लेप करना चाहिये।

वेनजाईल वेन्जीपेट लोशन -१ Benzyl Benzoat Emulsion

वेन्जाईल वेन्जीयेट लोशन (Benzyle Benzoat )

सफट सौप (Soft Soap)

साफट सौप (Soft Soap)

स्पिरिट (Spirit)

तीनों समान भाग लें।

२:-

वेन्जाईल वेन्जीयेट

१० भाग

डी०डी०टी० ( D.D.T. )

१ भाग

वेन्जीकेन (Benzocaine )

२ भाग







टूवीन Tween

२ भाग

एक्वा Aqua

कुल १०० भाग

हस का प्रयोग गात्र से ले कर पैरों तक छिड़क दे पश्चात्  
उसी समय गात्र से मल दे। पश्चात् स्नान करके अपने वस्त्र आदि सब बदल  
देने चाहिये।

५- मीलीगाल आर्यैटमेंट (Mili-gal Ointment Bayer)

६- एस्केवियाल (Scabiol M & B) यह

उपर का २ न घोल है।

एनास्कैब आर्यैटमेंट थिद सल्फर (Antascab Ointment  
with Sulphur Chemo Pharma) इस में वेन्जहिल वेन्जीयट २५ प्रतिशत

एवं Sulphur १० प्रतिशत है।

### आयुर्वेदिक मतानुसार चिकित्सा

१- रसाग लेप करना चाहिये

२- मनः शिलादि तेल

३- मरिचादि तेल और गन्धक मिला कर

४- मरिचयादि तेल

५- सरसो गन्धक दोनों को मिला कर प्रयोग

करे।

६- १- पारा

२- गन्धक

३- स्वर्जनीरी

४- चक्रमर्द



पृष्ठ १  
पृष्ठ २  
पृष्ठ ३

पृष्ठ ४  
पृष्ठ ५  
पृष्ठ ६

पृष्ठ ७  
पृष्ठ ८  
पृष्ठ ९

पृष्ठ १०

पृष्ठ ११  
पृष्ठ १२  
पृष्ठ १३

पृष्ठ १४

पृष्ठ १५

पृष्ठ १६

पृष्ठ १७

पृष्ठ १८

पृष्ठ १९

पृष्ठ २०

पृष्ठ २१

पृष्ठ २२

पृष्ठ २३



५- सिन्दूर

६- वायवित्त

७- कट्वी कुष्ठ

मावनार्थ:-

१- धुस्तुर पत्र स्वरस

२- नीम पत्र ..

३- पान पत्र ..

सर्व प्रथम पारा गन्धक की कजली बना कर अन्य सब काष्ठ औषधाधियों का बारीक चूर्ण कर के माल दे। फिर अच्छी तरह उन्हें रगड़ ले। फिर एक २ दिन तीनों मावनार्थ द्रव्यों की मावना दे कर यह योग तैयार कर लें।

इस का प्रयोग तारिस युक्त रुग्ण स्थान पर करना चाहिये।

उपरोक्त सब औषधाधियों का लेप ही करना चाहिये।

अभ्यन्तरीय प्रयोग:-

१- शु० गन्धक

२- गन्धक रसायन

३- आरोग्य दर्शनी

४- लघु पजिष्ठादि क्वाय

५- तदिरारिष्ठ ..

६- अमृता रिष्ठ

सारिवा-यासब

इन सब का मतानार्थ प्रयोग करने से लाभ होता है।



पञ्चमी -१

पञ्चमीजल -१

उत्तम विष्णु -०

उत्तम विष्णु -१

-: विष्णु

... विष्णु -१

... विष्णु -१

उत्तम विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु -१

विष्णु विष्णु -१

विष्णु विष्णु -१

विष्णु विष्णु विष्णु -१

विष्णु विष्णु -१

विष्णु विष्णु -१

विष्णु-विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु



इन सब के अतिरिक्त लेप के लिये निम्न लेप भी प्रयोग  
हीते हैं:-

१- पामाहर लेप

२- धनुष्ठादि लेप

इन का लेप दातर्थात घृत में मिला करने से विशेष रूपण  
लाभ होता है।

### युवान पिप्पका      Acne Vulgaris

शात्मलीकष्टक प्रख्या कफमातृरक्तजाः।

युवानपिप्पका युनां त्रितया मुखदुष्णिका॥

( सु० नि० ब० १३ श्लो० ३८ )

समस्त के काटों के समान कफ, वायु और रक्त से युवकों  
में होने वाली पिप्पकाएँ युवानपिप्पका या मुखदुष्णिका कहलाती हैं।

आम भाषा में इसे मुँहासा भी कहते हैं। त्वनागत

मेदापिण्डों का मुख बन्द हो जाने से इन की उत्पत्ति होती है। मुख की  
त्वचा में इन की अधिकता रहती है। अतः वहाँ से अधिक होती है।

इन की उत्पत्ति से मुख बहुत बढ़ा हो जाता है अतः उन्हें मुखदुष्णिका भी  
कहते हैं। युवकों में होने से युवान पिप्पका कहा जाता है।

क्योंकि यह रोग युवार्था में होता है। इस में चर्म में

सुजन आ जाती है। इस में मुख पर कील या फुन्सियाँ निकल आती हैं।

कभी २ यह सख्त गाँठ भी प्रतीत होती है। क्वचित् इन में पीप पड़ जाती  
है यह

भी थोड़ी मात्रा में तथा कठोर होती है इस

कील के चिर पर से निकलती है। यह प्यूपीटिका का फुन्सियाँ के रूप







में चेहरे पर निकलती है परन्तु स्कन्धास्थि श्रान्तरिक Interscapdlar

Sternal

कक्षीय क्षेत्र में भी हो सकता है। इस रोग

पदा करने वाले जीवाणु Acne Bacillus इस के अतिरिक्त

Staphylococcea

भी Secondary

रूप में जाता

है पूँख निकल जाने के पश्चात् वहाँ पर ग्रन्थ चिन्ह रह जाते हैं। हम

पीढ़िकाओं से चेहड़ा स्निग्ध होता तथा कुर्बान हो जाता है। तथा वह अपना

स्वाभाविक रूप बदल जाता है। इन कीलों के सिर की त्वचा सूख

तथा लाल हो जाती है। जिस से मुख कुँप हो जाता है। इन का

कारण स्त्रियों में हिप्प में अन्तर स्राव Sex Hormone आदि

होते हैं। इस के अतिरिक्त हस्त मैथुन भी इन पीढ़िकाओं का कारण

माना गया है। Sebaceous glands के विकार के कारण करने

तथा Carbohydrate & <sup>fat</sup> ~~XXXX~~ के अधिक मात्रा में सेवन करने से

होती है।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा निमित्त विशेष ज्ञान देने योग्य

विषय निम्न हैं। उन का संक्षिप्त विवरण ही केवल मात्र यहाँ पर

आवश्यक है।

१- मुख की फुन्सियों को फोरेना नहीं चाहिये।

२- उन पर वीरिक एसिड मिश्रित उष्ण जल या दक्षमल

ववाथ या पन्कजीरी घृता के उष्ण ववाथ से टकीर करनी चाहिये

३- रात्रि को चमेली के पत्तों को रगड़ कर उन का लेप करना चाहिये।







- ४- उदर शुद्धि आवश्यक है।
- ५- जिन २ कारणों से हन की उत्पत्ति हुई हो उन कारणों को दूर करना चाहिये।
- ६- शुद्ध स्वच्छ मौजन, शाक एवं ताजे फल आदि का सेवन करना चाहिये।
- ७- उदर शुद्धि निमित्त रात्रि को गुलकन्द और साँफ आदि का सेवन करना चाहिये।
- ८- शुद्ध वातावरण एवं सूर्य इशियाँ का जहाँ पर भीषा प्रभाव पड़े वहाँ रहना चाहिये।
- ९- वस्त्र से हन फुन्सियों की पीप को तीव्र उस स्थान को जेब में नहीं डालना चाहिये ऐसा करने से नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जाती है।

हन युवान पिष्टिकाओं की चिकित्सा निमित्त अनुमत योग वाह्य एवं आन्तरिक प्रयोग के लिये निम्न हैं:-

- १- केशोर कटी
- २- प्रवाल पिष्टी
- ३- मुक्तापिष्टी
- ४- अमृतास्त्य
- ५- शेषपत्र
- ६- आरोग्य वर्दनी
- ७- सारिवासव

हन का यथोचित अवस्था अनुसार प्रयोग करना चाहिये।







स्थानीय प्रयोग के लिये मसरी की दाल , चिरौजी पीली सरसों इन तीनों का बारीक पाउडर बना कर रात्रि को सोते समय गोदुग्ध में मिला कर लेप करने से मुख दुष्णिका अवश्य दूर हो जाती है।

हस के अतिरिक्त कुंदुमदि तेल का मुख पर लेप लगाने के लिये प्रयोग हितकारी रहता है। इस तेल का योग पूर्व में सुन्दरता का प्रतीक त्वचा हस विवरण में लिख दिया गया है।

हस रोग की चिकित्सा पूर्व स्थान पर ही वर्णित अर्जुन हाल आदि के अन्य ७ योगों का प्रयोग भी सफलता-दायक है।

हस के रोगी को वातिक, पित्तिक, श्लेष्मिक प्रकृति के अनुसार पथ्य आदि की भी योजना करें जिस से कि रोगी को लाभ हो सके।

#### बाह्य प्रयोग

##### योग नं० -१

- |                    |                    |                     |
|--------------------|--------------------|---------------------|
| १- जिंक सल्फेट     | Zinc Sulph         | ६० ग्रैन            |
| २-सल्फुरेटिड पोटेस | Sulphurated Potash | ६० ग्रैन            |
| ३- एसिटोन          | Acetone            | $\frac{१}{२}$ ग्राम |
| ४- डिस्टिल्ड वाटर  | Distilled Water    | कुल तीन आस          |

यह लोशन चेहरे अथवा अन्य इच्छा स्थान पर रात को सोते समय छिड़के, और उसे वही सूखने दे हस लोशन के सूखने पर जो पाउडर पीछे चेहरे पर रह जायेगा, उसे रात भर वही रहने दे, प्रातः मुख धो लाले, हस के १०-१२ दिन के प्रयोग से मुख से सिकुट कर गिर जायेंगे।



विशेष, यह कि पीछे की ओर से पीछे की ओर

कि पीछे की ओर से पीछे की ओर से पीछे की ओर से

यह पीछे की ओर से पीछे की ओर से पीछे की ओर से

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥ ॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥

॥ श्री गुरु ॥



योग न०-२

|            |                  |          |
|------------|------------------|----------|
| रिसासीन    | Resorcin         | ६० ग्रैम |
| सल्फर      | Sulphur          | ६० ग्रैम |
| जिंक पैस्ट | Unnas Zinc paste | १ बीस    |

उसी तरह मिलाकर रात को चेहरे पर इस का लेप

को प्रालः काल गर्म पानी से धो लो । इस प्रकार २-३ करो।

### अन्त प्रयोग

१- Calcium Sulphide का उचित प्रयोग करना

चाहिये।

२- लोह युक्त शीशाधियां यथा Blands Bells,

Persolate

आदि ।

Columang - Crooks

३- ~~XXXXXXXXXXXX~~ इस का संकेतनायक प्रयोग

करना चाहिये।

४- Mereulosed Wax का प्रयोग कर सकते हैं।

Yeast Tablets Philips

की ४ गोली ३ बार दिन में

प्रयोग करनी चाहिये।

५- Manly & James इस में २ प्रतिशत रिसासीनल

और ८ प्रतिशत गन्धक ( सल्फर) इस में है, यह भी बिना चिकनाई के

मौम में बनी हुई है। चेहरे को पहले साबुन से धो उस की चिकनाई दूर

कर लें, फिर यह शीशाधि हाथ से मती।

----



पृष्ठ संख्या

विषय  
प्रकरण  
पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या



इन्द्रलुप्त

(ALPPICI A)

रौमकूपानुगं पित्रं वातेन सह मुक्तिम्

प्रख्यावयति रोमाणि ततः शलास्मा सशोणितः

हृणद्धि राम कृपांस्त ततो न्येणामसम्भवः।

तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं हृहयै तिलविभाव्यते ।

(सु० नि० अ० १३ श्लोक ३२-३३)

अर्थात् रौम कूप स्थित प्राजक पित्त वायु के साथ मिल कर  
वालों की गिरा देता है तत्पश्चात् रक्त युक्त कफ रौम कुणों को अवहृद  
कर देता है जिस से दूर रौमों की उत्पत्ति नहीं होती। इसे हन्द्र लुप्त,  
खालिस्य और भी कहते हैं।

इस रोग की उत्पत्ति विशेष कर मनुष्यों में ही देखी जाती है। स्त्रियों में बहुत कम इस पक्षाकी पुष्टि में विदेह जी का मत है कि यह रोग स्त्रियों को इस लिये नहीं होता क्योंकि वे व्यायाम कम करती हैं अतः उन के व्यायाम न करने से वातपित्तदोष प्रकृष्ट नहीं होते। इस के अतिरिक्त प्रत्येक मास पर रजःस्राव होने के कारण उन के स्त्रोतों का अवरोध भी नहीं होता।

यथोक्तम्:- अत्यन्तसुकुमारा गंगी रजोदुष्टं स्त्रवन्तिच।

अव्यायामरता यस्मात्तस्मान्न खलितिः स्त्रियाः

वागभट्ट आचार्य का मत है कि इस रोग ( हन्त्रलुप्त ) में  
वाल शिघ्रता से गिरते हैं और खालित्य में \* खलतेरपि जन्मिव शान्तिनं तत्र तु  
क्रमात् क्रम पूर्वक ही गिरते हैं।

सुश्रुताचार्य खालित्य सय्या आदि को इन्द्र लुप्त ही उपरीक्त



सुधीराम । पत्नी: ३३ पुत्रपुत्री ३३

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

1871-1872

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



प्रकार से मानते हैं परन्तु कार्तिक कार इन तीनों की निम्न प्रकार से मानता है।

१- इन्द्र तुष्यं अनुष्णिपवति-

अर्थात् इन्द्र तुष्य दाहिनी प्रदेह में होता है इस लिये

रेलोपेशिया अरीय Alopecia Areate कह सकते हैं।

२- बालित्यं शिरसि- एवं,

अर्थात् बालित्य शिर में ही होता है इस लिये इसे

सिम्पल रेलोपेशिया (Simple Alopecia) माना जा सकता है।

३- सहयान सर्वं दैह-

अर्थात् इस रोग सारि शरीर में होता है इस लिये इसे

रेलोपेशिया यूनिवर्सलिस (Alopecia Universalis) भी पुकार

जा सकता है।

संक्षिप्त चिकित्सा

१- इस रोग की चिकित्सा निमित्त रोगी के स्वास्थ्य की उन्नति की और विशेष ध्यान देना चाहिये।

२- खाने में विटामिन प्रधान भोजन अधिक हितकारी रहता है।

३- हृण्ण स्थान पर रक्त संचार करने वाली बीजाधि का प्रयोग

हितकारी रहता है जैसे कैथारायडीन, आयोडीन, जैली पत्र, सरणी के पत्र, तम्बाकू मूल आदि।

४- स्नान आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिये। विषुद भोजन एवं वातावरण में रहना चाहिये।

५- पराकासनी किरण ( Ultra - Violet Rays )







की छग्ना स्थान पर ढालना चाहिये। इस से रक्त संचार में वृद्धि होती है।

### आम्यन्त्रिय प्रयोगार्थ:-

- १- त्रिफला रसायन
- २- २- त्रिफला घृत
- ३- ब्रह्म रसायन
- ४- चमन प्राश

आदि औषधियाँ का प्रयोग करना चाहिये।

### दाह्य प्रयोग के निमित्त :-

- १- चमेली के पत्रों को जल में पीस कर लेप करना चाहिये।
- २- हाथी दान्त की स्याही रसात, बकरी के दूध में मिला कर लेप करना चाहिये।
- ३- एण्डपत्रों को रात्रि को जल में भिगो कर शिर पर लगाना चाहिये।  
या इस के स्वरस से साधित तेल का प्रयोग करना चाहिये।
- ४- तम्बाखू के फूल को सरसों के तेल में रगड़ कर लेप करना चाहिये।
- ६- पूर्णराज तेल का प्रयोग भी बहुत हितकर है।

### निर्माण विधि

मांगरी का रस ४ सेर

२- मण्डूर

३ त्रिफला



किंकि ३०० में गाने का १०० । किंकि गाने का १०० गाने का १००

१३

किंकि गाने का १००

गाने का १०० -१

गाने का १०० -१ -२

गाने का १०० -१

गाने का १०० -१

किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १००

किंकि गाने का १००

किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

गाने का १०० किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

किंकि

किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

किंकि

किंकि गाने का १०० किंकि गाने का १०० -१

किंकि गाने का १००

गाने का १०० किंकि गाने का १००

गाने का १००

गाने का १००



## ४- अनन्त

हृद की समान मात्रा मिला कर २० तैल क्लक और तिल का तेल एक सेर लें सब को ४ सेर जल के साथ मिला कर मन्दाग्नि से तेल शुद्ध करें।

उपयोग

दाहणक, श्लेष्मिका, बाल श्वेत होना, हृन्मृप्त आदि सब रोग इस तेल की मालिश करने से ठीक हो जाते हैं।  
इस प्रकार इस रोग का उपचार करने से इस रोग की शांति हो जाती है।

वाच्य प्रयोग

०-०-०-०-०-०:- यौग-१

टिंचर आयोडीन Tinchur Oidex का प्रयोग सप्ताह में

एक बार हृण स्थान पर लगाना चाहिये।

## य यौग नं०-२

|               |             |          |
|---------------|-------------|----------|
| लेक्टिक एसिड  | Lactic Acid | १० मिनिम |
| कैस्टर आयल    | Castor Oil  | २० मिनिम |
| मैथील स्पिरिट | Methyl Spt. | १ औंस    |

## यौग नं० ३-

|                           |                |           |
|---------------------------|----------------|-----------|
| सैलीसिलिक एसिड            | Salicylic Acid | १० ग्रन   |
| प्रेसीपीटेटेड सल्फर       | Precipitated   | ३० ग्रन   |
| Hedben's Emulsifying base |                | ४ ८० ग्रन |

इस को एक बार दिन में हृण स्थान पर मालिश करें।

## यौग नं०-४

०-०-०-०-०-०







की रक्षा

अन्त प्रयोग  
योग नं०-१

0-4 ग्रैन प्रतिदिन और साथ में पल्टा विटामिन

की गोलियां दे।

शम्पाक मूल का

अनुसन्धानित एवं अनुभव पूर्ण मूल्यांकन

आज कल जनता अधिक रूप में आप को जो त्वचा(चमड़ी)  
के रोगों से ग्रसित दिखाई देती है। इस का मुख्य कारण मिथ्या, आहार,  
विहार एवं उचित विधि से शरीरिक शुद्ध का अभाव ही है।

आयुर्वेद मतानुसार आचरण करने से मानव को चमड़ी के जिदी  
रोग ग्रसित नहीं कर सकते, क्योंकि आयुर्वेद में इस रोग के नाशार्थ बहुत  
सुगम एवं अत्यन्त उपयोगी और सरल उपाय मिलते हैं। आयुर्वेद में त्वचा के  
बि थम्मीर तथा साधारण रोगों की प्रायः कुष्ठ संज्ञा प्रदान इस लिए  
ही की है , कि इस रोग में त्वचा की आकृति कुत्तिस्त एवं विकृत हो  
जाती है। त्वचा रोग में रक्त दोष का भी दूषित होना पाया जाता है।

**ଉତ୍ତର :-**

**वक्ष्यन्ती रक्त दीण प्रदीणजाः:-**

कुष्ठ विसर्प पिद्धिका रक्त पित्त मसुग्धरा







ददुग्धमं दलं पामा कौष्टास्त्र मण्डलम्

इस लिये त्वचा रोगों में रक्त की दृष्टि भी अनिवार्य है।

त्वचा केवल शरीर का आवरण मात्र ही नहीं अपितु इस में ग्रन्थियाँ एवं इस से सम्बन्धित अन्य रक्तनालें भी हैं जो कि इस रोग में दूषित हो जाती हैं। दूषित अंग के नाशार्थ ही रक्त मीलण एवं रक्त शोधन आदि के उपायों का अवलम्बन किया जाता है और लाभ भी देना जाता है।

आयुर्वेद के १८ कुष्ठ त्वचा के रोग ही हैं परन्तु ऐलोपथि में ये रोग एक कुष्ठ के ही विभिन्न २ लक्षण हैं जो कि अलग अलग रोगियों में तथा रोग की भिन्न २ अवस्थाओं में पाये जाते हैं।

एक ही रोग भिन्न २ व्यक्तियों में उन की प्रकृति आदि के अनुसार भिन्न २ लक्षण उत्पन्न करता है और एक ही रोग की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न २ लक्षण पाये जाते हैं।

ये त्वक् रोग त्वचा के वर्ण सम्बन्धी, संज्ञा-सम्बन्धी और ग्रन्थि सम्बन्धी परिवर्तनों से जाने जाते हैं।

यथा:- तैष्णमिमनि पूर्व ह्णाणि वैवर्ण्यं कण्डूनिस्तीदः  
सुप्तता परिदाहः परिहर्णी लोमहर्षः  
हरत्वमुष्णायनं गौरवं शयथु।

ये परिवर्तन कुष्ठ के जीवाणु (

) के कारण से भी होते हैं। ये जीवाणु कुष्ठ रोग के प्रणों में और कुष्ठ ग्रन्थियों तथा नासाश्लेष्मा में पाये जाते हैं जहाँ ये जीवाणु नहीं पाये जाते वे साधारण त्वक् रोग हैं क्योंकि वहाँ पर



18



कीटाणुओं का प्रायः प्रकोप नहीं देखा जाता त्वक् रोगों (चर्मरोगों)

के भी मुख्य पूर्व रूप निम्नलिखित ही होते हैं।

जिस-----

त्वचा में अतिश्लक्ष्णता या खुरदापन स्वेदाधिक्य या उस का अभाव, विवर्णता त्वचा में दाह, कण्टू शून्यता चुम्बने की सी वेदना, कोठ का निकलना, थकान सी प्रतीत होना। व्रणों में अधिक शूल, व्रणों का जल्दी उत्पन्न होना और देर तक रहना रोहण क्रिया होने पर भी उस स्थान पर अतिरूद्धता होना, रोमांच रूप का शीघ्र आना एवं त्वचा के वर्ण में कालापन आदि।

इन लक्ष्णों से यह सिद्ध होता है, कि ७ महा कुष्ठ और ११ दृढ़ कुष्ठ चर्म रोग के अतिरिक्त व्रण, विसर्प विद्रधि, पिट्टिका, प्रमेहपिट्टिका, शीतपित्त, उददं, कोठ आदि रोग भी त्वचारोगान्तर्गत ही हैं, क्योंकि इन में विकृति किसी न किसी रूप में या विशेषण कर स्वतन्त्र रूपण पायी जाती है।

आयुर्वेद यद्यपि त्वचारोगों के नाश के लिये अमूल्य योगों का भण्डार है। फिर भी वे सब योग काल अवस्था आदि के अनुसार ही कार्य करने में समर्थ रहते हैं।

१६५५ के मर्ह, जन मास में प्रकृति की शोभा देखने के लिये मैं बारह दरी पार्कपटियाला में प्रमण कर रहा था वहाँ पर मेरे मन में अमलतास वृक्ष की शोभा को देख कर विचारआया कि क्या इस वृक्ष



(निर्देश) किंवा इतर कोणत्याही प्रकारचा लेख : यात ते विद्युत्प्रवाह

१३ किंवा ते लक्षितकर्तव्य आहे किंवा नाही

-----

१४ लक्षितकर्तव्य लक्षित आहे लक्षितकर्तव्य आहे

१५ लक्षित आहे किंवा लक्षित नाही, यात ते लक्षित लक्षित आहे, यात ते लक्षित

लक्षित, लक्षित लक्षित आहे लक्षित लक्षित, लक्षित लक्षित लक्षित

१६ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

१७ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

१८ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

१९ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२० लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२१ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२२ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२३ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२४ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२५ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२६ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२७ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२८ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित

२९ लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित लक्षित



का नाम राज वृक्षा इसी लिये है कि यह वृक्षा का राजा है, क्योंकि यह सब वृक्षा की शोभा में वृद्धि कर रहा है स्वयं अपनी पुष्पित शोभा से स्वर्ण वर्णयुक्त (सोने के वर्ण समान) पुष्पों की शोभा से अलंकृत इस वृक्षा को देख कर दिल में आया कि अवश्य ही यह वृक्षा त्वचा रोगों से दुष्प्रतिमान मानव समूह को अपनी मान्ति शोभा से अलंकृत करने में समर्थ हो सकता है, यदि इस का आन्तरिक एवं बाह्य प्रयोग सुगम विधि से निकाला जाये। उसी दिन से दिल में नाना प्रकार की विचार धाराएं इस के प्रयोगार्थ चक्क लगाने लगी।

इस वृक्षा के फल गुद्दे का प्रयोग तो चरक संहिता, सुश्रुत संहिता काल से ही वैद्य लोग करते आये हैं। यह अत्यन्त निर्मय एवं उदर संशोधन करने वाला द्रव्य है। जिस प्रकार हैलोपथी में लिक्विड पैराफीन और आयुर्वेद में सरण्ड तेल स्त्रसन करा कर मल को बाहर निकालने में अधिक प्रयुक्त होता है उसी प्रकार इस वृक्षा की फली के गुद्दे से भी स्त्रसन कर्म होता है, परन्तु उस लिक्विड पैराफीन का जितना अंश शरीर में पच जाता है वह शरीर के लिये हानिकर होता है। इसी प्रकार सरण्ड तेल विरचन कराने के पश्चात् आन्त्र का आकुञ्चन करता है जिस से कि दूसरे दिन मलावरोध हो जाता है। ये दोनों दोषा अमलतास की फली के गुद्दे में नहीं पाये जाते।

अमलतास की फली का गुद्दा कच्चे और पक्के मल को जो आन्त्र में संगृहीत होता है उसी अवस्था में बाहर निकाल देता है। इस लिये ही ज्वरावस्था में उदर संशोधनार्थ अमलतास अधिक गुणकारी है। चरक में इस का हितकारी एवं निर्मय प्रयोग सब के लिये बतलाया है जैसे:-



... किन्तु, इस प्रकार कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...

... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...

... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...  
 ... कि जिससे वह भी ... कि जिससे वह भी ...



वाले वृद्ध चाते क्षीण सुकुमार च मानवे।

योज्यो मृद्व-नपायित्वाद् विशेषाच्चतु रंगुलः

यह अमलतास की फली का गुद्दा उपरोक्त गुणों को करता है और साथ साथ रक्तशोधक भी है, क्योंकि इस के प्रयोग से उदर गत मल एवं सैन्द्रियविषा का वहिर्गमन होता है, जिस से मल विषा या कीटाणु विषाय का रक्त में प्रवेश होना असम्भव है। रक्त शोधक एवं रक्त प्रसादन कर्म के कारण इस का प्रयोग सैन्द्रिय विषाजन्य चर्म रोगों पर लाभकारी है।

चरकाचार्य ने इस वृद्ध के उपयोग का वर्णन कण्टूघ्न, वमनीपग, आसथापन-वस्ति द्रव्य, तिक्तस्कन्धीय द्रव्य एवं कल्प स्थानीय योगों में किया है। इसी प्रकार सुश्रुताचार्य भी इस का वर्णन आरग्धादि गुण, शयाभादि गुण, श्लेष्म-संशमनवर्ग विरेचन द्रव्य, अधीमाग हर औष्ण्य समूह, व्रणशोधन, विद्रधि, वातरोग एवं श्लीपद आदि में करता है।

इस उपरोक्त दृष्टि कोण से वाधित हो कर मन में आया कि त्वचा रोगों में यदि इस का प्रयोग किया गया तो यह अवश्य लाभकारी सिद्ध होगा। बहुत स्थानों से इस वृद्ध को त्वचा रोग नाशक सामग्री को ढूँढने का सतत प्रयत्न किया जाने लगा। और बहुत मात्रा में सामग्री प्राप्त की गयी।

उद्योगिनं पुष्पा-सिहमुपेतिलक्ष्मी,

देवेन देयमिति काः पुष्पा वदन्तः॥

देवं निहत्य कुं पीरुणमात्म-शक्तया,

यत्न कृते यदि न सिद्ध्यति को वदोणः।







इस पथ के भाव से प्रेरित होते हुए कटि वद्ध हो कर इस वृद्धा की जड़ की त्वचा का प्रयोग त्वचा रोगों पर आरम्भ कर दिया गया और इस का प्रतीक मुफ्फे वेदों में एवं 'रस रत्न समुच्चय' जैसे पुरातन ग्रन्थों में भी निम्नलिखित रूपेण उपलब्ध हुआ जैसे-

‘गन्धकस्तुल्य मरिचः षड्गुणत्रिफलाञ्चितः

घृष्टः शम्पाक मूलैर्न पीतश्चारिक्लकुष्ठहा॥

( नीता )

प्रलेप योग  
०-०-०-०-०

‘तन्मूलसलिले पिष्टं लेप्येत् प्रत्यहंतनी।

घृष्ट प्रत्यय योगी य सर्वत्राप्राप्ति वीर्यवान्॥

श्रीमता सोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः।’

इस योग का पहले उपरोक्त विधि से ही १, २ साधारण

कण्डू के रोगों पर प्रयोग किया गया जिस से लाभ आचार्य जनक हुआ इस योग का निर्माण प्रत्येक रोगी के लिये स्वयं करना जटिल सा प्रतीत होता था। इसी लिए इस में निम्न प्रकार से सुधार कर के इस की चार चार रत्ती की गोलियां बनवा लीं और उन का प्रयोग निर्मय रूपेण किया जाने लगा। जटिल से त्वचा तथा रक्त विकारों में आशातीत लाभ पाया गया।

न०-१

अनुसधानित योग  
०-०-०-०-०-०-०

१- अमलतास के पंचांगे का धन  $\frac{1}{2}$  किलो

२- शुक्र गन्धक १।४ कीलो।

३- काली मिरच १।४ किलो







४- त्रिफला टेट सेर  $1\frac{1}{2}$  कीली।

५- अमलतास की जड़ की त्वचा से निकाला हुआ स्वरस  
दो कीली।

२-३-४ नं० की औषधियाँ को बारीक कपड़ रान चूर्ण कर  
अमलतास के घन को जड़ की त्वचा के स्वरस में अलग रगड़ लें और घृत  
के मिल जाने पर तीन द्रव्यों को बीच में गेर कर खब तब तक रगड़ाई  
कराते जायें जब तक कि वह द्रव्य गोली बनने योग्य न बन जाये। फिर  
इस की ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनानी चाहियें।

एक दिन में ४-६ गोली राँगी की अवस्थानुसार २-२ घन्टे बाद  
देनी प्यारित है। बालकों को २ गोली या ३ गोली दिन में अवस्थानुसार।

लोपार्थ योग नं० २  
०-०-०-०-०-०-०-०

स्थानिक विकृति पर

शम्पाकमूल (अमलतास की जड़) को जल में रगड़ कर और  
आंवलासार गन्धक मिला कर उस का लेप करना चाहिये। इस से दूषित  
त्वचा की आकृति एवं फुन्सी आदि सब ठीक हो जाती हैं। इसी कृत्वा के  
पंचाम का क्वाथ बना कर लेपवाले दूषित स्थान को धोना चाहिये। दिन  
में १-२ बार ऐसा करना अशुभ अनिवार्य है।

नं० १ और नं० २ के दोनों योग आयुर्वेद विज्ञान का क्रिया हुआ  
खजाना था जिस पर आचार्य सोमदेव ने भी अनुसन्धान किया था और उन्होंने  
ने इन योगों को आम्यन्तरीय एवं बाह्य प्रणाली श शो नुमुत एवं सफल  
तथा सधः फलदायक पाया । उस काल में इस योग का बहुत प्रचार था।  
परन्तु आज की मान्ति त्वचा के रोगियों की संख्या की वृद्धि दिन प्रति



विधि २

विधि ३

विधि ४

विधि ५

विधि ६

विधि ७

विधि ८

विधि ९

विधि १०

विधि ११

विधि १२

विधि १३

विधि १४

विधि १५

विधि १६

विधि १७

विधि १८

विधि १९

विधि २०

विधि २१

विधि २२

विधि २३



दिन अल्प रहती गई और रोग के अभाव तथा आचार्य की मृत्यु के बाद यह योग लुप्त प्राय ही हो गया। जिस की आचार्य वाग्भट्ट ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया और वेद समाज तथा साधारण जनसमूह ने इस की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया, जब कि चरक सुश्रुत, रस शास्त्र के बहुत से ग्रन्थ इस की त्वचा रोग हर शक्ति के परिचायक आज भी हैं।

इन तथ्यों से मुग्ध हो कर इस की मूल त्वचा पर अनुसंधान कार्य आरम्भ किया क्योंकि आज त्वचा रोगियों की संख्या दिन प्रति दिन वृद्धि शील ही है। और होती जा रही है। ऐसे समय अपने तथ्यों का मूल्यांकन स्थिर करना आवश्यक हो जाता है। इन योगों में समय समय पर रोगी की अवस्थानुसार परिवर्धन हृसी कण आदि द्वारा मैं ने अमलतास की जड़ को विभिन्न रोगों पर सफल पाया और सफलता के नि निश्चित तात्वों का एक कीकरण भी किया है। जिन का यहाँ पर वर्णन विस्तृति मय से नहीं दिया गया।

वह वर्णन भी एक ग्रन्थ रूप में जनता की सेवा एवं चिकित्सकों की ज्ञानवृद्धि निमित्त विभिन्न २ रोगियों की प्रकृति आदि का विस्तृत विवेचन करते हुए प्रस्तुत किया जायेगा, जिस से प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञान हो सके कि यह औषध किस २ अवस्था में कैसे शरीर के अंगों पर प्रभाव एवं परिवर्तन आदि क्रियाओं द्वारा लाभ करती है।

०-०-०-०-०-०-०

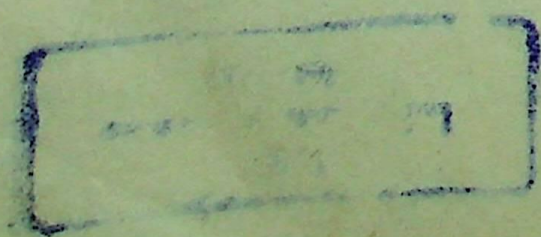
०-०-०-०-०

००००





5-3-0-0-0-0-0-0-0

























SAMPLE STOCK VERIFICATION

1988

VERIFIED BY.....R.K.....







